समकालीन हिंदी व्यंग्य साहित्य: एक आलोचनात्मक अध्ययन
(१९९०-२०००)
Contemporary Hindi Satires: A Critical Study (1990-2000)

['विद्या वाचस्पति' उपाधि हेतु प्रस्तुत शोध-ग्रंथ]

शोध निर्देशक-
डॉ० रमण प्रसाद सिन्हा

शोधार्थी-
प्रतिमा यादव

भारतीय भाषा केंद्र
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
दिल्ली-११००६७

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
JAWAHARLAL NEHRU UNIVERSITY
भारतीय भाषा केन्द्र
Centre of Indian Languages
भाषा, साहित्य एवं संस्कृति अध्ययन संस्थान
School of Language, Literature & Culture Studies
नई दिल्ली–110067, भारत NEW DELHI-110067, INDIA

Dated: 27 /09 /2022

Certificate

This is to certify that the Mr. Pratima Yadav, a bona-fide Research Scholar of Centre of Indian Languages, SLL&CS has fulfilled all the requirements as per the University Ordinance for the submission of Ph.D. thesis entitled (Samkaleen Hindi Vyangya Sahitya : Ek Aalochanatmak Adhyayan) (1990-2000) **Contemporary Hindi Satires : A Critical Study (1990-2000)**

This may be placed before the examiners for evaluation for the award of the degree of Ph.D.

Dr. Raman Prasad Sinha
(Supervisor)
CIL/SLL&CS/JNU

Dr. Raman Prasad Sinha
Associate Professor
Centre for Indian Languages
SLL&CS
Jawaharlal Nehru University
New Delhi-110067

Prof. Omprakash Singh
(Chairperson)
CIL/SLL&CS/JNU

GRAM: JAYENU, Tel.: (91-011) 26741557, 26742676 Extn.: 4217, (D) 26704217; Telefax: (91-011) 26704217;
Email: chair_cil@mail.jnu.ac.in, jnucil@gmail.com

Dated: 27 /09 /2022

Declaration

I hereby declare that the Ph.D. thesis entitled **(Samkaleen Hindi Vyangya Sahitya : Ek Aalochanatmak Adhyayan) (1990-2000) Contemporary Hindi Satires : A Critical Study (1990-2000)** submitted by me is the original research work. It has not been previously submitted for any other degree in this or any other University/ Institution to the best of my knowledge.

I further declare that no plagiarism has been committed in my work. If anything is found plagiarised in my Thesis, I will be solely responsible for the act.

Pratima Yadav

Pratima Yadav
Name of Students

अनुक्रमणिका

भूमिका **II**

प्रथम अध्याय

व्यंग्य की विधा: एक परिचय **2**

द्वितीय अध्याय

हिंदी में व्यंग्य साहित्य की परंपरा **47**

तृतीय अध्याय

समकालीन व्यंग्य साहित्य: अंतर्वस्तु **97**

चतुर्थ अध्याय

समकालीन व्यंग्य साहित्य: शिल्प **192**

पंचम अध्याय

समकालीन संवेदना के विकास में व्यंग्य साहित्य की भूमिका **248**

उपसंहार **289**

संदर्भ- ग्रंथ सूची **297**

आधार ग्रंथ **297**

सहायक ग्रंथ **300**

पत्र-पत्रिकाएँ **307**

भूमिका

हिंदी साहित्य के विकास-क्रम में अनेक विधाएँ जुड़ती चली गई। हिंदी साहित्य के बहुमूल्य-कोष में ऐसे ही एक विधा रूपी रत्न का नाम है 'व्यंग्य-साहित्य'। व्यंग्य-साहित्य, हिंदी साहित्य के अनमोल-कोष में शामिल होने वाले नवीन रत्नों में से एक है। व्यंग्य-निबंधों का अध्ययन-अध्यापन १९वीं शताब्दी से ही होता आ रहा है किंतु इसका समुचित विकास १९वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में ही देखने को मिलता है। 'व्यंग्य' शब्द का अर्थ है विकलांग, विरूप या विकृत। अर्थात् व्यंग्य उसे कहा जाता है जो विकलांगता को उजागर करे। यहाँ विकलाँगता का अर्थ है ऐसी परिस्थितियाँ, कुरीतियाँ, मान्यताएँ या फिर रीति-रिवाज जो समाज को विकलाँगता की ओर ले जाते हैं। विकलांगता मनुष्य के साथ-साथ समाज तथा पूरी व्यवस्था में भी विद्यमान हो सकता है। मनुष्य की शारीरिक विकलांगता की वजह से सिर्फ़ उसी मनुष्य को कष्ट उठाना पड़ता है किंतु सामाजिक विकलांगता की वजह से पूरे समाज को कष्ट भोगना पड़ता है। यह एक ऐसा ज्वर है जो मनुष्य, समाज तथा व्यवस्था को दिनों दिन क्षीण और खोखला कर देता है। यह अवस्था समाज के लिए बहुत ही ख़तरनाक होती है। समाज एवं व्यवस्था में व्याप्त इसी विकलांगता को सुधारने का बेड़ा व्यंग्यकार उठाता है। एक व्यंग्यकार कटु एवं नंगी सच्चाई से युक्त शब्दों का प्रयोग करते हुए समाज में

व्याप्त विकलांगता को धीरे-धीरे उधेड़ने का कार्य करता है। ऐसा करने के लिए व्यंग्यकार अपने बहुआयामी दृष्टिकोण का परिचय देता है।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व की समाज की परिस्थिति तथा स्वतंत्रता प्राप्त भारतीय परिवेश में काफ़ी हद तक अंतर रहा है। अगर ज़मीनी स्तर पर बात करें तो समाज में व्याप्त विद्रुपता, भुखमरी, बेरोज़गारी तथा भ्रष्टाचार पर्याप्त मात्रा में समाज का अंग रहा है। दूसरे शब्दों में कहा जाय तो भारतीय परिवेश में ये सारी विसंगतियाँ आज़ादी के बाद भी मौजूद थी। आज़ादी के बाद के समाज में व्याप्त विसंगतियों को देखते हुए लगता है कि आज़ादी के बाद मात्र कुछ लोगों के ही जीवन में परिवर्तन आया। बाक़ी के समाज पर आज़ादी का कोई स्पष्ट प्रभाव नहीं दिखायी देता। उन्हें अभी भी अनेक सामाजिक समस्याओं से रूबरू होना पड़ता है। समाज में व्याप्त इन विसंगतियों से लड़ने के लिए कुछ बुद्धिजीवी वर्ग आगे आए और अपने विचारों के माध्यम से समाज को सही दिशा में मोड़ने का प्रयास किया। हालाँकि ये प्रयास भारतेंदु युग से ही देखने को मिलते हैं किंतु इनकी सर्वाधिक आवश्यकता और इस दिशा में मुखरता पूर्वक कार्य स्वातंत्र्योत्तर युग में ही देखने को मिलता है। कबीर तथा भारतेंदु नें जिस समाज की कल्पना करते हुए उसे यथार्थ रूप देने की परम्परा को प्रारम्भ किया था, उस परम्परा को हरिशंकर परसाई, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, नरेंद्र कोहली, ज्ञान चतुर्वेदी तथा गोपाल चतुर्वेदी नें अपने व्यंग्य निबंधों द्वारा आगे बढ़ाने में अपना बहुमूल्य योगदान दिया। सन्

१९९० ई० के बाद के वर्षों में इस क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य देखने को मिलता है। यह शोध कार्य सन् १९९० ई० से सन् २००० ई० तक के व्यंग्य-साहित्य को केंद्र में रखते हुए सम्पन्न किया गया है।

अध्ययन की सुगमता की दृष्टि से इस शोध-कार्य को पाँच अध्यायों में विभाजित किया गया है। प्रथम अध्याय का शीर्षक 'व्यंग्य की विधा: एक परिचय' है। इस अध्याय के अंतर्गत 'व्यंग्य-विधा' के बारे में विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत मत का उल्लेख करते हुए व्यंग्य विधा को परिभाषित किया गया है। व्यंग्य-विधा की परिभाषा देने के पश्चात् व्यंग्य और इससे मिलते-जुलते नामों में अंतर प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए, हास्य एवं व्यंग्य में अंतर। इसके बाद इस विधा के नामकरण के औचित्य पर चर्चा की गयी है। इसके बाद इस अध्याय में व्यंग्य के प्रेरक तत्वों पर चर्चा की गयी है। व्यंग्य के ये तत्व व्यंग्य की लक्षित आवेश का निर्धारण करते हैं। साथ ही साथ इस अध्याय में व्यंग्य की व्युत्पत्ति, स्वरूप और सिद्धांतों का अध्ययन किया गया है। व्यंग्य से रसानुभूति भी होती है। कभी-कभी व्यंग्य से करुण, रौद्र तथा हास्य रस प्रस्फुटित होता है जो व्यक्ति को झकझोरने का कार्य करता है। इस प्रकार इस अध्याय में यह भी समझने का प्रयास किया गया है कि व्यंग्य किस प्रकार से साहित्य में अप्रत्यक्ष रूप से सम्पूर्ण व्यावहारिक जीवन को समेटने में सक्षम रहा है।

द्वितीय अध्याय का शीर्षक 'हिंदी में व्यंग्य साहित्य की परम्परा' है। इस अध्याय में हिंदी व्यंग्य साहित्य के विकास पर चर्चा की गयी है। हिंदी

व्यंग्य साहित्य का विकास तात्कालिक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिस्थितियों के संदर्भ में देखा गया है। इन्हीं परिस्थितियों पर चर्चा करते हुए हिंदी व्यंग्य साहित्य के विकास को समझने का प्रयास किया गया है। व्यंग्य का बीजारोपण भारतेंदु युग से पूर्व ही हो चुका था, किंतु अभी व्यंग्य रचनायें हास्य-प्रधान थी, इनमें धार और आवेश की पर्याप्त कमी थी। भारतेंदु युग के मध्य में व्यंग्य साहित्य की प्रवृत्ति में बदलाव देखने को मिलता है। इस समय के बाद से व्यंग्य साहित्य में विकास की प्रक्रिया तेज़ी से बदलने लगी और धीरे-धीरे व्यंग्य अपने वर्तमान रूप को ग्रहण करते हुए हमारे सामने प्रस्तुत हुई। इस अध्याय में व्यंग्य के विकास की इसी प्रक्रिया का विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

तृतीय अध्याय का शीर्षक 'समकालीन व्यंग्य साहित्य: अंतर्वस्तु' है। इस अध्याय में समकालीन व्यंग्य साहित्य के लिए जिन पुस्तकों को आधार-ग्रंथ बनाया गया है उनकी विषय-वस्तु के बारे में चर्चा की गयी है। इस अध्याय में रचनाकारों के द्वारा चुने गए विभिन्न समसामयिक मुद्दों का अध्ययन किया गया है। समकालीन व्यंग्य साहित्य के जिन व्यंग्य-निबंधों को आधार ग्रंथ के रूप में इस शोध-कार्य में शामिल किया गया है उनके रचनाकार हैं- हरिशंकर परसाई, नरेंद्र कोहली, गोपाल चतुर्वेदी, ज्ञान चतुर्वेदी, शरद जोशी, रवीन्द्रनाथ त्यागी एवं श्रीलाल शुक्ल। इन व्यंग्यकारों नें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों के साथ-साथ सामाजिक संस्थाओं, समाज में व्याप्त राजनीतिक भ्रष्टाचार, भ्रष्ट अफ़सरशाही तथा भ्रष्ट साहित्यकार के

करतूतों का पर्दाफ़ाश करते हुए रूढ़िगत धारणाओं पर तीखा प्रहार किया है। एक तरफ़ रवीन्द्रनाथ त्यागी नें सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए यथार्थपरक रचनाओं के माध्यम से व्यक्ति को मानसिक रूप से उद्वेलित करने का प्रयास किया है वहीं दूसरी तरफ गोपाल चतुर्वेदी जी नें व्यक्ति के इर्द-गिर्द सम्पूर्ण ढाँचा बनाते हुए व्यक्ति को लक्षित करते हुए व्यंग्य रचना की है। हरिशंकर परसाई, नरेंद्र कोहली तथा श्रीलाल शुक्ल वर्तमान जीवन की विसंगतियों तथा मध्यवर्गीय बुद्धिजीवीयों को लक्षित करते हुए व्यंग्य रचना की है। सुधारवादी दृष्टि से समसामयिक मुद्दों पर गहरी पैनी दृष्टि रखते हुए समकालीन व्यंग्य साहित्यकारों ने अपने व्यंग्य लेखन के लिए सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक आयामों को अंतर्वस्तु का विषय बनाया है। इस अध्याय के अंतर्गत इन आयामों को आधार बनाकर, व्यंग्य साहित्य के अंतर्वस्तु का विवेचन-विश्लेषण किया गया है।

चतुर्थ अध्याय का शीर्षक है 'समकालीन व्यंग्य साहित्य: शिल्प'। इस अध्याय में आधार-ग्रंथों का विवेचन एवं विश्लेषण उनकी शिल्पगत विशेषता के आधार पर किया गया है। शिल्प किसी भी रचना की विशेषता को भली-भाँति समझने में सहायक होता है। इस अध्याय में आधार-ग्रंथ में शामिल व्यंग्य-रचनाओं के शिल्प को समझने का प्रयास किया गया है। शिल्प के अंतर्गत इन रचनाओं में प्रयुक्त अतिरंजना एवं अतिशयता, लक्षणात्मक एवं व्यंजनात्मक शैली, भाषा, प्रतीक, छंद-योजना, अलंकार, उद्धरण युक्त मुहावरे एवं आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक भाषा शैली

इत्यादि के संदर्भ में अध्ययन किया गया है। इसके अंतर्गत व्यंग्यकारों नें अपने साहित्य में भावाभिव्यक्ति के लिए जिस भी माध्यम को अपनाया, उसकी विशेषता एवं प्रवृत्ति आदि का अध्ययन किया गया है।

पाँचवें अध्याय का शीर्षक 'समकालीन संवेदना के विकास में व्यंग्य साहित्य की भूमिका' है। एक व्यंग्यकार की संवेदना समाज में व्याप्त विसंगतियों, पीड़ा तथा प्रत्येक घटनाओं से जुड़ा होता है, जिसके कारण वह समाज के प्रति प्रतिबद्ध हो जाता है। इसी प्रतिबद्धता के कारण वह समाज के प्रति अपने दायित्व का निर्वहन करके व्यंग्य विधा के द्वारा समाज को सचेत करने का प्रयास करता है। व्यंग्यकार का समाज के प्रति इसी उत्तरदायित्व का इस अध्याय में विवेचन-विश्लेषण किया गया है। साथ ही साथ व्यंग्य निबंधों में अभिव्यक्त संवेदना, मानव मूल्य तथा जीवन-बोध को समझते हुए समाज के विभिन्न पहलुओं का अध्ययन करते हुए सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक विकृतियों को सुधारने में व्यंग्य साहित्य के योगदान का अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन के माध्यम से सभ्य समाज के विकास में व्यंग्य आलोचकों के उत्तरदायित्व तथा व्यंग्य साहित्य को प्रतिष्ठित करने वाले रचनाकारों के साहित्यिक अवदान को भी समझा जा सकता है।

अंत में उपर्युक्त अध्यायों के आधार पर समकालीन व्यंग्य साहित्य का अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। समस्त अध्यायों के निष्कर्षों को सूत्रबद्ध करते हुए सम्पूर्ण अध्ययन के आधार पर उपसंहार प्रस्तुत किया गया है।

इस शोध कार्य को सम्पन्न करने में मेरे अकादमिक शिल्पी डॉ० रमण प्रसाद सिन्हा का अनवरत एवं स्नेहपूर्ण सहयोग तथा मार्गदर्शन मिला। अनेक सामाजिक एवं सृजनात्मक कार्यों में व्यस्त होने के बावजूद आपने अकादमिक रूप से मुझ जैसे पत्थर को तराशकर इस लायक बनाया कि मैंने 'दर्शन निष्णात' के प्रमाण-पत्र को सफलतापूर्वक अर्जित किया एवं अब 'विद्या वाचस्पति' के प्रमाण-पत्र को अर्जित करने जा रही हूँ। आपकी छत्र-छाया में रहते हुए एवं आपके स्नेह और आशीर्वाद के बलबूते यह शोधकार्य सम्पन्न हो सका है। इस शोध-विषय के चयन से लेकर, इसके अध्यायों को सम्पन्न करने एवं इस शोध-कार्य को प्रस्तुत करने तक आपका मार्गदर्शन उसी प्रकार प्राप्त हुआ जिस प्रकार एक नन्हे अबोध बालक की उँगली पकड़ उसके माता पिता उसे जीवन के पथ पर आगे बढ़ने हेतु प्रेरित करते हैं। आपके इन प्रयासों के लिए आभार व्यक्त करने में मेरी वाणी पूर्णतः असमर्थ है।

प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में शिक्षक का बहुत महत्व होता है। मैं अपने जीवन में उन सभी लोगों का आभार व्यक्त करती हूँ जिनके माध्यम से मैंने कुछ भी सीखा हो। प्रिय मित्र विकास यादव का मैं तहे दिल से कृतज्ञता व्यक्त करती हूं, जिनके सहयोग एवं समर्थन से यह शोध-ग्रंथ कुशलता पूर्वक सम्पन्न हो सका। अध्यापन कार्यों एवं 'दिल्ली विश्वविद्यालय' जैसे प्रतिष्ठित संस्थान से शोध-कार्य में संलग्न रहने के बावजूद आपका शैक्षणिक सहयोग निरंतर मिलता रहा, ये मेरे लिए सौभाग्य की बात है। साथ ही प्रिय बड़े

भाई सुशांत यादव (सहायक आचार्य) जिन्होंने समय-समय पर मुझे सम्बल प्रदान किया, दिल्ली विश्वविद्यालय के शोधार्थी प्रिय मित्र रवि एवं इलाहाबाद विश्वविद्यालय के सहपाठी एवं शोधार्थी रंजन के अनवरत स्नेह एवं सहयोग से यह शोध-ग्रंथ सुगमता से सम्पन्न हो सका है।

यह शोध कार्य मेरे अकादमिक शिल्पी डॉ० रमण प्रसाद सिन्हा, मुझे जन्म देने वाले मम्मी-पापा एवं मुझे शिक्षा की गंगा में तैरना सिखानेवाले मेरे प्रिय मामा रणविजय सिंह यादव को समर्पित है।

अध्याय १ - व्यंग्य की विधा: एक परिचय

पृथ्वी पर मानव-विकास के क्रम में एक दूसरे से सम्पर्क करने के लिए मनुष्य नें भाषा का विकास किया। भाषा के विकास के परिणाम स्वरूप एक मानव का अन्य मानव से सम्पर्क आसान हुआ, किंतु भाषा का प्रयोग सिर्फ़ एक दूसरे से सम्पर्क स्थापित करने तक ही सीमित नहीं रहा। समय के साथ मानव नें भाषा को अपने मनोरंजन के लिए भी प्रयोग करना सीख लिया। मानव के इसी स्वभाव का परिणाम साहित्य के रूप में सामने आया। समय व्यतीत होने के साथ-साथ साहित्य की अन्य विधाओं का प्रादुर्भाव हुआ। इसी कड़ी में साहित्य में एक और विधा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसे 'व्यंग्य' विधा के नाम से जाना गया।

'व्यंग्य' साहित्य की वह विधा है जिसमें रचनाकार पाठक तक अपनी बात इस तरह से पहुँचाता है कि पाठक को एक साथ कई रसों की अनुभूति होती है। व्यंग्य पाठक के होठों पर मुस्कान लाते हुए पाठक को कथित विषय के बारे में सोचने को मजबूर कर देता है और पाठक को अपने हृदय पटल पर एक मीठी चुभन महसूस होती है। 'व्यंग्य' शब्द को अंग्रेज़ी भाषा के 'सटायर' शब्द का पर्याय माना जाता है। अंग्रेज़ी भाषा के 'सटायर' शब्द की उत्पत्ति के संदर्भ में दो मत हैं। प्रथम मत के अनुसार 'सटायर' मूलतः लैटिन भाषा के 'सैटुरा' शब्द से उत्पन्न हुआ है। द्वितीय मत के अनुसार 'सटायर' शब्द की उत्पत्ति मूलतः रोमन शब्द 'सैटुर्ज़' या 'जैटुरा' से हुई है। प्रथम मत को स्वीकार करने वालों में प्रमुख

नाम ऊषा शर्मा का है।[1] उनके अनुसार लैटिन के 'सैटुरा' का अर्थ प्रारंभ में 'पूर्ण या भरा-पुरा' होता था। जैसा कि हर शब्द के साथ होता है, समय और परिस्थितियों के अनुसार शब्दों के अर्थ में थोड़ा परिवर्तन हो जाता है। ऐसा ही परिवर्तन इस शब्द के साथ भी हुआ और इसके अर्थ को 'विविध भाँति की वस्तुओं का मिश्रण' के रूप में स्वीकार किया जाने लगा। डॉ० ऊषा शर्मा ने अपनी पुस्तक 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी निबंध साहित्य में व्यंग्य' में व्यंग्य को परिभाषित करते हुए कहा है कि व्यंग्य "सर्वसाधारण की पसंद लिए हुए विविधता, यथार्थता, कुछ उजड्डुता से युक्त, ग्रामीण सहृदयता से परिपूर्ण होता है। व्यंग्य के गुण हैं कि वह विविध हो, भरपूर हो, साथ ही सरल और मनभावन हो।"[2] प्रसिद्ध व्यंग्य आलोचक सुरेशकांत जी डॉ० ऊषा शर्मा के विचारों से पूर्ण रूप से सहमत नहीं हैं। उन्होनें लैटिन के 'सैटुरा' शब्द का मूल रोमन के 'सैटुर्ज' में माना है। उनका कहना है कि "वैविध्य और भरापूरापन अन्य विधाओं के भी अनिवार्य गुण हैं। सरल और मनभावन तो व्यंग्य होता ही नहीं- वह तो प्रकृत्या टेढ़ा और, आक्रमणधर्मा होने के कारण (लक्ष्य के लिए) अ-मनभावन होता है। वास्तविकता यह है कि लैटिन 'सैटुरा' (का अर्थ)... 'ऊबड़-खाबड़' या 'गड़बड़झाला' होता है।"[3] व्यंग्य की उपर्युक्त परिभाषाओं और उनके मूल शब्द पर गौर करने पर सुरेश कांत के मत अधिक उचित प्रतीत होते हैं। बाद में रोमन 'सैटुर्ज' से ही लैटिन का 'जैटुरा' और अंग्रेज़ी में 'सैटायर' या 'सटायर' बना। इसी सटायर शब्द के पर्याय

---

[1] डॉ० उषा शर्मा; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में व्यंग्य; आत्माराम एण्ड संस; दिल्ली; १९८४; पृष्ट २३

[2] डॉ० उषा शर्मा; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में व्यंग्य; आत्माराम एण्ड संस; दिल्ली; १९८४; पृष्ट २३-२४

[3] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली विचार और व्यंग्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०००, पृष्ठ ५५

के रूप में हिंदी में व्यंग्य, व्यंग, विकृति, उपहास, परनिंदा, आदि शब्द प्रचलित होते चले गए। इनमें सर्वाधिक प्रसिद्धि 'व्यंग्य' शब्द को ही मिली। 'व्यंग्य' शब्द को गुजराती भाषा में 'कटाक्ष' तथा उर्दू भाषा में 'तंज' कहते हैं।

व्यंग्य का स्वरूप निर्धारित करने में पूर्णतः किसी विशेष समय का योगदान नहीं रहा है। इस बात से बिलकुल भी इनकार नहीं किया जा सकता कि वैदिक काल से लेकर वर्तमान काल तक व्यंग्य का स्वरूप किसी न किसी रूप में हमारे समाज में विद्यमान रहा है। व्यंग्य विधा के जन्म के संदर्भ में ऐसा बिलकुल भी नहीं कहा जा सकता कि अचानक से बिजली चमकी और व्यंग्य उत्पन्न हो गया, व्यंग्य का जन्म क्रमिक रूप से हुआ है। जैसे-जैसे मानव सभ्यता का विकास होता गया वैसे-वैसे मानव-समाज में विसंगतियाँ भी उत्पन्न होती चली गयी। इन्हीं विसंगतियों के परिणामस्वरूप व्यंग्य का प्रादुर्भाव हुआ। मानव जीवन विभिन्न परिस्थितियों से गुजरता है और विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार के मनोभावों का सृजन होता है। इन मनोभावों के परिणाम-स्वरूप किसी विशेष परिस्थिति में विशेष प्रकार की अनुभूति का स्वरूप प्रबल हो उठता है। यही अनुभूति किसी न किसी भाव के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। व्यंग्य अनुभूति भी इन्हीं भावों का परिणाम है। भरतमुनि ने इन्हीं भावों को दृष्टिगत करते हुए भावों की संख्या ४९ माना है, जिसमें संचारी भावों की संख्या ३३, स्थायी भावों की संख्या ८ तथा सात्विक भावों की संख्या ८ है। स्थायी भावों में एक भाव हास्य भाव भी है। हास्य भाव के छीटे व्यंग्य विधा के स्वरूप में भी परिलक्षित होता है हाँलाकि हास्य और व्यंग्य में हमेशा से ही बहुत अंतर नहीं रहा है, लेकिन हास्य भाव के तत्व व्यंग्य में हमेशा मौजूद हो यह ज़रूरी नही है।

व्यंग्य भाव में कभी-कभी तिक्तता की भावना इतनी ज़्यादा हो उठती है कि उसमें हास्य का समावेश कर देना फूहड़ लगने लगता है। व्यंग्य जीवन की सच्चाई को विभिन्न प्रकार के व्यंजनों की भाँति एक थाली में परोसकर पाठकों के सामने प्रस्तुत करता है। व्यंग्य समाज के उन अंगों की तस्वीर प्रस्तुत करता है जो किसी न किसी सच्चाई से प्रेरित होते हैं। संक्षेप में कहा जाए तो व्यंग्य वास्तविक जीवन से साक्षात्कार कराता है। आज से नहीं बल्कि युगों से व्यंग्य द्वारा समाज में व्याप्त रूढ़ियों, कुरीतियों तथा जर्जर मान्यताओं पर प्रहार किया जाता रहा है। देखा जाए तो व्यंग्य का मुख्य विषय कुरीतियाँ ही रही हैं, जो समाज में फैले पाखंड का पर्दाफाश करती रही हैं। वीर-गाथा काल में जहाँ एक ओर राजाओं के शौर्य, पराक्रम और प्रताप का वर्णन किया गया है वहीं दूसरी ओर अनेक राजाओं की कायरता का वर्णन भी मिलता है। नीति और छप्पय के रूप में भी छुटपुट व्यंग्य दिखायी पड़ जाता है। भक्तिकालीन समाज में फैले भ्रष्टाचार, पाखंड; रीतिकाल में प्रबल भावना; भारतेंदु युग तक आते-आते विदेशी शासन का क्रूर रूप और राजाओं की विवेकहीनता एवं जाहिलों को सचेत करने का आलम्बन भी व्यंग्य ही रहा है। भारतेंदु जी ने जिस प्रकार 'नए जमाने की मुकरी' में अंग्रेजों, पुलिस और ख़िताब पर कटाक्ष किया है वह सार्थक व्यंग्य का ही नमूना है। उदाहरण देखिए- 'इनकी, उनकी ख़िदमत करो रुपया देते देते मरो, तब आवै मोंहि करन ख़राब, क्यों सखी सज्जन, नहीं ख़िताब'। भारतेंदु जी ने अपने नाटक अंधेर नगरी में चूरन बेचने वाले के द्वारा अंग्रेजों की साम्राज्यवादी नीतियों पर किस तरह व्यंग्य किया है यहां एक उदाहरण दृष्टव्य है-'चूरन साहब लोग जो खाता, सारा हिंद हज़म कर जाता'। कबीर ने भी समाज में फैले विभिन्न प्रकार की कुरीतियों पर टिप्पणी करते हुए व्यंग्य को ही आलम्बन बनाया है। उदाहरणार्थ कबीर ने

अपनी व्यंग्यात्मक कला का परिचय देते हुए निम्न उक्ति के माध्यम से तीर्थाटन का विरोध किया है-'गंगा नहाए कहो को नर तरिंगे, मछरी न तरी जाको पानी में घर है'। कबीर, भारतेंदु, निराला तथा नागार्जुन के अलावा अन्य तत्कालीन इतिहासकारों ने भी समाज की बुराइयों पर व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया है। समाज के विभिन्न विकृत पक्षों अथवा किसी वर्ग विशेष के विसंगत पहलुओं को हँसने योग्य बनाकर उन पर तीखा प्रहार करके मार्मिक प्रसंग को उजागर करना व्यंग्य का कार्य है। अर्थात् यदि किसी व्यक्ति, वस्तु तथा संदर्भ पर व्यंग्य किया जाता है तो व्यंग्य से आहत व्यक्ति या व्यंग्य से आहत पक्षों को मानसिक क्लेश पहुँचाने के साथ-साथ पाठक की संवेदना को उजागर करना भी व्यंग्य का कार्य है। यही कारण है कि अधिकांशतः व्यक्ति व्यंग्यकार से हमेशा दामन बचाकर ही चलना चाहता है। मूलतः व्यंग्य के केंद्र में समग्र रूप से मानव हित की कामना प्रबल होती है। व्यंग्य सामाजिक विषमताओं को मापता, तौलता तथा पीटने का कार्य करता है। फ़िट्ज़पैट्रिक ने व्यंग्य की परिभाषा दी है कि "व्यंग्य का उद्देश्य आराम की ज़िंदगी गुजारने वालों को सताना और सताए हुए को आराम देना है।"[4]

अतएव व्यंग्य विधा हमारी आधुनिक पूँजी न होकर हमारी हज़ारों वर्षों पुरानी संस्कृति और सभ्यता के विकास का परिणाम है। व्यंग्य का मूल प्राचीन ग्रंथों में भी देखने को मिलता है। वेदों के समय से ही व्यंग का स्वरूप नित नए कलेवर के साथ हमारे सामने प्रस्तुत होता रहा है। इसलिए व्यंग विधा के स्वरूप

---

[4] सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन, शब्द संसार प्रकाशन, दिल्ली, २००९ पृष्ठ १२

के बारे में ठीक-ठीक निर्धारण करना टेढ़ी-लकीर प्रतीत होती है। हमारी संस्कृति और सभ्यता को समझने के लिए व्यंग्य एक मापक के तौर पर हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है जिससे तत्कालीन समाज में व्याप्त विसंगतियों के बारे में विवरण प्राप्त होता है। सामान्यतः व्यंग्य का अर्थ वक्रोक्ति के रूप में लिया जाता है। वक्रोक्ति का अर्थ है कि कहा कुछ जाय, समझा कुछ जाय, या फिर कथनी-करनी में अंतर उत्पन्न हो और किसी न किसी विसंगति पर करारा चोट करता हो। व्यंग्य में शब्दों की मार इतनी गहरी होती है कि व्यक्ति अंदर से झकझोर ही नहीं उठता है बल्कि विचलित भी हो जाता है। व्यंग्य में किसी बात को कहने का अर्थ है कि कही गयी बात लक्षित व्यक्ति/पाठक के अंतर्मन पर करारी चोट पहुँचा सके। एक सार्थक व्यंग्य वह होता है जिसमें व्यक्ति हंसी के साथ-साथ उस बात को सोचने के लिए मजबूर हो जाए।

अक्सर अख़बारों के कोने में हमें कार्टून के रूप में एक चित्र देखने को मिलता है, जिसके माध्यम से कार्टूनिस्ट किसी सामाजिक, आर्थिक या फिर राजनीतिक व्यवस्था या फिर घटना पर चोट करते हुए उसको आरेखित करता है। ऐसा करने में कार्टूनिस्ट किसी शब्द का उपयोग किए बिना व्यंग्यात्मक रूप से अपने लक्षित उद्देश्य को प्राप्त करता है। कार्टूनिस्ट उस आरेखण के माध्यम से पाठक के दिलो दिमाग़ पर लम्बे समय तक छाप छोड़ जाता है। इस प्रकार देखा जाए तो व्यंग्य शब्द विहीन भी हो सकता है। हमारे मन मस्तिष्क में चित्र द्वारा छोड़ी गयी विसंगतियों की छाप इतनी गहरी होती है कि हम तिलमिला जाते हैं तथा न चाहते हुए भी गहराई से सोचने के लिए मजबूर हो जाते हैं। जैसे 'सरकारी कर्मचारियों के लिए कहा जाता है कि यदि काम ही करना होता तो

वह सरकारी नौकर नहीं होता'। अर्थात् सर्वमान्य है कि सरकारी व्यक्तियों पर यह धब्बा लगा हुआ है कि सरकारी व्यक्ति काम नहीं करता। प्रायः देखा जाता है कि व्यंग्य और व्यंग्यकार को असंवेदनशील, वल्गर तथा अशिष्ट कहा जाता है लेकिन यह आरोप निराधार ही है। यह शाश्वत सत्य है कि समाज की विसंगतियों तथा भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने वालों को हमेशा से ही कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। पंगु व्यवस्था तथा जड़ जीवन-पद्धति पर विचारों के माध्यम से रोक लगाना ही व्यंग्य है और व्यंग्यकार का दायित्व है। क्योंकि व्यंग्य, भ्रष्ट समाज तथा विसंगतियों को चुनौती देते हुए रास्ते में रुकावट का कार्य करता है। इसलिए व्यंग्य आधुनिक जीवन के लिए महत्वपूर्ण सोपान है।

व्यंग्य की व्युत्पत्ति के संदर्भ में कई प्रश्न बनते हैं, जैसे व्यंग्य का जन्म कब, कैसे और क्यों हुआ? प्रसिद्ध व्यंग्यकार स्विफ़्ट ने व्यंग्य के जन्म के संदर्भ में कहा है कि "हमारी क़ानून की व्यवस्था की कमियों को देखते हुए स्पष्ट प्रतीत होता है कि अनेक अपराध जो दिन दहाड़े किए जाते हैं, चालाकी एवं धूर्तों के हथकंडों के कारण क़ानूनी रूप से दंडित नहीं किए जाते। मेरा यह सोचना नितांत स्वाभाविक है कि इन्हीं क़ानूनी सहायता करने के लिए विश्व में व्यंग्य का प्रारम्भ हुआ होगा ताकि वे लोग अपने कर्तव्य पथ पर आ सकें जिनको न धर्म का भय, न नैतिकता का मूल्य, और न दंड का डर है। हो सकता है कि ऐसे लोगों का व्यंग्य द्वारा पर्दाफ़ाश किया जाये और वे शर्म रखकर मानवता को नष्ट करने से रोके जा सकें।"[5] कुछ विद्वानों का मानना है कि व्यंग्य का जन्म गाली-गलौज से हुआ

---

[5] सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन, शब्द संसार प्रकाशन, दिल्ली, २००९, पृष्ठ १३

तो कुछ अन्य विद्वानों का मानना है की व्यंग्य सच्चाई के आग्रह से प्रेरित होकर प्रारम्भ होता है। कुछ भी कह लो किंतु एक बात सत्य है कि व्यंग्य 'गाली और गाली के बीच का रास्ता' ही प्रतीत होता है। व्यंग्य क़ानून की अवहेलना करने वालों को सचेत करने के लिए तथा असत् प्रवृत्ति से पीड़ित जनमानस के स्वर से उत्पन्न हुआ है। यही कारण है कि व्यंग्य में स्वर प्रधान होने के साथ ही जीवन जीने की कला का चिंतन भी है। समाज के ऊबड़-खाबड़ और विषम परिस्थितियों के अनुकूल में ही व्यंग्य का जन्म होता है। भारतीय समाज में इतनी विभिन्नता एवं विषमता है कि समाज को सिर्फ़ अच्छा कहने और सिर्फ़ बुरा कहने से काम नहीं चल सकता। व्यंग्य का कार्य समाज के भद्दे चेहरों को सामने लाकर पर्दाफ़ाश करना है। इसलिए समाज ही व्यंग्य का उत्स है, समाज के बिना व्यंग्य की कल्पना ही नहीं की जा सकती। अतएव सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक, शैक्षणिक तथा राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय आदि के विसंगत पहलुओं पर विचार-विमर्श करने के लिए व्यंग्य एक मंच प्रदान करता है।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य और व्यंग शब्द को लेकर अनेक मत प्रचलित हैं। कहीं- कहीं व्यंग्य को ही व्यंग का पर्याय मान लिया गया है। कुछ समीक्षक जैसे शरद जोशी, वीरेंद्र मेंहदीरत्ता, डॉ० खेलावन पाण्डेय और डॉ० उषा शर्मा आदि नें व्यंग शब्द का ही प्रयोग किया है। हरिशंकर परसाई नें अपने निबंध में कहीं-कहीं व्यंग्य शब्द के स्थान पर व्यंग का ही प्रयोग किया है। वहीं बालेंदु शेखर तिवारी नें भी व्यंग शब्द के प्रयोग को अधिक समर्थन दिया है। लेकिन समीक्षकों और साहित्यकारों ने व्यंग्य शब्द को व्यंग कहने के पीछे का कोई सिद्धांत नहीं दिया है। सही अर्थ में देखा जाए तो व्यंग शब्द को उतनी प्रतिष्ठा नहीं प्राप्त हुई

है जितनी प्रतिष्ठा व्यंग्य शब्द को प्राप्त हुई। व्यंग्य शब्द कहीं न कहीं अधूरा ही प्रतीत होता है। जिस तरह शरीर में हाथ, पैर, नाक, कान के बिना मनुष्य अपंग होता है उसी तरह व्यंग शब्द भी अपंग, अधूरा और दोषपूर्ण ही लगता है। इस प्रकार सटायर का उचित अर्थ व्यंग्य को ही माना जा सकता है।

व्यंग्य चित्र के लिए अंग्रेज़ी शब्द कार्टून अधिक प्रचलित है। जो कि दृश्य-कला का ही एक रूप है। हाँलाकि कार्टून शब्द के अर्थ में समय के साथ-साथ परिवर्तन होता गया है। मूल रूप में कार्टून शब्द का अर्थ पेंटिंग या ड्रॉइंग था जो कि बाद में यही व्यंग्य-चित्र बड़े पैमाने पर पत्र-पत्रिकाओं और समाचार-पत्रों में स्थान पाने लगा। भारत में कार्टून कला का विकास ब्रिटिश काल से ही माना जाता है। केशव शंकर पिल्लई 'शंकर' को भारतीय कार्टून कला का पितामह कहा जाता है। सन् 1932 के आसपास इन्होनें हिंदुस्तान टाइम्स में कार्टून बनाने की शुरुआत की। बाद में अन्य लोगों ने भी कार्टून कला को प्रोत्साहित किया। धीरे-धीरे कार्टून कला मात्र कलात्मक चित्र नहीं रह गया बल्कि प्रत्येक प्रांत में व्यंग्य-चित्र का रूप धारण करने लगा। एक लम्बे अरसे से व्यंग्य चित्र ने समाज के विभिन्न पक्षों पर व्यंग्य करने के उद्देश्य से एक मजबूत अस्त्र ही साबित हुआ है। स्वतंत्रता पूर्व भारत में 'व्यंग्य-चित्र' और 'व्यंग्य-लेखन' स्वतंत्रता सेनानियों एवं भारतीयों की आवाज़ थी। चूँकि ब्रिटिश भारत में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर पर्याप्त रूप से प्रतिबंध लगा हुआ था जिसकी वजह से व्यंग्य और व्यंग्य चित्र का प्रचलन तेज़ी से बढ़ा। व्यंग्य भाषा, चित्र और शैली अधिक मूर्त और प्रत्यक्ष होने के कारण लोकग्राह्य होने लगा। 21वीं सदी तक आते-आते व्यंग्य का क्षेत्र और भी व्यापक हो गया। खेलकूद सम्बन्धी कार्टून से लेकर राजनीतिक दांवपेंच

सम्बन्धी कार्टून भी देखने को मिलने लगे। समय के साथ-साथ हर चीज में कुछ न कुछ परिवर्तन आना स्वाभाविक है। यही वजह है कि वर्तमान में व्यंग्य और व्यंग्य चित्रों का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। व्यंग्य चित्र की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि वह कितनी सत्य और नवीन है। यह सदैव अपने परिवेश और सच्ची घटनाओं से ओत-प्रोत होती है। यह कम शब्दों और रेखाओं के द्वारा बहुत कुछ पाठक को समझा जाती है। व्यंग्य चित्र के माध्यम से एक व्यंग्यकार तब सफल होता है जब व्यक्ति के व्यक्तित्व में उत्पन्न विकृति को पहचानकर उसे दूर करने का प्रयास करता है, यही उसकी सफलता मानी जाती है और शायद सफल भी है। जिस तरह एक व्यंग्यकार समाज में व्याप्त विभिन्न विद्रुपताओं और विषमताओं को दूर करके कथनी और करनी में भेद प्रकट करता है उसी प्रकार एक व्यंग्य चित्रकार भी अपने चित्रों के माध्यम से समाज में व्याप्त विडम्बना एवं संत्रास को दूर करता है।

लम्बे अरसे से विद्वानों में व्यंग्य और हास्य के स्वरूप को लेकर मतभेद बना रहा है। हाँलाकि व्यंग्य हास्य का आश्रय तो लेता है किंतु यह कह देना उचित नहीं जान पड़ता कि व्यंग्य और हास्य का स्वरूप एक है। व्यंग्य और हास्य को यदि एक मान लिया जाए तो व्यंग्य फूहड़ हो जाएगा तथा इसकी धार कम हो जाएगी। व्यंग्य हमेशा उपदेशात्मक तथा प्रयोजनात्मक होता है जबकि हास्य निष्प्रयोजन होता है। हरिशंकर परसाई जी हमेशा से कहा करते थे कि व्यंग्य का सम्बंध मानवीयता और गहरे अंतस को स्पर्श कराने वाली होनी चाहिए। यदि व्यंग्यकार का इससे कोई सरोकार नहीं है तो व्यंग्य व्यंग्य न रहकर हास्य और सस्ती चीज़ बन जाएगी। हास्य सुंदर और आनंद दायक होता है जबकि व्यंग्य

कुरूप और चुभने वाला हो सकता है। हास्य रिझाने वाला हो सकता है जबकि व्यंग्य का उद्देश्य सदैव खिझाने वाला ही होता है। हास्य का प्रयोजन उपदेशात्मक न होकर केवल मनोरंजन और मज़े के लिए होता है जबकि व्यंग्य हमेशा उपदेशात्मक और सुधारात्मक होता है। उपदेश हमेशा कड़वा होता है जिसमें स्पष्ट रूप से विसंगतियों पर भर्त्सना खुले तौर पर की जाती है। हास्य और व्यंग्य को स्पष्ट तौर पर हरिशंकर परसाई ने इस प्रकार व्यक्त किया है "आदमी कुत्ते की बोली बोले यह एक विसंगति है। वन महोत्सव का आयोजन करने के लिए पेड़ काटकर साफ़ किए जाए जहाँ मंत्री महोदय गुलाब के वृक्ष के कलम रोपें, यह भी एक विसंगति है। दोनों में भेद है, दोनों में हँसी आती है, दाँत निकाल देना उतना महत्वपूर्ण नहीं है।"[6] देखा जाए तो दोनों की प्रकृति तथा दृष्टि में अंतर है; एक का लक्ष्य हास्य उत्पन्न करना है जबकि दूसरे का लक्ष्य विकृत मनोवृत्ति पर बड़ी ही सूझ-बूझ के साथ व्यंग्य किया गया है। हास्य में विनोदप्रियता के साथ-साथ मनोरंजन होता है जबकि व्यंग्य परिवर्तनकारी और सुधारवादी दृष्टिकोण लेकर चलता है।

सारांश रूप में कहा जाए तो हास्य और व्यंग्य के उद्देश्य भिन्न-भिन्न होते हैं तथा इनमें पर्याप्त असमानता देखने के लिए मिलती है। व्यंग्य सामाजिक परिवेश में उत्पन्न होकर क्षोभ, पीड़ा, करुणा, उपहास, परिहास तथा निंदा अनेक भाव-भंगिमा से युक्त होकर, साहित्य का आश्रय लेता है। व्यंग्य व्यक्ति की चारित्रिक दुर्बलता को उजागर करते हुए कभी-कभी घाव के लिए मरहम का रूप ले लेता है, तो कभी-कभी यह मात्र हास्य ही बनकर रह जाता है। वर्तमान

---

[6] हरिशंकर परसाई; सदाचार की ताबीज़ (कैफ़ियत), भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी, १९७६, पृष्ठ १०

समय विविध समस्याओं से घिरा हुआ है। इन समस्याओं के बीच नैतिक मूल्य का ह्रास इतना ज़्यादा हो रहा है कि व्यक्ति की कथनी और करनी में लम्बा अंतराल होता जा रहा है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद देखे गए विभिन्न प्रकार के सपनों का पूरा न होना, गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्ट नेताओं द्वारा लूट, योजनाओं का लाभ लाभार्थियों तक न पहुँच पाना, समाज के कुछ ही वर्गों द्वारा योग्यता की जगह चुनने के स्थान पर सिफ़ारिशों का चलन होना तथा काले धन की बढ़ोत्तरी से आर्थिक रूप से देश को कमजोर करना, अनेकों ऐसे उदाहरण हमें रोज़-मर्रा के जीवन में देखने और सुनने को मिल जाते हैं तथा अनेकों ऐसी कहानियाँ अख़बारों और पत्र-पत्रिकाओं में या तो दबा दी जाती हैं या फिर मुद्दों को भटकाने का प्रयास किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों ने ही व्यंग्य के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। संक्षिप्त रूप से हम कह सकते कि देश में ऐसी निराशाजनक परिस्थितियों नें व्यंग्य विधा को उत्कृष्ट किया है। इसलिए व्यंग्य विधा को मात्र साहित्य की विधा मानकर पढ़ना, समझना और आलोचनात्मक व्याख्या करना कूप-मंडूक की भाँति ही प्रतीत होता है। व्यंग्य विधा वर्तमान समाज की माँग है तथा यह हमारे समक्ष वर्तमान-जीवी है और किसी भी देश-काल के प्रति निष्ठावान है।

कुछ विद्वान व्यंग्य के पूर्वजों में प्रहसन का नाम भी गिना देते हैं। प्रहसन को अंग्रेज़ी में कॉमेडी, फार्स या स्किट भी कहा जाता है। प्रहसन का वातावरण विचित्रतापूर्ण होता है, जिसमें मुखौटा लगाए अजीबों-गरीब वस्त्र पहने हास्य और विनोद का स्वाँग भरते, उछलते-कूदते पात्र का परिचय कराना प्रहसन की विशेषता है। हिंदी साहित्य में प्रहसन को पहचान आधुनिक काल में आकर

भारतेंदु के द्वारा मिली है। भारतेंदु जी नें 'वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति' तथा 'अंधेर नगरी' नामक प्रहसन नाटक लिखकर सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक कुव्यवस्था पर व्यंग्य किया है। आधुनिक काल में भारतेंदु काल से ही प्रहसन की परम्परा चलती नजर आयी है। बाद में चलकर कुछ लोग प्रहसन को व्यंग्य विधा की प्रवृत्ति मानने लगते हैं। प्रहसन में व्यंग्य के माध्यम से ही रीति-रिवाजों, परम्पराओं, तत्कालीन भ्रष्ट राजनीति, सत्ता-लोलुपता तथा सामाजिक एवं राजनीतिक कुव्यवस्था पर मनोरंजन के साथ कटाक्ष किया जाता है। व्यंग्य में भी प्रहसन के तत्व मिल सकते हैं। इस संदर्भ में देखा जाए तो प्रहसन और व्यंग्य में अंतर कर पाना मुश्किल हो सकता है। प्रहसन और व्यंग्य में अंतर प्रस्तुतीकरण के आधार पर किया जाता है। प्रहसन मनोरंजन-परक होता है तथा वह जनता को हँसाता, गुदगुदाता, हास्यास्पद मूढ़ता करके चुटकी लेता है। इसमें चोट नहीं पहुंचाई जाती तथा दर्द की टीस जनता तक नहीं पहुँच पाती। जिस तरह बच्चे शरारत करते हैं तो बच्चों को आनंद आता है उसी प्रकार लोग प्रहसन से आनंद प्राप्त करते हैं। व्यंग्य विधा पिता के समान होता है जो कभी पीटता है, कभी पुचकारता है तो कभी-कभी उसकी एक डाँट से हृदय झकझोर उठता है जो जीवन भर के लिए एक सीख दे उठता है। व्यंग्य भी ठीक इसी तरह है। व्यंग्य का प्रभाव चिर-स्थायी तथा शाश्वत होता है जबकि प्रहसन का प्रभाव अस्थायी तथा क्षणिक होता है। प्रहसन मधुर होता है जबकि व्यंग्य कटु होता है। प्रहसन में व्यंग्य परोक्ष रूप से निहित होता है जबकि व्यंग्य प्रत्यक्ष रूप से कटु होता है। व्यंग्य चुभाने वाला होता है जबकि प्रहसन गुदगुदाने वाला। प्रहसन द्वारा जब भी व्यंग्य किया जाता है तो वह बड़े ही मृदु भाव से किया जाता है जबकि व्यंग्य का लक्ष्य छीछालेदर करके चोट करना होता है। सोमनाथ गुप्त के अनुसार

"प्रहसन लिखने का उद्देश्य मनोरंजन भी है और धर्म के नाम पर पाखंड का मूलोच्छेदन भी........ समाज की बुराई को यदि केवल बुराई मात्र कहकर उससे आशा की कि समाज उस बुराई को दूर कर देगा तो यह व्यर्थ है।"[7] स्पष्ट है कि यदि समाज की बुराइयों को दूर करना है तो व्यंग्यकार व्यंग्य के माध्यम से ही दूर कर सकता है। मौन रहकर आप सिर्फ़ व सिर्फ़ समाज को विकलांग ही बना रहे हैं। यह भी सत्य है कि आप पूर्णतः समाज को नहीं बदल सकते लेकिन आपका प्रयास ही एक नयी शुरुआत कर सकता है। व्यंग्यकार व्यंग्य और प्रहसन के माध्यम से ही मौन को तोड़ने का प्रयास करता है। वह निरा चुप नहीं है। वह सत्य को भोगता, समझता और समझाने का प्रयास करता है। तात्पर्य यह है कि सामाजिक बुराइयों को दूर करने के लिए व्यंग्य और प्रहसन दोनों ही अपने-अपने स्तर पर प्रयासरत हैं।

व्यंग्य के स्वरूप को समझने के लिए विभिन्न प्रकार की परिभाषाएँ समझना आवश्यक है, जो निम्नलिखित हैं-

ऑक्सफ़ोर्ड इंगलिश डिक्शनेरी के अनुसार "व्यंग्य वह रचना है जिसमें प्रचलित दोषों अथवा मूर्खताओं का कभी-कभी कुछ अतिरंजना के साथ, मज़ाक़ उड़ाया जाता है। उसका अभीष्ट किसी व्यक्ति-विशेष अथवा व्यक्तियों के समूह का उपहास करना होता है और इस प्रकार एक व्यक्तिगत आक्षेप लेख जैसा होता है।"[8]

---

[7] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली विचार और व्यंग्य, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, २०००, पृष्ठ ५६

[8] ऑक्सफ़ोर्ड इंगलिश डिक्शनेरी; खंड ९; पृष्ठ ११९

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसार "व्यंग्य की साहित्यिक तथा ग्राह्य परिभाषा हास्यास्पद अथवा निंदक तथ्यों की मनोरंजक अथवा घृणोत्पादक अभिव्यक्ति के रूप में दी जा सकती है, बशर्ते उस अभिव्यक्ति में हास्य-तत्व साहित्यिक रूप में स्पष्टतः परिलक्षित हो। हास्य के अभाव में व्यंग्य गाली का रूप धारण कर लेता है तथा सहित्यिकता के बिना वह विदूषकी ठिठोली मात्र बनकर रह जाता है।"[9]

बायरन महोदय नें व्यंग्य का ध्येय मूर्खता को माना है और कहते हैं "मूर्ख मेरी थीम है, व्यंग्य ही इसलिए मेरा गान हो।"[10]

बर्नार्ड शॉ ने हास्य के द्वारा कटाक्ष को ही व्यंग्य माना है और कहते हैं "मूर्खों को प्रोत्साहन देने के बजाए हास्य द्वारा उन्हें ध्वस्त करने तथा विकृति को विनोद-भाव से न स्वीकारने वालों पर ही संसार की मुक्ति निर्भर करती है।"[11]

ड्राइडन नें व्यंग्य को दोष-सुधार की संज्ञा देते हुए कहा है "व्यंग्य का वास्तविक उद्देश्य शोधन द्वारा दोष-सुधार है।"[12]

इसी प्रकार भारतीय विद्वानों नें व्यंग्य की परिभाषा के संदर्भ में जो मत दिए हैं उनपर भी चर्चा ज़रूरी हो जाती है। कुछ प्रमुख भारतीय विद्वानों के मत निम्न हैं -

---

[9] एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका; खंड २०; पृष्ट ५

[10] शशि मिश्र; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य निबंध, संकल्प प्रकाशन, बम्बई, १९९२, पृष्ठ ६

[11] शशि मिश्र; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य निबंध, संकल्प प्रकाशन, बम्बई, १९९२, पृष्ठ ६

[12] शशि मिश्र; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य निबंध, संकल्प प्रकाशन, बम्बई, १९९२, पृष्ठ ७

हज़ारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार "व्यंग्य वह है जहां कहने वाला अधरोष्ठ में हँस रहा हो और सुनने वाला तिलमिला उठा हो और फिर भी कहने वाले का जवाब देना अपने को और ही उपहासास्पद बना लेना हो जाता है।"[13]

रामकुमार वर्मा के अनुसार "आक्रमण करने की दृष्टि से वस्तुस्थिति को विकृत कर उससे हास्य उत्पन्न करना ही व्यंग्य है।"[14]

श्रीलाल शुक्ल के अनुसार "मैनें व्यंग्य को आधुनिक जीवन और आधुनिक लेखन के एक अभिन्न अस्त्र और एक अनिवार्य शर्त के रूप में पाया है।"[15]

नरेंद्र कोहली के अनुसार "कुछ अनुचित अन्यायपूर्ण अथवा ग़लत होता देखकर जो आक्रोश जगता है वह यदि काम में परिणत हो सकता तो अपनी सहायता में वक्र होकर जब अपनी तथा दूसरों की पीड़ा पर हंसने लगता है तो वह विकट व्यंग्य होता है, पाठक के मन को चुभलाता-सहलाता नहीं, कोड़े लगाता है। अतः सार्थक और सशक्त व्यंग्य कहलाता है।"[16]

रघुबीर सहाय के अनुसार "जब घने कष्ट में जब मन गम्भीर हो उठे, तब व्यथा में जो व्यंग्य है वह भी वहाँ हो नहीं तो व्यथा ही वहाँ कैसे रहेगी।"[17]

भारतीय एवं पाश्चात्य विद्वानों द्वारा दिए गए उपर्युक्त परिभाषाओं से निम्न बातें स्पष्ट रूप से निकलकर आती हैं कि व्यंग्य का जन्म समाज में फैली

---

[13] हजारी प्रसाद द्विवेदी; कबीर, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९४२, पृष्ठ 164

[14] राम कुमार वर्मा; रिमझिम, किताब महल, इलाहाबाद, १९५५, पृष्ठ १३

[15] श्रीलाल शुक्ल; मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (परिचय), ज्ञान भारती, दिल्ली, १९७७, पृष्ठ ९-१०

[16] नरेंद्र कोहली; मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (अपनी ओर से), ज्ञान भारती, दिल्ली, १९७७, पृष्ठ ८

[17] रघुवीर सहाय; सीढ़ियों पर धूप में, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, वाराणसी, १९६०, पृष्ठ २५७

विसंगति, अत्याचार, दुर्बलता, सामाजिक विकृतियाँ से ही होता है। निश्चय ही व्यंग्य का क्षेत्र व्यापक है, जो हमारे चारों ओर व्याप्त विसंगतियों से ही जन्म लेता है। सामाजिक जीवन में व्याप्त कु-प्रथाओं तथा अवस्थाओं का विरोध ही व्यंग्य का लक्ष्य है। व्यंग्य एक ऐसा अस्त्र है जो जीवन में व्याप्त पीड़ा और आक्रोश में सामंजस्य स्थापित करके सत्य से साक्षात्कार कराता है। व्यंग्य आंतरिक रूप से चुभाने वाला होता है जबकि बाह्य रूप से मनोरंजन-परक तथा हास्य-परक होता है। व्यंग्य नकारात्मक तत्वों, दुर्गुणों एवं मूर्खताओं की निंदा करता है। इस प्रकार देखा जाए तो व्यंग्य विधा निषेधात्मक प्रतीत होते हुए भी सकारात्मकता का सृजन करता है। व्यंग्य का उद्देश्य समाज एवं व्यक्ति के सुधार पर बल देते हुए नैतिक बोध कराता है। व्यंग्य कथनी और करनी में उत्पन्न अंतराल की समीक्षा करता है। व्यंग्य के विविध स्वरूप है जो कहीं पर्दाफ़ाश करते नज़र आता है, कहीं एक आलोचक के रूप में, कहीं वह विनोद, हास्य, परिहास करते नज़र आता है तो कहीं वह चिकित्सक के रूप में नज़र आता है। यह निर्विवाद है कि व्यंग्य का स्वरूप चाहे जो हो किंतु व्यंग्य के मूल लक्ष्य में 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की कल्पना निहित होती है। लेकिन व्यंग्य न ही बहुजन हिताय होता है और न ही बहुजन सुखाय। चूँकि व्यंग्य से कुछ ही लोगों को सुख की प्राप्ति होती है और कुछ ही लोग व्यंग्य के कोपभाजन के शिकार होते हैं।

व्यंग्य लिखने के लिए कई मानसिक अवस्थाएँ हैं जिसके वशीभूत होकर व्यंग्यकार व्यंग्य की रचना करता है; उदाहरणार्थ घृणा, दुःख, क्षोभ, क्रोध, ईर्ष्या, तीव्र आक्रोश इत्यादि। जन्म से ही व्यक्ति सामाजिक होता है। व्यक्ति का समाज में अनेक दायित्व होता है। इन दायित्वों के प्रति व्यक्ति निरंतर संघर्षरत है। कई

बार वह इसमें सफल होता है तो कई बार वह इसमें असफल भी होता है। पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक और आर्थिक स्तर पर व्यक्ति को जब मानसिक आघात पहुँचता है तब वह व्यंग्य के ज़रिए उस कष्ट को अभिव्यक्त करता है। व्यंग्यकार शब्द को ही अपने आक्रोश का माध्यम बनाता है। एक सामाजिक व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए ऐसा करना आवश्यक भी होता है। आत्म-हीनता की ग्रंथि से पीड़ित व्यक्ति समाज के लिए अति-हानिकारक होता है। इसलिए व्यक्ति शारीरिक रोगों एवं मनोविकारों से बचने के लिए विवेक और बुद्धि का सहारा लेकर व्यंग्य करने की कला को प्राप्त करता है। यह ज़रूरी भी नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति व्यंग्य-कला को ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता हो। यह अपेक्षा तो एक अच्छे कलाकार और साहित्यकार से ही की जाती है। क्योंकि कलाकार और साहित्यकार के पास इससे बेहतर कोई दूसरा अस्त्र नहीं होता। शाब्दिक आक्रमण की शक्ति सिद्धों और योगियों नें भी अपनी उक्तियों में बेधड़क रूप से प्रयोग किया है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी लिखते हैं कि “सिद्ध और योगी लोगों कि आक्रमणात्मक उक्तियों में एक प्रकार की हीन भावना की ग्रंथि या इन्फ़िरीऑरिटी कॉम्प्लेक्स पाया जाता है। वे मानो लोमड़ी के खट्टे अंगूरों की प्रति-ध्वनि हैं, मानो चिलम न पा सकने वालों के आक्रोश हैं।”[18]

छोभ, क्रोध, घृणा, ईर्ष्या इत्यादि मानसिक अवस्थाओं के अलावा व्यंग्य करने का अन्य कारण और भी हो सकते हैं; उदाहरणार्थ- विसंगति तथा वक्रोक्ति अर्थात् कथनी और करनी में अंतर। स्वतंत्रता प्राप्ति के इतने वर्षों के बाद भी

[18] हज़ारी प्रसाद द्विवेदी; कबीर, हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, १९४२, पृष्ठ १६३

भारतीय लोगों के सपनों का पूरा न हो पाना, ग़रीबी, बेरोजगरी, भुखमरी से आहत जन तथा मानसिक उत्पीड़न के शिकार हुए भोले- भाले किसान ऐसी अनेक विसंगतियों के कारक रहे हैं। बुद्धिजीवी व्यक्तियों पर पड़ने वाले मानसिक आघात ही व्यंग्य करने के लिए विवश करते हैं। सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक तथा धार्मिक विसंगतियाँ ही चेतना पर प्रभाव डालती हैं तथा मानसिक द्वन्द्व पैदा करती हैं। यही द्वन्द्व की स्थिति ही व्यंग्य को उजागर करती है। जनसाधारण का आक्रोश एवं क्रोध व्यंग्यकार की मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में एक प्रेरक तत्व की भूमिका का निर्वहन करता है जिसके माध्यम से साहित्यकार अपने विवेक और बुद्धि के सहारे समाज में व्याप्त कुरीतियों तथा मान्यताओं पर चोट करके अपने आक्रोश को अभिव्यक्त तथा उनके प्रति वितृष्णा पैदा करता है। कबीर नें तत्कालीन परिस्थितियों पर बड़ी ही सच्चाई एवं जागरूकता के साथ प्रहार किया है। आगे चलकर प्रगतिशील साहित्यकारों में निराला ने भी अपनी कविता 'गर्म-पकौड़ी', 'रानी और कानी' तथा 'कुकुरमुत्ता' में व्यंग्य की भाषा को आधुनिक बनाने में अपनी निपुड़ता का परिचय दिया है। निराला जी नें अपनी कविताओं में हास्य और विनोद के साथ भयंकर रूप से व्यंग्य किया है। इन्होनें अपनी कविता के उद्देश्य में अभिजात्य वर्ग पर व्यंग्य करके सर्व-साधारण जन की प्रतिष्ठा की है। इन्हीं के शब्दों में देखा जा सकता है "इसमें वही शरीक होंगे, जिन्हें न्योता नहीं भेजा गया, साथ ही जो कंगाल नहीं, ना ऐसे बड़े आदमी, जो अपनी जगह गड़े रह गये। मतलब साफ़ है। हम दोनो मतलब के। न हम पैरों पड़े न वह। मिहनत की कमाई हम भी खाए और वह भी।"[19]

---

[19] सूर्यकांत त्रिपाठी निराला; कुकुरमुत्ता, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, १९६९, पृष्ठ ४४

इस प्रकार देखा जाए तो व्यंग्य लिखने के लिए अमुक रचना का आधार क्या है, यह उसकी प्रकृति को देखकर ही पता लगाया जा सकता है। व्यंग्य का मूल, समाज में व्याप्त विसंगतियों से उत्पन्न बौद्धिकता का परिचायक है तथा क्रोध या आक्रोश की कुंठा से उत्पन्न आत्महीनता का तत्व है। व्यंग्य लेखन के लिए एक विशेष प्रतिभा की आवश्यकता होती है, हाँलाकि विशेष परिस्थितियों में साहित्यकार साहित्य-सर्जन के लिए अपने परिवेश तथा चित्त-वृत्तियों से भी इस प्रतिभा को ग्रहण करता है। कुछ मनोवैज्ञानिक तत्व ऐसे भी होते हैं जो व्यंग्यकार को व्यंग्य लेखन के लिए सृजनोन्मुख करते हैं। आत्महीनता की ग्रंथि से पीड़ित होकर व्यंग्य करने की प्रवृत्ति से व्यंग्यकार हमेशा से ही इन्कार करते आए हैं। व्यंग्यकार व्यंग्य लेखन का उद्देश्य लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित मानते हैं। समीक्षकों द्वारा पश्चिम के अनेक साहित्यकारों के जीवन का अध्ययन करने के पश्चात उन पर पर यह आरोप लगाया जाता है कि वे व्यक्तिगत हीनता से प्रेरित होकर व्यंग्य करते हैं। हॉरेस और पोप के संदर्भ में भी यही कहा जाता है कि हॉरेस दास-पुत्र होने के कारण समाज से उसे उपेक्षा मिली। इसी उपेक्षा की भावना नें उसमें व्यंग्य करने की प्रतिभा का सृजन किया। इसी तरह पोप का जीवन दर्शन भी कठिनाइयों से भरा था। कैथोलिक होने के कारण समाज से उपेक्षा ही मिली। इसी उपेक्षा की भावना नें पोप में सृजनात्मक प्रतिभा का विकास किया। ऐसे ही अन्य व्यंग्यकारों के बारे में कहा जाता है कि व्यंग्य-लेखन के पीछे उनकी व्यक्तिगत हीनता ही उत्तरदायी होती है। जबकि असलियत में ऐसा है नहीं। अनेक भारतीय तथा पाश्चात्य विद्वान ऐसे हैं जिन्होंने संभ्रान्त जीवन बिताने के बावजूद उनमें वह पैनी दृष्टि है जो सूक्ष्म से सूक्ष्म संदर्भों को उकेरने में सहायक होती है। यह उनकी ज़िंदादिली है कि उन्होनें गरीब, मज़दूर

एवं कठपुतली समझे जाने वाले व्यक्तियों की ओर सिर्फ़ सहानुभूतिपूर्ण नज़रों से देखा ही नहीं बल्कि उस रूप में अर्धजीवित व्यक्तियों को जीवित करने का प्रयास भी किया है।

चूँकि व्यंग्य का संसार इतना समृद्ध है कि इसका सरोकार समाज के सभी पक्षों से होता है। व्यंग्यकार भी इसी समाज में रहता है तथा वह आम व्यक्ति के जीवन के सभी पहलुओं को भोगता है। जैसा कि अज्ञेय नें कहा है 'दुःख सबको माँजता है'। व्यंग्यकार सिर्फ़ भोगता ही नहीं वरन् वह यह प्रयास भी करता है कि उस दुःख की घड़ी से वह स्वयं भी निकले और दूसरों को भी निकलने में मदद करे। व्यंग्यकार अपने दायित्वों को पहचानता है तथा वह दुखी, पीड़ित और शोषित तथा कमजोर व्यक्तियों के दुखों और कष्टों को वाणी देता है। व्यंग्यकार आदर्श समाज का एक मॉडल प्रस्तुत करना चाहता है जिसके लिए उसकी विचारशक्ति इतनी तीक्ष्ण और गम्भीर होती है कि वह आहत ही नहीं करता बल्कि विचलित भी करता है। व्यंग्यकार का सम्पूर्ण आवेश ही इतना गहरा होता है कि पाठक के समझ की वस्तु ही नहीं रह जाती। श्रेष्ठ व्यंग्य तभी सफल और सार्थक माना जाता है। यदि व्यंग्यकार की सम्पूर्ण भावना पाठक के समझने की वस्तु हो जाए तो समझिए व्यंग्य का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा।

व्यंग्य के अन्य उत्प्रेरक तत्वों में विकृतियाँ ज्ञानमूलक मनोवृत्ति एवं सूक्ष्म-दृष्टि, तिप्त-परिहास, अदम्य-साहस, आलोचना एवं ताड़ना, बुद्धि-वैचित्र्य एवं कल्पना-वैचित्र्य, चरित्र-चित्रांकन, अतिशयता, अवनति तथा विशिष्ट-सौंदर्यानुभूति एवं सत्यान्वेषक-दृष्टि उल्लेखनीय है। हम व्यंग्य के इन प्रेरक तत्वों को क्रमशः समझने का प्रयास करते हैं।

'विकृति-त्रास', व्यंग्य के तत्वों में महत्वपूर्ण स्थान रखता है। क्योंकि व्यंग्य का विषय क्षेत्र बहुत ही व्यापक होता है। व्यंग्यकार समाज के सभी पक्षों से सम्बंध रखता है। चूँकि व्यंग्यकार यथार्थवादी होने के कारण उसकी दृष्टि अपने आस-पास परिलक्षित दोषों और मूर्खता-पूर्ण विसंगतियों के रहस्यों की जड़ों तक पहुँचने के लिए प्रयासरत है। योजना पूर्ण ढंग से सामाजिक पीड़ा के रहस्यों का उद्घाटन करना व्यंग्य का लक्ष्य होता है। सामाजिक व्यक्ति जिन विकृतियों को भोगता है व्यंग्य के लिए उत्प्रेरक तत्व वह तब बन जाता है जब व्यंग्य अपनी पैनी दृष्टि से उस छोर का पता लगा कर बखिया उधेड़ने का कार्य करता है। मात्र खड़े होकर देखते रहना व्यंग्यकार का कार्य नहीं होता है। विकृतियों तथा असंगतियों को कहानीकार तथा उपन्यासकार अपना विषय-वस्तु बनाकर समाज के समक्ष रखता है तथा वह निर्णय के लिए समाज पर छोड़ देता है। लेकिन व्यंग्यकार उन कृत्यों का भंडाफोड़ कर के चिर-स्मरणीय बना देता है। व्यंग्यकार का कार्य सिर्फ़ रोगी बनकर देखना ही नहीं है वह स्वयं उसका उन्मूलन करता है। व्यंग्य विपरीत परिस्थितियों में ही जन्म लेता है। उसके लिए मुलायम आसन की आवश्यकता नहीं होती बल्कि कँटीले बिस्तरों को ही व्यंग्य अपना आश्रय बनता है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विसंगतियाँ मौजूद हैं। जहां भी मनुष्य का वास है, उसके साथ उसकी दुर्बलताओं का भी वास होता है। व्यंग्य इन दुर्बलताओं से ही जन्म लेता है। निश्चित रूप से हम कह सकते हैं कि प्रत्येक व्यंग्य रचना के केंद्र में विकृति-त्रास की भावना विद्यमान रहती है। इसकी विविधता और व्यापकता इतनी अधिक होती है कि सम्पूर्ण व्यंग्य सर्वथा मौलिक ही प्रतीत होती है।

'सूक्ष्म-दृष्टि' एवं 'ज्ञानमूलक मनोवृत्ति' ऐसा तत्व है जो साहित्य कि प्रत्येक विधा में मौजूद होता है, लेकिन व्यंग्य विधा में सर्वाधिक प्रखर रूप में उपलब्ध होता है। यह तत्व बुराई और दोषों को पहचान कर उसके निवारण पर बल देता है। समाज में मौजूद हास्यास्पद विषयवस्तुओं और धारणाओं से व्यंग्यकार आँखें नहीं चुराता है बल्कि उससे आँख मिलाकर उसके वास्तविक रूप को और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास करता है। इस तत्व के द्वारा व्यंग्यकार समाज के लिए आदरणीय व्यक्ति बन जाता है जो कहीं न कहीं समाज-सुधारक से भी ऊँचा स्थान प्राप्त कर लेता है। सूक्ष्म-दृष्टि एवं ज्ञान-मूलक मनोवृत्ति द्वारा व्यंग्यकार जीवन के विविध पहलुओं पर विचार विमर्श कर के सृष्टि में नव-सृजन का कार्य करता है।

व्यंग्य के उत्प्रेरक तत्वों में तिक्त परिहास भी है। यह ऐसा तत्व है, जो व्यंग्य में अनिवार्य रूप से पाया जाता है। इसके बिना व्यंग्य अधूरा ही प्रतीत होता है। क्योंकि व्यंग्यकार में सहानुभूति और दयालुता के तत्व भी मौजूद होते हैं। जबकि व्यंग्य में इसकी आवश्यकता नहीं होती है। व्यंग्यकार सामाजिक व्यक्ति होता है, जिसके कारण चाहकर भी व्यंग्य लेखन में पूर्णतः तिक्त भाव नहीं आ पाता उसमें स्वतः ही परिहास के तत्व आ जाते हैं। व्यंग्य-धारणा सदैव इसके प्रतिकूल होती है। उसमें कठोरता ग्राह्य होती है। दयालुता और सहानुभूति के तत्व का व्यंग्य में कोई महत्व नहीं होता है। यही कारण है कि व्यंग्य धरणा की प्रवृत्ति सिर्फ़ परिहास नहीं कही जा सकती। हास-परिहास के तत्वों का जब व्यंग्य के परिवेश में प्रयुक्त होता है तो वह पूर्णतः दयालुता का चादर हटा देता है, उसे स्वतः ही दयालुता की बलि दे देनी पड़ती है। दयालुता की बली दे देने के पश्चात

परिहास अपना स्वरूप बदल कर आक्रामक रूप धारण कर लेता है। परिहास का यह परिवर्तित स्वरूप व्यंग्य में निरूपित होकर व्यंग्यकार को गम्भीर आलोच्य दृष्टि तथा दृढ़ विश्वास प्रदान करता है। व्यंग्यकार में इतना दृढ़-विश्वास होता है कि उसके द्वारा उक्त वाक्य को अस्वीकार करने की क्षमता साधारण जन में नहीं होती।

व्यंग्यकार में अदम्य साहस की प्रवृत्ति भी व्यंग्य के लिए उत्प्रेरक तत्व के रूप में उल्लेखनीय है। जिस बात को कहने में साधारण व्यक्ति को सोचनें में भी डर लगता है उसी बात को व्यंग्यकार उसके विरुद्ध सिर्फ़ कहता ही नहीं बल्कि तंज कर के विचलित कर देता है। लोकतंत्र के समय में भी साधारण व्यक्ति असंगत तथ्यों के विरुद्ध बोलने एवं कहने से हिचकता है जबकि व्यंग्यकार के लिए उक्त विषय व्यंग्य के लिए उत्तेजक तत्व बन जाते हैं। वर्तमान समय में शासन व्यवस्था में फैली अराजकता को व्यंग्य साहित्य ही अपने माध्यम से अभिव्यक्त करता है। वह अदम्य साहस का ही द्योतक है। निर्भयता एवं साहस के बल पर ही व्यंग्य की धार तेज होती है तथा उतनी ही वह गहरी चोट पहुँचाती है। व्यंग्य का प्रभाव समाज पर जितना अधिक पड़ता है व्यंग्यकार को उतने ही मानसिक आनंद की प्राप्ति होती है। यही प्रभाव व्यंग्यकार को सफलता के उच्चतम बिंदु पर पहुँचाता है। जो व्यंग्य रचना जितनी अधिक ऊँचाई पर होता है उसमें निर्भयता और निडरता का समावेश उतना ही सफलतापूर्वक किया गया होता है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जो व्यंग्य रचना जितनी अधिक सफल और श्रेष्ठ होती है उसमें साहस और निर्भयता की दीप्ति उतनी ही अधिक परिलक्षित होती है।

आलोचना एवं ताड़ना की प्रवृत्ति व्यंग्य विधा में सर्वाधिक मिलती है। व्यंग्य का तात्पर्य ही विकृतियों पर प्रहार कर के उसमें निहित मुखौटों को उघाड़ कर समाज के समक्ष यथार्थ को प्रस्तुत करता है। व्यंग्य के आलोचना तत्व साहित्यिक आलोचना से भिन्न होते हैं। व्यंग्य आलोचना में प्रहार करने की तीव्रता अधिक होती है तथा चोट प्रत्यक्ष रूप से न कर के अप्रत्यक्ष रूप से किया जाता है। व्यंग्यकार व्यंग्य रचना में आवरणों की ओट में प्रहार करता है, तथा व्यंग्य शैली को इस प्रकार से योजनाबद्ध करता है कि उस चोट से पाठक का हृदय-पटल झकझोर उठने के बावजूद पाठक उस रचना से खुद को दूर नहीं कर पाता।

यह निर्विवाद है कि व्यंग्य में भावना का स्थान गौण है क्योंकि व्यंग्यकार को अपनी बुद्धि का प्रयोग करते हुए व्यंग को एक ऐसी दिशा देनी होती है जिससे कि पाठक तक व्यंग्यकार की बात उसी रूप में पहुँचे जिस रूप में व्यंग को लक्षित किया गया था। किंतु जब बात व्यंग्य में बुद्धि और कल्पना के महत्व की होती है तो अनेक विचारकों के मतों में विरोध दिखायी देता है। उदाहरण के लिए 'नारमन फरलांग' का मत है कि "व्यंग्यकार की कला कल्पना की अपेक्षा प्रज्ञा (बुद्धि) की वस्तु है।"[20] वहीं कुछ विचारकों नें बुद्धि की अपेक्षा कल्पना को अधिक महत्व दिया है; उदाहरण के लिए गिल्बर्ट हाइट के अनुसार "व्यंग्यकार की कल्पना इतनी द्रुत हो कि पाठक की कल्पना से की छलांग आगे हो।"[21] ऐसे में सवाल यह आता है कि आख़िर व्यंग में किसका महत्व अधिक है?; कल्पना का महत्व अधिक है या फिर बुद्धि का महत्व अधिक है। अगर हम व्यंग्य की बात करें

[20] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली: विचार और व्यंग; वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली; २००२; पृष्ठ 74

[21] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली: विचार और व्यंग; वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली; २००२; पृष्ठ 74

तो एक अच्छे व्यंग्य की कसौटी यह है कि "पाठक की आँखें जब अनुभूति की अतिरेक से और भी अधिक तल्लीनता के साथ रचना से गुँथ जाती है और पिन की चुभन सा मीठा-मीठा दर्द होंठों के कोनों पर लरज उठता है।"[22] वहीं काका हाथरसी और गिरिराज शरण अग्रवाल जी नें एक अच्छे व्यंग्य की कसौटी इस बात को माना है कि जब पाठक "तिलमिलाकर कुछ सोचने के लिए मजबूर हो जाए तो समझिए व्यंग और व्यंग्यकार सफल हुए हैं।" कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य की सफलता इस बात में निहित है कि एक व्यंग्यकार बिना अपना मूल उद्देश्य ज़ाहिर किए जब हास्यपूर्ण ढंग से पाठक के अवचेतन मन में अपने मूल उद्देश्य को पहुँचा दे। किसी लक्षित उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए हमें योजना और उस योजना को पूर्ण करने के लिए उपलब्ध विकल्पों में से उचित विकल्प के चुनाव की आवश्यकता होती है। जहाँ तक योजना की बात है योजना बनाने की क्रिया एक बुद्धि-प्रधान क्रिया है। विकल्पों में से उचित विकल्प का चुनाव कल्पना एवं बुद्धि के समायोजन का परिणाम होता है क्योंकि कौन से विकल्प से किस तरह का परिणाम प्राप्त होगा इसका निर्धारण सिर्फ़ बुद्धि ही नहीं वरन् कल्पनाशीलता पर भी निर्भर करता है। यही बात व्यंग्य के संदर्भ में भी लागू होती है। व्यंग्य में व्यंग्यकार को पाठक के अवचेतन मन में चुपके से उस चुभती बात को डालना है जिसके लिए उसने व्यंग्य की रचना की है। ऐसा करने के लिए व्यंग्यकार अतिशयता का उपयोग मुख्य रूप से करते हैं और अतिशयता मुख्य रूप से व्यंग्यकार की कल्पना का परिणाम होती है। इस आधार पर हम निष्कर्ष रूप में कह सकते हैं कि एक व्यंग्य के लिए व्यंग्यकार की बुद्धि और

[22] लतीफ़ घोंघी; बीमार न होने का दुःख; सौरभ प्रकाशन; दिल्ली; १९७०; पृष्ठ ८

व्यंग्यकार की कल्पना क्षमता दोनों ही बहुत आवश्यक है। इस प्रकार अगर व्यंग्य अगर कैंची है तो बुद्धि और कल्पना उसकी दो फ़लकें हैं जिसकी सहायता से व्यंग्यकार पाठक के मन को भेदकर उसके अवचेतन मन में उस नग्न सच्चाई/विशेष मुद्दे को रखता है जिसके लिए उसने व्यंग्य की रचना की है।

जिस तरह पकवान बनाने के लिए विभिन्न अवयवों को उचित मात्रा में मिलाना ही पर्याप्त नहीं बल्कि उसे एक निश्चित तापमान पर पकाना भी ज़रूरी होता है उसी तरह सिर्फ़ योजना और कल्पना जैसे अवयव ही एक व्यंग्य के लिए पर्याप्त नहीं वरन लक्ष्य का ताप भी ज़रूरी है। व्यंग्य में ताप का अर्थ है कि व्यंग्य में कही जाने वाली बात को कितने पुरज़ोर तरीक़े अर्थात् व्यंग्य को पाठक के मन में कितनी गहनता के साथ उतारा जा रहा है। यही गहनता पाठक के मन को कचोटने का कार्य करती है। व्यंग्यकार को यह भी ध्यान रखना होता है कि वह पाठक के मन को उतना ही कचोटे या उसके हृदय को उतना ही बेधे जितने से व्यंग्यकार के उद्देश्य की पूर्ति हो सके। जिस तरह से पकवान का ताप अधिक होने से पकवान के जलने का डर रहता है और कम होने पर कच्चे होने का डर रहता है। उसी तरह व्यंग्य में लक्षित ताप की मात्रा भी बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, अगर इसकी मात्रा ज़्यादा हो जाए तो पाठक व्यंग्य को पचाने में असहज हो जाता है और कम रहने पर पाठक को व्यंग्य रास नहीं आएगी। एक व्यंग्य में भिन्न स्थानों पर भिन्न प्रकार के अवयव हो सकते हैं। ऐसे में व्यंग्यकार का व्यंग्य के ताप पर नियंत्रण होना भी ज़रूरी होता है। ताप के आधार पर व्यंग्य को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम प्रकार में ऐसे व्यंग्यों को लिया जा सकता है जिनमें ताप को निरंतर बढ़ाते हुए व्यवस्थित किया जाता है और एक निश्चित

ताप की मात्रा पर पहुँच कर अध्याय का अंत कर दिया जाता है। वहीं दूसरे प्रकार में ऐसे व्यंग्य होते हैं जिनमें इसका उल्टा होता है। अर्थात् अधिक ताप से शुरू कर के कम ताप तक लाकर अध्याय का अंत कर दिया जाता है। और तीसरे प्रकार के व्यंग्य में निरंतर तापांतर देखने को मिलता है अर्थात् आवश्यकता के अनुसार व्यंग्य के ताप को कभी कम तो कभी अधिक कर के उस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी होती है। व्यंग्यकार ताप में यह अंतर व्यंग्य के विषय के अनुसार करता है और उचित ताप के आधार पर ही व्यंग्यकार की रचना को सफल या असफल माना जाता है। इसलिए व्यंग्य में ताप की मात्रा का उचित होना बहुत ज़रूरी है। व्यंग्य का लक्ष्यगत ताप पाठक को व्यंग्य की भावना से जोड़ती है जिसके पश्चात व्यंग्यकार संतुलित आक्रोश सँजोते हुए आकांक्षित प्रतिफल हेतु प्रयत्नशील रहता है। अभिप्राय की सिद्धि या लक्षित प्रतिफल की प्राप्ति के साथ ही अध्याय का अंत हो जाता है।

अतिशयता व्यंग्य का एक अन्य प्रमुख तत्व है। अतिशयता व्यंग्य को निखारने का कार्य करती है। नग्न/चुभने वाली सच्चाई को सुनकर पाठक के मन में खटास या उस सच्चाई से मुँह मोड़ने की प्रवृत्ति जगती है जबकि उसी बात को अतिशयता के साथ कहने का परिणाम यह होता है कि पाठक उसे ध्यान से और बड़े चाव से सुनता है। पाठक के बाह्य मन में तो हास्य रस उमड़ रहा होता है किंतु आंतरिक चेतना व्यंग्यकार की बातों की चुभन से आहत होती रहती है। हृदय के बाह्य पटल पर हास्य रस की अनुभूति के कारण ही पाठक खुद को व्यंग्य रचना से अलग नहीं कर पाता। वह उस सम्पूर्ण रचना से प्राप्त होने वाले रस का आनंद उठाना चाहता है। आनंद की इसी अनुभूति में डूबे हुए पाठक को पता भी

नहीं चलता और वह उस सच्चाई/कड़वी बातें/ व्यंग्यकार द्वारा लक्षित बातों से खुद को घिरा हुआ पाता है जिनसे वह शायद शांत रस में डूबकर कभी नहीं मिलता। इस तरह से व्यंग्यकार अतिशयता को एक साधन की तरह उपयोग करते हुए लक्षित साध्य की प्राप्ति करता है। अतिशयता भावनाओं के मूल में बिना हल्कापन लाए शब्दों को हल्का करने का एक माध्यम होती है जिससे पाठक को व्यंग्यकार द्वारा लक्षित बातों को पचाने में आसानी होती है। किंतु सिर्फ़ अतिशयता को व्यंग्य का मूल तत्व नहीं माना जा सकता क्योंकि सिर्फ़ अतिशयता "निरे हँसोड़ की अभिव्यक्ति के सिवा कुछ नहीं हो सकता।"[23] अतिशयता व्यंग्य के विषय के अनुसार व्यंग्यकार की बौद्धिक कल्पना का परिणाम होती है। अर्थात् व्यंग्यकार अपनी बौद्धिक क्षमता को अपनी कल्पना शक्ति से मिलाते हुए अतिशयता करता है, जिसकी वजह से अतिशयता व्यंग्यकार की बुद्धि और कल्पना से सीमित होते हुए विषय की मर्यादा में बँधी रहती है। इस मर्यादा के परिणाम स्वरूप ही व्यंग्य एवं व्यंग्यकार की कोटि का निर्धारण किया जाता है। एक उच्च कोटि का व्यंग्यकार एक उच्च कोटि के व्यंग्य में विषय की आवश्यकता को बुद्धि एवं कल्पना की सीमा से समायोजित करते हुए अतिशयता प्रदर्शित करता है। अगर इसी सीमा के निर्धारण में व्यंग्यकार चूकता है तो व्यंग्यकार अपने लक्षित उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। लक्षित उद्देश्य को प्राप्त करने में ताप की महत्वपूर्ण भूमिका होती है और ताप का सम्बंध सीधे तौर पर अतिशयता से होता है। अतिशयता को ताप के माध्यम के रूप में उपयोग किया जाता है जिससे पाठक के मन में ताप का संचार किया जा सके। जैसा कि ऊपर

[23] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली: विचार और व्यंग; वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली; २००२; पृष्ठ ७६

कहा जा चुका है ताप की उचित मात्रा होना बहुत ज़रूरी है ऐसे में अतिशयता जो कि सीधे ताप की मात्रा का निर्धारण करती है उसकी मात्रा का भी उचित होना व्यंग्य के लिए आवश्यक हो जाता है।

व्यंग्य का एक अन्य तत्व है अपकर्ष। अपकर्ष को परिभाषित करते हुए डॉ० मेंहदीरत्ता ने कहा है कि "किसी प्रतिष्ठित व्यापार के साथ निंदित अप्रतिष्ठित व्यापार को वैदग्धपूर्ण ढंग से एक-साथ रखना तथा उसमें साम्य स्थापित कर निर्णय देने की प्रवृत्ति अपकर्ष के अंतर्गत आती है।"[24] अर्थात् जब व्यंग्य में दो विरोधी विचारधाराओं एवं भावनाओं में सामंजस्य को बनाते हुए व्यंग्य की रचना की जाए तो यह अपकर्ष के अंतर्गत आती है। एक व्यंग्यकार व्यंग्य में अतिशयता एवं ताप की मात्रा को नियंत्रित करने के लिए अपकर्ष का प्रयोग करता है ताकि व्यंग्य के लक्षित उद्देश्य को प्राप्त किया जा सके एवं पाठक के मन में उसी भावना का संचार हो जो व्यंग्यकार का उद्देश्य था। अपकर्ष के उपयोग में भी व्यंग्यकार का कुशल होना आवश्यक है। अगर व्यंग्यकार अपकर्ष का उपयोग करने में कुशल नहीं तो पाठक दोनों भावनाओं या विचारों के बीच झूलता हुआ महसूस करेगा। ऐसे में पाठक व्यंग्य के मर्म को समझने में पूरी तरह असमर्थ हो जाएगा। वहीं अगर व्यंग्यकार नें अपकर्ष के उपयोग में दक्षता दिखायी है तो पाठक के मन में निश्चितता के साथ वह लक्षित उद्देश्य का संचार करने में समर्थ रहेगा। इसलिए व्यंग्य में अपकर्ष अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है जिससे एक कुशल व्यंग्यकार को हमेशा सूझ-बूझ और समझदारी के साथ निपटना होता है। जॉन एम बुलेट महोदय ने कहा है कि "अपकर्ष व्यंग्य का

---

[24] विरेंद्र मेहंदीरत्ता; हिंदी गद्य साहित्य में व्यंग्य; रिसर्च पब्लिकेशन्स ; दिल्ली; १९७६

महत्वपूर्ण तत्व है। जब निपुणता एवं योजनाबद्ध कलात्मक क्रियाशीलता द्वारा अपकर्ष प्रभाव उत्पन्न करता है, जब तीक्ष्ण वैदग्ध्य का प्रयोग आवेश की नग्न तीव्रता को व्यक्त करने के लिए किया जाता है, तब व्यंग्य की पहुँच अपने 'न्यू क्लासिक' लक्ष्यों तक होती है।" यहाँ पर बुलेट महोदय ने 'न्यू क्लासिक' शब्द का प्रयोग लक्षित उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति के लिए किया है। अर्थात् जब अपकर्ष को योजनाबद्ध कलात्मकता के साथ संयोजित करते हुए वैदग्ध्य का प्रयोग आवेश की तीव्रता को प्रदर्शित करने के लिए किया जाए तो एक व्यंग्यकार अपने लक्षित उद्देश्य की पूर्ण प्राप्ति में सफल होता है। कुछ विचारक अपकर्ष को व्यंग्य का एक भेद मानते हैं तो कुछ अपकर्ष को व्यंग्य का एक तत्व मानते हैं। अपकर्ष को व्यंग्य का एक भेद मानने में कठिनाई यह है कि अपकर्ष पूर्ण रूप से एक स्वतंत्र चर नहीं हो सकता (व्यंग्य के संदर्भ में)। अपकर्ष व्यंग्य में एक सहायक चर या फिर साधन (टूल) के रूप में प्रयुक्त होता है। इसलिए अपकर्ष को व्यंग्य का एक भेद न मानकर इसे व्यंग्य का एक तत्व मानना अधिक उचित प्रतीत होता है। इसी संदर्भ में सुरेश कांत जी नें कहा है "अपकर्ष व्यंग्य का भेद नहीं हो सकता, क्योंकि यह पूरी तरह स्पष्ट हो जाता है कि अपकर्ष व्यंग्य में प्रवाहित भले ही रह सकता है, किंतु वह स्वयं अनिवार्य रूप से व्यंग्यात्मक नहीं है, वह तो व्यंग्यकार के लिए एक सम्भव मार्ग का प्रवेश-द्वार ही प्रस्तुत करने की स्थिति से सम्पन्न कहा जा सकता है।"[25]

साहित्य में सौंदर्यानुभूति का एक महत्त्वपूर्ण स्थान होता है। साहित्यकार सौंदर्यानुभूति के रोमांच से रोमांचित होते हुए साहित्य की रचना करता है। ऐसे

[25] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली: विचार और व्यंग; वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली; २००२; पृष्ठ ७७

में साहित्य की व्यंग्य विधा भी इस सौंदर्यानुभूति से अछूती नहीं रह सकती। क्योंकि एक व्यंग्यकार को अन्य साहित्यिक रचनाकारों की भाँति ही सृजनात्मक आनंद की अनुभूति होती है। इस सृजनात्मक आनंद की अनुभूति व्यंग्यकार की रचनाओं में भी परिलक्षित होती रहती है। यदि व्यंग्यकार को व्यंग्य रचना में सृजनात्मक आनंद की अनुभूति अधिक होती है तो उसके व्यंग्य रचनाओं में योजना, कल्पना, लक्षित ताप, आवेश और अपकर्ष की उचित मात्रा देखने को मिलती है। इसका परिणाम यह होता है कि पाठक को व्यंग्य रचना से लक्षित रस की प्राप्ति होती है और व्यंग्यकार का उद्देश्य भी पूर्ण होता है। सौंदर्यानुभूति में पारंगत व्यंग्यकार चाहे घोर त्रासदी का विवरण प्रस्तुत कर रहा हो या फिर दारुण, भयंकर और जघन्य परिस्थितियों का चित्रण प्रस्तुत कर रहा हो वह सभी परिस्थितियों को पाठक के समक्ष ऐसे प्रस्तुत करता है कि पाठक पूरे समर्पण के साथ व्यंग्य से जुड़ा रहे। पाठक ऐसे विवरण के समय सामान्य तौर पर वितृष्णा से मुँह मोड़ लेते हैं, किंतु यहीं पर एक व्यंग्यकार की परीक्षा होती है। व्यंग्यकार विवरणों को इस तरह से प्रस्तुत करे कि पाठक ऐसे विवरण के बावजूद प्रस्तुत व्यंग्य से मुँह ना मोड़ पाए। साहित्य की अन्य विधाओं में पाठक को सामान्यतः सीमित प्रकार के रस की अनुभूति होती है, किंतु व्यंग्य में किसी प्रस्तुत पाठ से पाठक को कई तरह के रस की अनुभूति होती है। ऐसे में व्यंग्यकार को व्यंग्य की प्रस्तुति योजनाबद्ध तरीक़े से इस तरह से करनी होती है कि पाठक के होठों पर मुस्कान के साथ उसके हृदय में एक चुभन या पीड़ा महसूस हो और साथ ही वह प्रस्तुत विषय के बारे में गम्भीरता पूर्वक सोचनें को विवश हो जाए और व्यंग्यकार की प्रस्तुति से चमत्कृत हो व्यंग्य को सराहने लगे। एक व्यंग्यकार की रचना का विषय ऐसा होता है जिससे सामान्य तौर पर न सिर्फ़ रचनाकार वरन्

पाठक भी बचता है। एक व्यंग्यकार को ऐसे विषयों में भी सौंदर्य दिखायी देता है। व्यंग्यकार वीभत्सता को भी व्यंग्यात्मक ढंग से प्रस्तुत करने में कुशल होता है। एक व्यंग्यकार को वीभत्स रचनाओं को भी इस तरह से प्रस्तुत करना होता है कि पाठक मंत्रमुग्ध हो उस वीभत्सता का भी रसपान करने लगे। साहित्य में सहानुभूति का एक महत्वपूर्ण स्थान होता है। साहित्यकार सहानुभूति का प्रयोग पाठक को अपनी रचना से जोड़ने के लिए करता है, किंतु व्यंग्य में सहानुभूति का स्थान गौड़ होता है। सहानुभूति के प्रयोग से बुद्धि प्रयोग की महत्ता में कमी हो जाती है साथ ही साथ पाठक भी प्रस्तुत पाठ का रसपान बौद्धिक स्तर पर नहीं कर पाता। व्यंग्य की सफलता के लिए रचनाकार एवं पाठक दोनों को अपने बौद्धिक स्तर का प्रयोग करना होता है, इसलिए व्यंग्य में सहानुभूति का प्रायः अभाव होता है। इस अभाव की वजह से ही पाठक अपने बौद्धिक स्तर का प्रयोग करते हुए व्यंग्य से प्राप्त होने वाले विभिन्न रसों का रसपान करता है।

व्यंग्य को एक विधा माना जाए या फिर एक शैली, विद्वानों में यह प्रश्न भी एक विमर्श का विषय रहा है। अनेक समीक्षकों और कुछ व्यंग्यकारों का मत है कि व्यंग्य को महज़ एक शैली के रूप में स्वीकार किया जाए। इस विमर्श पर विस्तृत विवेचना से पूर्व यह आवश्यक है कि एक नज़र हम कुछ समीक्षकों एवं व्यंग्यकारों के मतों पर डालें। प्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी का मत है कि “व्यंग्य का कोई ‘स्ट्रक्चर' नहीं है। वह निबंध, कहानी, नाटक सब विधाओं में लिखा जाता है। व्यंग्य इस कारण ‘स्पिरिट’ है। व्यंग्य-लेखक को इस कारण शिकायत नहीं होनी चाहिए कि विश्वविद्यालय व्यंग्य को विधा क्यों नहीं मानते। उन्हें संतोष करना चाहिए कि व्यंग्य का दायरा इतना विस्तृत है कि वह सब

विधाओं को ओढ़ लेता है।"[26] अर्थात हरिशंकर परसाई जी का मत है कि व्यंग्य एक छाते के समान है जिसके नीचे लगभग सभी विधाएँ आ जाती हैं। साथ ही किसी निश्चित रूपरेखा के अभाव में इसे एक विधा नहीं माना जा सकता। इन दोनों बातों के आलोक में परसाई जी ने इसे एक 'स्पिरिट' अर्थात् शैली का दर्जा दिया है। व्यंग्य साहित्य एक ऐसा व्यापक लक्षण है जो किसी विधा का अनुकरण नहीं करता अपितु अपने अंदर सभी को समाहित कर सकता है। यह एक विधा को अपना आधार मानकर प्रारम्भ होती है किंतु उस विधा की सीमा से पूर्ण रूप से बंधी नहीं होती। जैसे ही वह विधा व्यंग्य के लक्ष्य में बाधा पहुँचाने लगती है वैसे ही व्यंग्य उस मुखौटे को उतार फेंकता है। पुनः आगे बढ़ते हुए एक नयी विधा को ग्रहण कर लेता है। इसी माता का समर्थन करते हुए डॉ० श्यामसुंदर घोष ने कहा है कि व्यंग्य लेखन में "वस्तु-तत्व ही विधा-शिल्प के शीर्ष पर स्वर्ण-शिखर की तरह चमकता नज़र आता है।...इसीलिए व्यंग्य को किसी विधा के अधीन न मानकर विधाओं को व्यंग्य के अधीन मानने की बात कुछ लोग करते हैं। इसके पीछे कुछ औचित्य भी है।"[27]

डॉ० कमल किशोर गोयनका को दिए गए एक साक्षात्कार में प्रसिद्ध व्यंग्यकार रवींद्रनाथ त्यागी जी भी उक्त मत का समर्थन करते हुए कहते हैं कि "मैं व्यंग्य को स्वतंत्र विधा नहीं मानता, हाँलाकि मैनें कई जगह इसे स्वतंत्र विधा मान लेने पर ज़ोर दिया है। अब मैं सोचता हूँ, विधा तीन ही हैं- गद्य, पद्य और नाटक। वास्तव में हास्य-व्यंग्य एक रस है, जो किसी भी विधा में आ सकता

---

[26] हरिशंकर परसाई; मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ; ज्ञान भारती प्रकाशन; दिल्ली; १९७७; पृष्ठ १५

[27] श्यामसुंदर घोष; व्यंग्य क्या, व्यंग्य क्यों; सत्साहित्य प्रकाशन; दिल्ली; १९८३; पृष्ठ ११६

है।"[28] के० पी० सक्सेना नें व्यंग्य को व्यापक महत्व का विषय बताया है और इसे एक माध्यम स्वीकार किया है। माध्यम स्वयं एक विधा नहीं हो सकता अर्थात् उन्होनें भी इसे महज़ एक शैली के रूप में स्वीकार किया है। अगर के० पी० सक्सेना के अनुसार व्यंग्य को एक विधा का दर्जा देना हो तो उसके पूर्व विधा की परिभाषा को विस्तृत करना पड़ेगा ताकि वह अपने अधीन आने वाले सभी विषयों को समाहित कर सके। डॉ० विनोद गोदरे भी व्यंग्य को एक माध्यम की तरह स्वीकार करते हुए उसको विशेषण, विधि और उपकरण की संज्ञा देते हैं। उनका मत है कि "व्यंग्य का कोई रूपाकार नहीं होता है। उसके तयशुदा लक्षण भी नहीं हैं। उसकी विशेषताओं को खोजा जा रहा है।... पाश्चात्य काव्यशास्त्र भी इसे शिल्प-विधि का एक उपकरण ही मानता है।"[29] इस प्रकार व्यंग्य को महज़ एक शैली मानने वाले विद्वानों में कई नामी साहित्यकारों का नाम जुड़ा हुआ है। किंतु इसका अर्थ यह नहीं कि व्यंग्य को एक विधा की मान्यता प्रदान करने वाले लोगों की कमी है। इस सूची में भी कई लोगों के नाम शामिल हैं और उनके अपने-अपने मत हैं जिसके आधार पर वो व्यंग्य को एक विधा के रूप में मान्यता प्रदान करते हैं। इसी संदर्भ में डॉ० बलेंदुशेखर तिवारी जी का मत है कि "जब किसी विशेष शिल्प एवं प्रविधि की रचनाएँ पर्याप्त संख्या में लिखी जाने लगती हैं एवं उस पर किसी विशिष्ट लेखक के स्थान पर परंपरा का आधिपत्य हो जाता है, तब उक्त शिल्प-प्रविधि को विधा के रूप में स्वीकार किया

---

[28] कमलकिशोर गोयनका (सं०); रवींद्रनाथ त्यागी: प्रतिनिधि रचनाएँ; पराग प्रकाशन; दिल्ली; १९८७; पृष्ठ ३२८

[29] रामस्वरूप चतुर्वेदी; समकालीन हिंदी साहित्य: विविध परिदृश्य; राधाकृष्ण प्रकाशन; दिल्ली; २००८; पृष्ठ ८३

जाता है।"[30] अर्थात् जब किसी विशेष शिल्प योजना एवं प्रविधि के आधार पर अनेक रचनाएँ होने लगें, साथ ही अनेक रचनाकारों द्वारा उसी रचना-परंपरा को मानते हुए रचनाएँ की जाए तो उस विशेष परम्परा को धीरे-धीरे एक विधा के रूप में स्वीकार कर लिया जाता है। चर्चित व्यंग्यकार नरेंद्र कोहली भी व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्वीकार करते हैं। इसी संदर्भ में उन्होंने डॉ० प्रेम जनमेजय और डॉ० राजेश कुमार को साक्षात्कार देते हुए कहा था कि "जिस तत्व के कारण व्यंग्य विधा बनता है, वो है आक्रोश, जिसे नागार्जुन ने क्षोभ कहा है। न्यायसंगत आक्रोश को जब कलात्मक रूप में अभिव्यक्त किया जाता है, तो वह व्यंग्य बनता है। (किंतु) हमारा आलोचक संस्कृत में व्यंग्य के ध्वनि एवं आलंकारिक रूप से आगे जाने को तैयार ही नहीं है।" यहाँ पर नरेंद्र कोहली जी ने आलोचकों द्वारा व्यंग्य को विधा के रूप में मान्यता न देने का विरोध किया है। उनका मत है कि आक्रोश को व्यक्त करने के लिए एक लेखक अनेक विधाओं का सहारा लेता है। किंतु जब वही आक्रोश न्यायसंगत रूप में लेखक की बौद्धिक कलात्मकता से मिलते हुए, छुपे हुए लक्ष्य, लक्षित आवेश एवं मधुर अभिव्यंजना की चादर ओढ़े पाठक के सामने प्रस्तुत किया जाता है तो वो व्यंग्य बन जाता है। प्रसिद्ध व्यंग्यकार लक्ष्मीकांत वैष्णव जी भी व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्वीकार करते हैं। वैष्णव जी कहते हैं "व्यंग्यकार का साध्य होता है प्रहार, जो वह इस विधा के माध्यम से करता है। इसलिए व्यंग्यकार द्वारा लिखी गयी कहानी को लोग कहानी न कहकर 'व्यंग्य' कहते हैं, उपन्यास को उपन्यास न कहकर 'व्यंग्य' कहते हैं, नाटक को नाटक न कहकर 'व्यंग्य' कहते हैं।" अर्थात्

[30] बालेंदु शेखर तिवारी; हिंदी का स्वातंत्र्योत्तर हास्य और व्यंग्य; अन्नपूर्णा प्रकाशन; कानपुर; १९७८; पृष्ट १९७

किसी भी विधा में की गयी व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति सिर्फ़ व्यंग्य है ना कि उसे उस प्रस्तुत विधा के रूप में स्वीकार किया जाता है। व्यंग्य का रूप लेने पर जब वह विधा मूल रूप में उस विधा के रूप में स्वीकार नहीं की जाती है तो फिर ऐसे में आवश्यकता है कि उसे व्यंग्य नामक एक अलग विधा के रूप में स्वीकार किया जाए। व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्वीकार कर लेने पर यह समस्या अपने आप दूर हो जाती है। प्रसिद्ध समीक्षक कमलकिशोर गोयनका ने अपनी सम्पादित पुस्तक "रवीन्द्रनाथ त्यागी: प्रतिनिधि रचनाएँ' की भूमिका में लिखा है -

"हिंदी में कुछ व्यंग्यकारों तथा आलोचकों नें व्यंग्य को एक स्वतंत्र विधा मानने या मनवाने का एक आंदोलन ही चला रखा है। जिसके लिए लघु पत्र-पत्रिकाओं में परिचर्चा, लेख तथा वक्तव्य छापे जा रहे हैं तथा गोष्ठियाँ आयोजित करके विधा होने न होने का विषय तय किया जा रहा है। ऐसी ही गोष्ठी दिल्ली के कॉलेज ऑफ़ वोकेशनल स्टडीज़ में २२ फ़रवरी १९७६ को हुई थी, जिसमें डॉ० विजयेंद्र स्नातक, डॉ० सत्यपाल चुघ, अजित कुमार, भारत भूषण अग्रवाल, रमेश उपाध्याय, प्रेम जनमेजय, हरीश नवल आदि नें भाग लिया था। डॉ० स्नातक व्यंग्य को शैली मात्र मानने के विरुद्ध थे। उनका विचार था कि कोई बड़ा श्रेष्ठ व्यंग्यकार व्यंग्य को विधा बना सकता है। डॉ० चुघ नें माना कि व्यंग्य स्वतंत्र विधा नहीं बन सका है, लेकिन वे इससे भी सहमत नहीं थे कि स्वतंत्र विधा बन जाने पर इसका महत्व बढ़ जाएगा। अजित कुमार का विचार था कि हास्य, व्यंग्य, विनोद, परिहास, कटाक्ष, वक्रोक्ति, पैरोडी, कार्टून आदि विधाओं का परस्पर मिश्रण होता रहता है, विधाएँ एक-दूसरे में घुसपैठ करती रहती

हैं। व्यंग्य हास्य का एक शेड है। उच्च कोटि का व्यंग्य हास्य के निकट पहुँचकर ही रसात्मक या आस्वाद्य बन सकता है। हरिशंकर परसाई नें डॉ० हरीश नवल को एक परिचर्चा में कहा था कि व्यंग्य विधा नहीं स्पिरिट है। व्यंग्य किसी भी मान्य विधा में आ सकता है - नाटक, कहानी, उपन्यास, निबंध आदि में। व्यंग्य का अपना कोई स्ट्रक्चर नहीं है, जैसा कहानी, उपन्यास आदि का स्ट्रक्चर है। डॉ० शेरजंग गर्ग भी यही मानते हैं कि व्यंग्य उपन्यास आदि के अर्थ में 'स्वतंत्र साहित्यिक विधा' नहीं है, लेकिन 'व्यंग्यकार' के अप्रैल-जून १९८५ के अंक में किन्ही सुरेश उपाध्याय ने व्यंग्य को विधा मानने के लिए और मनवाने के लिए जो तर्क दिए हैं, उन्हें देखकर उनकी नासमझी पर अफ़सोस किया जा सकता है। व्यंग्य के पक्ष में मूर्खतापूर्वक तर्क देने, प्रस्ताव पास करने तथा आंदोलन चलाने से वह विधा नहीं बन सकता। आवश्यकता इस बात की है कि व्यंग्य के प्रति आलोचकों का दृष्टिकोण बदले और आंदोलन के स्थान पर शक्तिवान एवं सार्थक व्यंग्य-रचनाएँ लिखी जाएँ। उसके अभाव में 'व्यंग्य विधा है', 'व्यंग्य विधा है' का नारा लगाने तथा सतही और भोंडे व्यंग्य लिखने से कुछ होने वाला नहीं है।"[31]

ऊपर दिए गए सभी विद्वानों के मतों पर गौर करें तो व्यंग्य को शैली मानने के लिए जो तर्क दिए गए हैं उनमें से दो बात निकल कर आती है। पहली यह कि व्यंग्य का कोई एक निश्चित स्ट्रक्चर नहीं है। स्ट्रक्चर के अभाव में व्यंग्य

---

[31] कमलकिशोर गोयनका (सं०); रवींद्रनाथ त्यागी: प्रतिनिधि रचनाएँ; पराग प्रकाशन; दिल्ली; १९८७; पृष्ट ८

को किसी परिपाटी में बाँधना मुश्किल हो जाता है जिसकी वजह से व्यंग्य को महज़ एक शैली के रूप में स्वीकार किया गया है। दूसरी बात जो सामने आती है वह यह है कि व्यंग्य किसी भी विधा में परिलक्षित हो सकता है। चूँकि इस प्रक्रिया में वह स्वयं किसी विधा की सीमा द्वारा नियंत्रित नहीं होता इस वजह से व्यंग्य को शैली ही मानना उचित प्रतीत होता है। अगर हम ध्यान से दोनो तथ्यों का विवेचन करें तो दोनो तथ्य ग़लत साबित हो जाते हैं। जैसा कि हमने इस अध्याय के शुरू में विस्तृत रूप से विश्लेषण किया है कि व्यंग्य का अपना स्वयं का एक स्ट्रक्चर है, ऐसे में यह मत स्वीकार करना कि 'व्यंग्य का कोई निश्चित स्ट्रक्चर नहीं है' उचित नहीं प्रतीत होता है। चूँकि व्यंग्य का उपयोग लम्बे समय तक एक शैली के रूप में ही किया गया जिससे की व्यंग्य के निश्चित स्ट्रक्चर का विकास लम्बे समय तक नहीं हो पाया। किंतु इसका यह अर्थ कदापि नहीं लगाना चाहिए कि इसका स्ट्रक्चर नहीं है। अगर दूसरे तर्क की बात करें तो वह भी अधिक प्रभावशाली प्रतीत नहीं होता है। सभी विधाओं में लिखे जाने का अर्थ यह नहीं होता कि व्यंग्य स्वयं एक विधा नहीं हो सकती है। डॉ० प्रेम जनमेजय और डॉ० राजेश कुमार को दिए गए अपने साक्षात्कार में डॉ० नरेंद्र कोहली ने भी इसी मत का समर्थन करते हुए एवं उन लोगों को जो व्यंग्य को एक विधा के रूप में स्वीकार नहीं करते उनको केंद्र में रखते हुए कहा है-

> "व्यंग्येतर साहित्य के जो आलोचक हैं, वो व्यंग्य के साथ न्याय नहीं करते। उसका कारण यह है कि उनका तादात्म्य व्यंग्य के साथ नहीं होता। वो लोग व्यंग्य को पढ़ते कम हैं। व्यंग्य के आलोचक अभी बन रहे हैं। वे व्यंग्य की आलोचना के प्रतिमान बनाने में लगे हैं। मेरे सामने सबसे बढ़ियाँ

उदाहरण 'राग-दरबारी' का है जिसे सभी एक उपलब्धि मानते हैं। लेकिन हमारे जो परम्परागत आलोचक हैं, उन्हें समझ ही नहीं आता कि इसमें ऐसा क्या है। वे उसे उपन्यास के परम्परागत सिद्धांतों पर कसने का प्रयत्न करते हैं और अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उपन्यास की दृष्टि से यह बहुत घटिया है।"[32]

डॉ० नरेंद्र कोहली जी ने परम्परागत आलोचकों को निशाना बनाते हुए यह इच्छा ज़ाहिर की है कि व्यंग्य की आलोचना के लिए साहित्य में नए प्रतिमान स्थापित होने चाहिए जिनके आधार पर व्यंग्य की आलोचना की जा सके। पुराने आलोचना के प्रतिमानों के आधार पर व्यंग्य की आलोचना नहीं की जा सकती और अगर ऐसा करने का प्रयास किया जाता है तो यह महज़ एक-पक्षीय निर्णय होगा। इस तरह की आलोचना से हिंदी साहित्य में कट्टरता ही प्रदर्शित होगी जो इस बात का सूचक होगा कि हिंदी साहित्य बदलते समय, परिस्थितियों और परिवेश के आधार पर उदीयमान नयी परम्पराओं को अपने में समाहित करने में समर्थ नहीं है। सुरेश कांत नें व्यंग्य के ऊपर विचार लिखते हुए कहा है कि "व्यंग्य न केवल एक स्वतंत्र, बल्कि सशक्त विधा है; उसकी अपनी संरचना है, अपना शिल्प है और उसका अन्य विधाओं में भी लिखा जाना भी उसके विधा होने में बाधक नहीं है। जब वह अपनी अभिव्यक्ति के लिए अन्य विधाएँ भी अपनाता है, तो उन विधाओं को वह वही विधाएँ नहीं रहने देता।"[33]

---

[32] डॉ० सुभाष नाहर (सं०); बात तो चुभेगी; आजकल; नवम्बर-दिसम्बर; १९८१; दिल्ली

[33] सुरेश कांत; नरेंद्र कोहली: विचार और व्यंग; वाणी प्रकाशन; नई दिल्ली; २००२; पृष्ठ ८३

समकालीन समीक्षकों ने व्यंग्य की समीक्षा करते हुए उपर्युक्त दोनों मतों में से किसी भी मत को पूर्ण समर्थन देने से इनकार कर दिया। इसका कारण यह है कि एक निश्चित सीमा तक दोनो मतों में सच्चाई है और एक निश्चित परिधि के बाद दोनो में कुछ ख़ामियाँ भी हैं। कुछ व्यंग्य रचनाएँ ऐसी है जिनमें से अगर हास्य को निकाल दिया जाए तो वो किसी भी विधा की श्रेणी में नहीं आएँगी वहीं कुछ रचनाएँ ऐसी भी है जिनमें से व्यंग्य के तत्व को निकालने के बाद वो साहित्य की किसी ना किसी विधा में जगह बनाने में सफल हो जाती है। इस समस्या को दूर करने के लिए अपेक्षाकृत नए समीक्षकों नें एक मध्यम-मार्ग अपनाया है। इस तरह के समीक्षक व्यंग्य को एक शैली और एक विधा दोनो के रूप में स्वीकार करते हैं। वे कुछ रचनाओं में व्यंग्य को महज़ एक शैली के रूप में स्वीकार करते हैं वहीं कुछ रचनाओं को व्यंग्य विधा के अंतर्गत स्थान देते हैं। इसी संदर्भ में सुरेश कांत का मत है कि अगर "रचना में व्यंग्य सर्वोपरि हो, रचना का प्राण हो, तो व्यंग्य विधा होता है और जब वह रचना में बीज-रूप में होता है या जुगनू की तरह जहाँ-तहाँ प्रकाश करता है, तब वह 'स्पिरिट 'या 'शैली ' होता है।" इस तरह से व्यंग्य एक ऐसे उपकरण के रूप में सामने आया है जो कि अन्य विधाओं के रूप और शैली में निखार लाते हुए उससे पाठक के लिए रुचिपूर्ण बनाता है तथा साथ ही साथ व्यंग्य स्वयं एक विधा के रूप में भी साहित्य में स्थान बनाने में सफल हुआ है।

व्यंग्यकार पाठक को आश्चर्यान्वित एवं संत्रस्त करने के लिए मुहावरेदार उक्तियों, चुनिंदा शब्दों, जुगुप्सापूर्ण कल्पनाओं और वर्जित अभिव्यक्तियों का प्रयोग करता है। इन सब प्रयोगों से पाठक व्यंग्य से चिपका रहता है और व्यंग्य

की भाषा में जीवंतता देखने को मिलती है। एक व्यंग्यकार भाषिक इकाइयों से खिलवाड़ करते हुए उसे अपने लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए तोड़-मरोड़कर पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। व्यंग्यकार भाषा से जूझता भाषा को एक विशेष प्रकार की अर्थशक्ति से परिपूर्ण करता है जिससे उसकी भाषा पाठक के मन को भेदती हुई पाठक के हृदय-पटल को झकझोर उठती है। भाषा के साथ किए गए इसी प्रयोग के आधार पर सुरेशकांत ने व्यंग्य को 'भाषा की लपट' कहा है। प्रसिद्ध आलोचक नामवर सिंह ने इस प्रवृत्ति को साहित्य के अंदर का 'परमाणु-युग' कहा है और इस प्रभाव को 'भाषा का विस्फोटक प्रभाव' कहा है। सामान्यतया जिन शब्दों को साथ में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता, इस प्रवृत्ति के तहत उन शब्दों को भी साथ में प्रयुक्त किया जाता है। व्यंग्यकार इसी प्रवृत्ति के तहत अपने लक्षित उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए बेमतलब, असाधारण एवं अनमेल शब्दों का प्रयोग करता है। व्यंग्यकार द्वारा निर्मित जादुई माहौल इसी प्रवृत्ति की देन है जिससे वह पाठक को अचंभित, सम्मोहित और चमत्कृत कर देता है।

कुछ व्यंग्यकार ऐसे हैं जो मानव-जाति के अंदर सद्गुण देखते हैं, उन्हें स्वभाव से सीधा, सच्चा और समाज के लिए हितकर मानते है। वही कुछ व्यंग्यकार ऐसे भी हैं जो मानव-जाति के अंदर महज़ घृणा, दुर्गुण और पाप देखते हैं। प्रथम प्रकार के व्यंग्यकारों को आशावादी व्यंग्यकार एवं दूसरे प्रकार के व्यंग्यकार को निराशावादी व्यंग्यकार कहा जाता है। व्यंग्यकार के दृष्टिकोण का उसके रचनाओं पर स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। व्यंग्यकार यदि आशावादी दृष्टिकोण अपनाता है तो वह समाज में व्याप्त बुराइयों के संदर्भ में सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। वह व्याप्त बुराइयों को परिस्थितिजन्य मानते हुए उसमें

परिवर्तन की बात करता है। वहीं निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाला व्यंग्यकार मूल रूप से ध्वंसात्मक बातें करता है। वह समाज में व्याप्त सभी समस्याओं के लिए क्रांतिकारी रुख़ अपनाता है। निराशावादी व्यंग्यकार सुधारात्मक दृष्टिकोण में यक़ीन नहीं रखता है अपितु वह इस संदर्भ में आमूल परिवर्तनवादी हो जाता है।

कुछ विद्वान आशावादी दृष्टिकोण में लिखे गए व्यंग्य को बेहतर मानते हुए तर्क देते हैं कि ऐसे व्यंग्य समाज में समरसता स्थापित करते हुए उसमें सुधार लाते हैं। वहीं कुछ विद्वान निराशावादी दृष्टिकोण का समर्थन करते हैं। निराशावादी दृष्टिकोण का समर्थन करने वाले विचारकों का मत है कि जब सामाजिक व्यवस्था में कुरीतियाँ घर कर लेती हैं तो उन्हें आसानी से सुधार नहीं जा सकता। वे कुरीतियाँ उस घास की तरह होती हैं जिन्हें कितना भी उखाड़ दो किंतु पुनः जल मिलने पर उग आती है। ऐसे में आवश्यकता होती है आमूल परिवर्तन की। किंतु दोनो दृष्टिकोणों की सामाजिक उपयोगिता के आधार पर समीक्षा करने पर हम यह पाते हैं कि कुछ हद तक दोनो दृष्टिकोणों की आवश्यकता पड़ती है। ऐसी सामाजिक समस्याएँ जो समाज के लिए नासूर बन गयी है और जिनमें सुधार की कोई गुंजाइश नहीं बची होती, ऐसी समस्याओं के लिए आमूल परिवर्तन या फिर विध्वंसात्मक रवैए की आवश्यकता होती है। वहीं समाज में ऐसी समस्याएँ भी होती है जिनमें आमूल परिवर्तन से अन्य सामाजिक सम्बन्धों पर भी नकारात्मक प्रभाव देखने को मिलता है तथा उनमें सिर्फ़ सुधार कर के भी काम चलाया जा सकता है। इस तरह की समस्याओं के लिए सुधारात्मक दृष्टिकोण ही सर्वाधिक उचित प्रतीत होता है। ऐसे में किसी एक

व्यंग्यात्मक दृष्टिकोण को सबसे उचित नहीं कहा जा सकता। समय और परिस्थितियों के अनुसार कुछ जगह सुधारात्मक दृष्टिकोण और कुछ जगह आमूल-परिवर्तनवादी दृष्टिकोण उचित होता है। अन्य शब्दों में कहें तो व्यंग्य के लिए दोनों दृष्टिकोणों का महत्वपूर्ण स्थान है। कुछ परिस्थितियों में आशावादी दृष्टिकोण बेहतर होता है तो कुछ परिस्थितियों में निराशावादी दृष्टिकोण की आवश्यकता होती है। अंतिम लक्ष्य दोनो का समाज कल्याण ही होता है और फ़र्क़ सिर्फ़ उनके लक्ष्य-प्राप्ति के मार्ग में होता है।

एक व्यंग्यकार सिर्फ़ व्यावहारिकता के स्तर पर ही नहीं वरन् वैचारिक स्तर पर भी सामाजिक कुरीतियों से जूझता है। कुछ कुरीतियाँ समाज में इस तरह से विद्यमान हो जाती हैं जैसे वह सामाजिक संरचना का ही एक भाग हों। ऐसी कुरीतियों के ख़िलाफ़ जाने, बोलने या लिखने का साहस सिर्फ़ एक व्यंग्यकार ही कर सकता है। व्यंग्यकार हँसने के लहजे में लोगों के हृदय-पटल पर उस कुरीति की ख़ामियों को ऐसे रख देता है मानो वह कोई बहुत ही मामूली बात कह रहा हो। वह सीधे तौर पर उन कुरीतियों के विरोध में नहीं आता, अपितु शब्दों के पीछे अपने विरोध को छिपाए रखता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यंग्यकार उन कुरीतियों को मानने वाले कट्टर समाज से स्वयं बचा रहता है और लोग उन कुरीतियों के बारे में सोचनें को विवश भी हो जाते हैं। उदाहरण के लिए 'डॉन क्विकजोट' नामक रचना से सरवेंटीज नें पूरे यूरोप से खुदाई फ़ौजदारों को ख़त्म कर दिया, शेक्सपियर की 'मर्चेंट ऑफ़ वेनिस' नें सूदख़ोरी को ख़त्म करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। एक समय था जब फ़्रांस में अरस्तू के विचारों का इस तरह बोल-बाला था कि उसके विचारों से मतभेद

रखने वालों को मौत के घाट उतर दिया जाता था। ऐसे वक्त में फ़्रांस के मोलियर नामक व्यंग्यकार ने 'पैकिमरफरिए' नामक रचना से बहुत से लोगों को फाँसी से बचा लिया था।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि व्यंग्य एक भाव साधन है। यह विधा के बजाय शैली के निकट अधिक प्रतीत होती है। जो समस्त मनुष्य के जीवन में व्याप्त होता है। यह न सिर्फ़ व्यावहारिक वरन् समाज के वैचारिक उत्थान में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। व्यंग्यकार की भूमिका पाठक के होठों पर सिर्फ़ मुस्कान लाना या फिर पाठक का ही वैचारिक उत्थान करना नहीं होता वरन् व्यंग्यकार पूरे समाज में ख़ुशी की लहर दौड़ाते हुए पूरे समाज के सामाजिक और वैचारिक उत्थान के लक्ष्य की प्राप्ति हेतु प्रयासरत रहता है।

अध्याय-२

हिंदी में व्यंग्य साहित्य की परम्परा

हिंदी साहित्य में 'व्यंग्य साहित्य' की विधा अन्य लगभग सभी विधाओं से नयी है। 'व्यंग्य विधा' एक ऐसी विधा है जो शैली के रूप में किसी अन्य विधा में भी उपलब्ध हो सकती है एवं एक स्वतंत्र विधा के रूप में भी। एक लम्बे समय तक आलोचकों एवं विद्वानों ने व्यंग्य को साहित्य की मुख्य धारा में शामिल नहीं किया। 'व्यंग्य विधा' को दोयम दर्जे का साहित्य समझा जाता रहा। यही वजह रही है कि 'व्यंग्य साहित्य' पर आलोचकों ने यथोचित दृष्टि नहीं डाली है। आलोचकों द्वारा आरम्भिक व्यंग्य लेखकों की रचनाओं को 'व्यंग्य विधा' की रचना न मानकर महज़ हास्य रस की रचनाएँ घोषित कर दी गयी थी।

हिंदी साहित्य में व्यंग्य की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। किंतु अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक साहित्यिक रचनाओं में व्यंग्य की छीटें ही देखने को मिलती रही हैं। अभी तक व्यंग्य किसी रचना के केंद्रीय स्वरूप के रूप में परिणत नहीं हुआ था। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से व्यंग्य की रचनाओं में गुणात्मक वृद्धि देखने को मिलती है। हाँलाकि व्यंग्य अभी शैशव अवस्था में था और अनेक विधाओं की सहायक विधा के रूप में ही दिख रहा था किंतु उसकी उपस्थिति में वृद्धि हो रही थी। हिंदी साहित्य में

व्यंग्य के विकास को आसानी से समझा जा सकता है। 'व्यंग्य विधा' के काल निर्धारण में पारम्परिक साहित्यिक आधारों का कोई मूल्य नहीं रह जाता। व्यंग्य विधा के काल निर्धारण के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक ताने-बाने के साथ-साथ व्यंग्यात्मक शैली को समझने एवं उस समझ के आधार पर निर्णय लेने की आवश्यकता होती है। हिंदी व्यंग्य साहित्य के विकास पर विस्तृत चर्चा करने से पूर्व हिंदी साहित्य के विकास से परिचय कराना आवश्यक है, जिससे व्यंग्य विधा के विकास को समझने में आसानी होगी।

व्यंग्य साहित्य में भारतेंदु युग का आरम्भ सन् १८७३ ई० से माना जा सकता है, वहीं हिंदी साहित्य में भारतेंदु युग बहुत पहले ही आरम्भ हो जाता है। साहित्य की दोनों विधाओं के काल में फर्क उन विधाओं की रचनाओं की उपलब्धता के आधार पर किया गया है। क्योंकि व्यंग्य के साहित्य को लिखने के लिए साहित्य के पूर्व मार्ग को नहीं अपनाया जा सकता है। हिंदी साहित्य में भारतेंदु काल का आरम्भ १८५७ ई० से मानने पर उस काल के अनेक रचनाकारों को भी स्थान मिल जाता है। वहीं व्यंग्य के सम्बंध में ऐसी आवश्यकता नहीं होती। 'वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति' के पूर्व किसी भी रचना को 'व्यंग्य' की परिधि में समाहित नहीं किया जा सकता है। इस रचना के पूर्व की रचनाएँ व्यंग्य की कसौटियों, जैसे व्यंग्य सम्मत भाषा, चुटीली शैली, उपयुक्त शीर्षक, सामाजिक सरोकार और प्रहारात्मकता आदि पर खरी नहीं उतरती हैं। ऐसे में व्यंग्य के भारतेंदु काल

का आरंभ इस रचना के पूर्व मानने की कोई बाध्यता या आवश्यकता नहीं होती है। इन्हीं आधारों पर 'वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति' को प्रथम व्यवस्थित व्यंग्य रचना होने का गौरव प्राप्त है। बालमुकुंद गुप्त जी की व्यंग्य रचनाएँ व्यंग्य शैली के हिसाब से पूर्ण रूप से भारतेंदु जी के समान हैं। उनकी रचनाएँ विषय, शैली, भाषा आदि की दृष्टि से भारतेंदु युगीन रचनाओं के निकट प्रतीत होती हैं जिसकी वजह से बालमुकुंद गुप्त को भारतेंदु काल में सम्मिलित किया गया है। आदिकाल की सीमा १९१० तक स्वीकार करने का राजनीतिक कारण यह है कि १९१० के बाद के समय में अंग्रेजों के ख़िलाफ़ मुहिम में तेज़ी देखने को मिलती है और अंग्रेज प्रशासन नें भी इस मुहिम को दबाने के लिए अनेक प्रयास किये गए। १९१० के बाद के इतिहास में गांधी जी ने पूरे देश के लोगों को अंग्रेजों की ज़्यादतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाने के लिए एक बंधन में पिरोने का कार्य किया। इस सामूहिक अभिव्यक्ति ने न सिर्फ़ राजनीतिक वरन्, सामाजिक और आर्थिक आधारों पर भी लोगों को जागृत करते हुए उन्हें एक सूत्र में पिरोने का कार्य किया। इन सभी परिवर्तनों की अभिव्यक्ति तात्कालिक व्यंग्यों में भी देखने को मिलती है।

भारतेंदु युग के बाद सन् १९१० ई० से १९४७ ई० तक के समय में भारत में अनेक आंदोलन, विरोध एवं प्रतिरोध देखने को मिलते हैं। इस दौरान अंग्रेजों की क्रूर नीतियाँ जैसे प्रेस एवं लेख पर सेन्सर आदि देखने को मिलती हैं। इन नीतियों ने तात्कालिक साहित्य लेखन को भी प्रभावित

किया। इस समय व्यंग्य एक महत्वपूर्ण विधा के रूप में आगे आयी जिसने लोगों के विद्रोह को परोक्ष रूप से दिखाते हुए पाठक को गुदगुदाने का कार्य किया। इस समय के सर्वप्रमुख व्यंग्यकार बेढ़ब बनारसी जी हैं। यह समय भारत की स्वतंत्रता प्राप्ति तक चलता है, जिसकी वजह से यह समय साहित्यिक-परतंत्रता का प्रतिनिधित्व करता है। अंग्रेजों द्वारा आरोपित सेन्सर की वजह से इस युग की रचनाओं में धार, निर्भीकता और प्रहारात्मकता में कमी आ गयी। राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक सभी क्षेत्रों में अंग्रेजों का हस्तक्षेप था, जिसकी वजह से इन सभी मुद्दों पर रचना करना एक कठिन कार्य था। यही वजह रही कि इस काल की रचनाओं को विषय-चयन और निर्भीकता की दृष्टि से उत्तम नहीं कहा जा सकता है। भारत की स्वाधीनता के बाद राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक आदि सभी क्षेत्रों में परिवर्तन हुआ। इसी वजह से इस युग की सीमा भारतीय स्वाधीनता तक ही मानी जाती है।

आज़ादी के बाद के वर्षों में भारत में अनेक राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विसंगतियाँ पनपी और साथ ही भ्रष्टाचार, ग़रीबी, भुखमरी जैसे मुद्दों ने इन विसंगतियों को और बढ़ावा दिया। स्वाधीनता पूर्व जिस बंधन के कारण लेखक की कलम बंधीं हुई थी उस बंधन की डोर आज़ादी के बाद टूट गयी। इन सभी परिस्थितियों नें एक ऐसी उर्वरक भूमि तैयार की जिसने अनेक व्यंग्यकारों को पैदा किया। इस काल

के व्यंग्यों में निर्भीकता और विषय-चयन की स्वतंत्रता को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। इस काल के व्यंग्यकार की रचनाओं में आक्रोश की प्रमुखता के साथ तीखे एवं तिलमिलाने वाले व्यंग्यों की अधिकता रही है। इसी काल में सुप्रसिद्ध व्यंग्यकार हरिशंकर परसाई जी की व्यंग्य रचनाओं का आरंभ होता है। साथ ही १९४७ में आज़ादी के बाद भारत की परिस्थितियाँ बदली और नई समस्याएँ देश के सामने आयी। आज़ादी के तुरंत बाद ही बँटवारे की त्रासदी, कश्मीर में पाकिस्तानी हमला उसके कुछ वर्षों के बाद भारत-चीन युद्ध, पुनः भारत-पाकिस्तान युद्ध जैसी समस्याओं से देश को जूझना पड़ा। पुनः पूर्वी पाकिस्तान से उपजी शरणार्थी समस्या और इसी मुद्दे की वजह से भारत-पाकिस्तान युद्ध आदि राजनीतिक अवस्थाओं से देश गुजरा। इन सभी बाह्य कारकों नें भी भारतीय व्यंग्य लेखन को प्रभावित किया। इस युग नें न सिर्फ़ राष्ट्रीय स्तर पर परिवर्तन देखे वरन् अनेक अंतर्राष्ट्रीय मुद्दों से भी देश को निपटना पड़ा। यही वजह रही की इस युग में व्यंग्य लेखन में बहुत अधिक विविधता देखने को मिलती है। सन् १९७५ में इंदिरा गांधी सरकार द्वारा आपातकाल की घोषणा से देश में पुनः एक ऐसी स्थिति पैदा हुई जिसकी छाप राजनीतिक ही नहीं वरन् सामाजिक, आर्थिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप में भी देखा जा सकता है। यह एक ऐसा दौर था जब प्रेस सेन्सर पुनः देखने को मिलता है, सरकार के विरोध में लिखने वालों के ख़िलाफ़ कड़ी कार्यवाही की जाती है। चूँकि इस घटना ने लोगों के मन में

जागरूकता पैदा करने का कार्य किया और साथ इस युग में अनेक ऐसे परिवर्तन हुए जो भारतीय समाज के लिए नए थे।

सन् १९९० के बाद वैश्विक स्तर पर अनेक परिवर्तन हुए। सोवियत संघ का विघटन, अमेरिकी प्रभुत्व के परिणामस्वरूप उदारीकरण का प्रभुत्व, मानवीय अधिकारों को बल मिलना, अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक सुधारों का वैश्विक पटल पर लागू होना आदि प्रमुख वैश्विक परिवर्तन रहे। इन सभी परिवर्तनों से भारत भी अछूता नहीं रहा। उदाहरण के लिए भारत में आर्थिक क्षेत्र में उदारीकरण की शुरुआत, सामाजिक क्षेत्र में पिछड़े वर्गों को आरक्षण, राजनैतिक क्षेत्र में अस्थायी या अल्पमत सरकारों की सत्ता, सांस्कृतिक क्षेत्र में वैश्विक दरवाज़े (संचार क्रांति के परिणाम स्वरूप) खुलने के साथ भारतीय संस्कृतियों में परिवर्तन, धार्मिक क्षेत्र में धार्मिक कट्टरता का प्रादुर्भाव (बाबरी विध्वंस के परिणामस्वरूप) आदि घटनाओं ने पूरे जनमानस पर व्यापक प्रभाव डाला। इन सभी घटनाओं से साहित्य की लगभग सभी विधाएँ प्रभावित हुई और व्यंग्य विधा भी भारत में हो रहे इन सभी परिवर्तनों से प्रभावित हुई। इन सभी परिवर्तनों की वजह से व्यंग्यकार "के पास लिखने का मसाला इतनी अधिक मात्रा में था कि यदि व्यंग्य को गम्भीरता से लिया जाता तो चुनाव की समस्या पैदा हो जाती कि किस विषय पर लिखें, किस पर न लिखें। दुर्भाग्य

से ऐसा कम ही हो पाया।”[1] इस काल में लिखे गए व्यंग्यों में जितने व्यंग्य राजनीतिक मुद्दों पर लिखे गए उतने व्यंग्य अन्य किसी भी क्षेत्र के ऊपर नहीं लिखे गए। प्रतिरोध युग में रचनाकारों को विषय-चयन की स्वतंत्रता नहीं होने के बावजूद विषयों की विविधता देखने को मिलती है, किंतु इस काल में विषय-चयन की स्वतंत्रता के बावजूद व्यंग्यकारों ने अनेक मुद्दों को नज़रंदाज़ कर दिया। “अंतर्राष्ट्रीय सम्बंध, उदारीकरण, बाज़ारवाद, सांस्कृतिक अवमूल्यन जैसे विषयों पर कुछ गम्भीर लेखकों ने ही कलम चलाई। आदिकाल में जहाँ स्वयं भारतेंदु हरिश्चंद्र, बालमुकुंद गुप्त, मध्यकाल में बेढब बनारसी, पाण्डेय बेचन शर्मा ‘उग्र’, श्रीनारायण चतुर्वेदी, स्वर्ण युग में परसाई, जोशी, त्यागी, शुक्ल, शंकर पुणतांबेकर, नरेंद्र कोहली, के० पी० सक्सेना जैसे रचनाकारों ने धार्मिक विसंगतियों तथा साम्प्रदायिकता, अंधविश्वासों आदि पर जमकर प्रहार किये वैसा इस काल में कम ही देखने को मिल रहा है। गोधरा ट्रेन अग्निकांड हो या गुजरात के साम्प्रदायिक दंगे, मेरठ-अलीगढ़ का हिंदू-मुस्लिम तनाव हो या ढोंगी साधुओं की धन लोलुपता, सती-प्रथा हो या फिर निठारी कांड ऐसे मुद्दों पर हमारे व्यंग्यकार हमेशा बचते ही रहे हैं। बमुश्किल आठ-दस व्यंग्यकारों नें इन मुद्दों पर लिखने की हिम्मत की है।”[2] यह युग व्यंग्य के लिए एक संक्रमण

---

[1] सुभाष चंदर; हिंदी व्यंग्य का इतिहास; भावना प्रकाशन; दिल्ली; तृतीय संस्करण; २०१७; पृष्ठ ३२५ पर उद्धृत

[2] सुभाष चंदर; हिंदी व्यंग्य का इतिहास; भावना प्रकाशन; दिल्ली; तृतीय संस्करण; २०१७; पृष्ठ ३२६-३२७ पर उद्धृत

क़ालीन युग रहा है जिसकी वजह से इस युग को आधुनिक काल के साथ-साथ संक्रमण क़ालीन युग भी कहा जा सकता है।

उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण से यह निर्विवाद रूप से स्थापित हो जाता है कि व्यंग्य के इतिहास में काल-विशेष की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का विशेष योगदान रहा है। इन परिस्थितियों ने कई बार अवसर के रूप में तो कई बार समस्याओं के रूप में व्यंग्यकार को प्रभावित किया है। उपर्युक्त संक्षिप्त विवरण के पश्चात् सभी कालों की परिस्थितियों, रचनाओं, रचनाकारों एवं उनकी शैली पर प्रकाश डालना आवश्यक प्रतीत हो जाता है। इसी कड़ी में सर्वप्रथम हम भारतेंदु-युगीन परिस्थितियों की चर्चा करते हैं।

भारतेंदु युग का काल विदेशी सरकार के दमन और शोषण का काल रहा है। इस दौर में भारतवासी अंग्रेजों के फूट डालो और राज करो की नीति के शिकार हो रहे थे। देश में सम्प्रदायवाद ही नहीं वरन् जाति-पाति, छुआ-छूत आदि सामाजिक कुरीतियों को प्रश्रय मिल रहा था। यह युग बेहद जटिल एवं असामान्य परिस्थितियों का युग था। चूँकि विदेशी सत्ता इस युग तक निरंकुश सत्ता के रूप में कार्य कर रही थी ऐसे में नीतियों के निर्माण एवं क्रियान्वयन में भारतीयों की बिलकुल भी सहभागिता नहीं थी। १८५७ की क्रांति के बाद से स्थितियाँ और बिगड़ चुकी थी और शासन सीधे ब्रिटेन की साम्राज्ञी के हाथ में जा चुका था। महारानी विक्टोरिया की तरफ़ से मात्र लुभावने आश्वासन ही मिले। लॉर्ड मैकले की शिक्षा नीति, जिसके

अनुसार अंग्रेज़ी को बढ़ावा मिला और हिंदी को दोयम दर्जे का माना गया, ने भाषिक दमन का आरम्भ किया। १८८५ में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुई। १९०५ में बंग-भंग का क़ानून आया और अनेक प्रदर्शन हुए। इस काल में लोगों को यह एहसास हुआ कि स्वतंत्रता महज़ दिवा-स्वप्न नहीं है और लोगों के अंदर स्वतंत्रता की इच्छा उग्र हुई। यही राजनीतिक परिस्थितियाँ हरिश्चन्द्र मैगज़ीन और आनंद कादम्बिनी आदि के व्यंग्य का केंद्रीय विषय रही।

धार्मिक परिस्थितियों की बात करें तो इस समय तक मुग़लों के अत्याचार से मुक्ति मिल चुकी थी, किंतु अंग्रेजों के अत्याचार से देश में त्राहि-त्राहि मचा हुआ था। इन अत्याचारों की वजह से लोगों को ईश्वर के रूप में एक आशा की किरण दिखाई पड़ती थी। इसका परिणाम यह हुआ की अंधविश्वास की भावना का विकास हुआ और अनेक कर्म-काण्डों, जादू-टोना, भूत-प्रेत में विश्वास, प्रेत-साधना आदि क्रियाओं में वृद्धि हुई। इसका तात्कालिक परिणाम यह हुआ की धार्मिक शिक्षा के स्थान पर पाखंड का बोलबाला हो गया। धर्म के नाम पर पशुओं की बलि और शराब का सेवन किया जाने लगा। यह प्रवृत्ति सिर्फ़ हिंदू धर्म में ही नहीं वरन् मुस्लिम धर्म में भी बढ़ी। इस प्रवृत्ति से पंडितों, पीरों और फ़क़ीरों की आमदनी में वृद्धि हुई और उन्होनें इसको और बढ़ाने का प्रयास किया। इस युग के व्यंग्यकारों, भारतेंदु हरिश्चन्द्र, बालकृष्ण भट्ट, बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन', प्रताप नारायण मिश्र आदि ने इन धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार किया।

अंग्रेजों की आर्थिक नीति की वजह से भारत निरंतर कंगाल होता जा रहा था। अंग्रेज भारत से सस्ते में कच्चा माल ख़रीदते और फिर उसी कच्चे माल से बनी चीजों को भारत में ऊँचे दामों पर बेंचते थे। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत की अर्थव्यवस्था तेज़ी से बिगड़ती रही। इसके अलावा सूखा, अकाल आदि प्रकोपों नें भारतीय अर्थव्यवस्था की रीढ़ तोड़कर रख दी। ऐसी परिस्थितियों में आम आदमी की ज़िंदगी बद से बदतर होता चली गयी। भारत हमेशा से एक कृषि-प्रधान देश रहा है अर्थात् भारत की अधिकांश जनता जीवन निर्वाह के लिए कृषि पर निर्भर थी। इसलिए भारत में उद्योग-धंधों का विकास बहुत कम हुआ और जो हुआ भी वो अंग्रेजों की दमनकारी नीति की भेंट चढ़ गए। अंग्रेजों नें नित्य नए कर लगाकर जीवन को और भी मुश्किल कर दिया था। इन्हीं आर्थिक परिवेशों में "भारतेंदु बाबू अंग्रेज स्तोत्र, भारत दुर्दशा जैसे प्रहारवादी रचनाओं के साथ आए। अंग्रेजों की स्वार्थपरता एवं अन्याय को उन्होंने अपनी रचनाओं का केंद्र बनाया। उनके लालच पर उन्होनें तीखे व्यंग्यात्मक प्रहार किए। बाबू बालमुकुन्द नें शिवशंभु शर्मा नामक नशेड़ी पात्र के माध्यम से अंग्रेज सरकार के दुराग्रही कार्यों पर चुटकियाँ ली। बालकृष्ण भट्ट, राधाचरण गोस्वामी प्रभृति रचनाकारों ने परोक्ष नीति से काम लिया। सीधे-सीधे प्रहार से उन्होनें यथासंभव परहेज़ ही रखा। प्रताप नारायण मिश्र ने अवश्य कुछ स्थानों पर अपनी भाषाई चाशनी में भिगोकर व्यंग्य बाण चलाये। किंतु... सही प्रहार करने का साहस केवल भारतेंदु और बालमुकुन्द गुप्त ही

जुटा पाये।"[3] इस प्रकार इस युग में कुछ व्यंग्यकारों ने निर्भीकता दिखाई तो कुछ ने अप्रत्यक्ष रूप से प्रहार किया। समाज के प्रति अपनी अदेयता के अभाव एवं अंग्रेजों की कुदृष्टि से बचने की प्रवृत्ति की वजह से इस युग की रचनाओं ने मात्र इस युग की प्रवृत्तियों को उजागर किया और अपने युग का दस्तावेज बनने में असफल रही। भारतेंदु जी इस युग के सबसे साहसी व्यंग्यकार साबित हुए। उन्होनें अंग्रेजों के ख़िलाफ़ अपनी व्यंग्यात्मक रचनाओं से लोहा लिया। भारतेंदु के बाद बालमुकुंद जी ने भी अपनी रचना 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के माध्यम से भारतेंदु परम्परा का निर्वहन किया।

भारत की तात्कालिक परिस्थितियों की बात करें तो अंग्रेजों की 'फूट डालो, राज करो' नीति की वजह से तात्कालिक भारतीय समाज में हिंदू और मुस्लिम एक-दूसरे के घोर विरोधी हो चुके थे। हिंदू वर्ण-व्यवस्था की अनेक उप-शाखाएँ समाज में पनप चुकीं थीं। इसी क्रम में अंग्रेजों ने हिंदी-उर्दू के विवाद को भी तूल देने का प्रयास किया। इस युग में अनेक समाज-सुधारक संस्थाएँ अस्तित्व में आयी किंतु इस युग के रचनाकारों ने उन संस्थाओं में कोई दिलचस्पी नहीं दिखायी। कई स्थानों पर तो कुछ रचनाकार इन समाज-सुधारक संस्थाओं का विरोध करते हुए दिखाई दिए। इन सभी सामाजिक परिवेशों के बीच भारत का एक तबका अंग्रेजों की संस्कृति से प्रभावित होता हुआ उनकी वेश-भूषा को सम्भ्रांत होने का पर्याय

---

[3] सुभाष चंदर; हिंदी व्यंग्य का इतिहास; भावना प्रकाशन; दिल्ली; तृतीय संस्करण; २०१७; पृष्ठ ४० पर उद्धृत

मानते हुए उनकी नक़ल करने लगा। अमीरों की यह दिलचस्पी ने उन्हें अपने ही देश के लोगों से दूर कर रही थी। हाँलाकि इस काल में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक मुद्दों पर प्रहार किया गया, किंतु भारतेंदु जैसे लेखकों ने भी सामाजिक सुधारों की तरफ़ ध्यान नहीं दिया। कई सामाजिक सुधारों का वे विरोध करते हुए भी दिखे। भारतेंदु जी स्वयं कई जगह पर जाति-प्रथा एवं मूर्ति-पूजा का समर्थन करते नज़र आए। बालकृष्ण भट्ट की हिंदू धर्म में अटूट आस्था थी जिसकी वजह से वे भी कई जगह वे जाति-प्रथा और कुलीनता के समर्थन में बात करते हुए रचना करते हैं। बालमुकुंद गुप्त जी ने समाज-सुधार कार्यक्रमों की खिल्ली भी उड़ाई है।

भारतेंदु युग भारतीय परतंत्रता के चरम का काल था। यह काल भारतीय जीवन के हर क्षेत्र में अंग्रेजों के हस्तक्षेप का काल था। इन्हीं परिस्थितियों के बीच हिंदी साहित्य की गद्य विधा का भी विकास हो रहा था। अर्थात् गद्य भाषायी एवं आकार की दृष्टि से अभी भी विकास के क्रम में थी। कुछ रचनाकारों नें गद्य की रचना में पद्य को अनिवार्य तत्व मानते हुए गद्य में भी पद्यात्मक पंक्तियाँ जोड़ दी। भारतेंदु जी ने स्वयं अपनी रचनाओं 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' एवं 'अंधेर नगरी चौपट राजा' में पद्यात्मक शैली का प्रयोग किया है। ऐसे भाषायी, शैलीगत एवं सामाजिक परिस्थितियों के बीच भारतेंदु युगीन व्यंग्य का विकास हो रहा था। इसका परिणाम यह हुआ की इस युग की पद्यात्मक व्यंग्य रचनाओं को भाषायी दृष्टि से गद्यात्मक व्यंग्य रचनाओं से बेहतर माना जा सकता है। भाषा एवं

शैली की दृष्टि से गद्यात्मक व्यंग्य रचनाएँ अभी विकास की अवस्था में थी। यहाँ यह ध्यान देने वाली बात है कि कई बार व्यंग्य के लक्षित उद्दयेश्य की प्राप्ति हेतु व्यंग्यकार व्यंग्य की भाषा को सामान्य बोलचाल की भाषा के साथ, ग्रामीण एवं अनगढ़ शब्दों का प्रयोग करता है ताकि व्यंग्य चुभता हुआ महसूस हो और उसके लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति हो सके। इस युग की व्यंग्य रचनाओं में भी यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। संस्कृत, अंग्रेज़ी, अरबी-फ़ारसी आदि भाषाओं के प्रचलित शब्दों का इस युग की व्यंग्य रचनाओं में बेहतर ढंग से प्रयोग किया गया ताकी व्यंग्य की भाषा को और भी प्रभावशाली बनाया जा सके। यदि भाषायी आधार पर व्यंग्य सरल है तो पाठक को सिर्फ़ व्यंग्य के अर्थ को समझने के लिए बुद्धि का प्रयोग करना होता न कि भाषा और व्यंग्य के अर्थ दोनो को समझने के लिए। ऐसे में भाषा सरल होने पर व्यंग्यकार लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति आसानी से कर लेता है। यही वजह है की इस युग के व्यंग्यकारों ने अपने लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सरल भाषा और सामान्य मुहावरों और लोकोक्तियों का प्रयोग किया। भारतेंदु जी ने अपने व्यंग्यों में भाषा के स्तर पर अनेक प्रयोग भी किए, उन्होनें शब्दों को तोड़-मरोड़कर प्रयोग करने के साथ-साथ वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य, कटूक्ति आदि का प्रयोग अपने अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया। इस युग में भाषा के साथ सर्वाधिक प्रयोग का श्रेय प्रताप नारायण मिश्र को जाता है। प्रताप नारायण मिश्र के इस प्रयोग की वजह से कई जगह उनके व्यंग्यों पर प्रतिकूल प्रभाव भी दिखाई पड़ता है, क्योंकि प्रयोग की

अधिकता की वजह से कुछ जगह तो व्यंग्य चमत्कारिक भाषा का उदाहरण मात्र बनकर रह जाता है। इस भाषायी प्रयोग की वजह से कुछ जगह तो व्यंग्य की प्रहारात्मकता पर भी प्रतिकूल प्रभाव दिखाई पड़ता है। बालकृष्ण भट्ट के व्यंग्य निबंधों की भाषा को अगर इस युग के अन्य व्यंग्यकारों से तुलना की जाए तो उसकी भाषा कहीं बेहतर है। बालकृष्ण जी ने संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग करते हुए भाषा को परिष्कृत करने का भरपूर प्रयास किया है। बद्रीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' जी भारतेंदु की भाषा का अनुसरण करते हुए दिखते हैं जिसमें उन्होनें भाव और भाषा के बीच सामंजस्य रखने का प्रयास किया है। प्रेमघन जी की रचनाओं में उर्दू, भोजपुरी, बंगला, मराठी आदि भाषाओं के प्रयोग में प्रमुखता से देखा जा सकता है। कई स्थानों पर उन्होंने अरबी-फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है। विस्तृत वाक्य को अपनी रचनाओं का आधार बनाने का कार्य राधाचरण गोस्वामी ने किया है। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में बालमुकुंद गुप्त ने सरल, सहज और भाषा का प्रयोग करते हुए समाज में उपस्थित तमाम विसंगतियों का उल्लेख बड़े ही कलात्मक ढंग से तंज कसा है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है की यह युग भाषायी दृष्टि से सहज, सरल और आम बोलचाल एवं जनजीवन की भाषा का प्रतिनिधित्व करता है। हाँलाकि हर युग में कुछ ना कुछ अपवाद अवश्य ही मिलते हैं, जिससे अछूता यह युग भी नही रहा है। किंतु सामान्य अर्थ में इस युग के रचनाकारों ने शिल्प के चमत्कारिक प्रयोग एवं भाषायी खिलवाड़ से खुद को दूर ही

रखा। सम्भवतः उनका उद्देश्य अपने अभीष्ट उद्देश्य को सरल, सहज एवं स्वाभाविक ढंग से प्राप्त करना था। 'अंधेर नगरी चौपट राजा', 'भारत दुर्दशा', 'शिवशम्भु के चिट्ठे' जैसी रचनाओं की सरलता ने ही इन्हें आज भी प्रासंगिक और प्रभावी रखा। इन रचनाओं ने न सिर्फ़ अंग्रेजों के शोषण से पीड़ित पाठकों को हँसाने का कार्य किया अपितु सामाजिक सरोकारों के निर्वाह पर ध्यान देते हुए विसंगतियों को भी उजागर करने का कार्य किया है। इस युग की व्यंग्य रचना में लेख और प्रहसन का बोलबाला रहा। 'शिवशम्भु के चिट्ठे' में बालमुकुंद जी ने आम बोलचाल और पाठकों के दैनिक जीवन की भाषा को ध्यान में रखते हुए अनूठे प्रयोग किए हैं। भारतेंदु जी की रचना 'अंधेर नगरी चौपट राजा' के निम्न उद्धरण से इस युग की व्यंग्य रचनाओं की विशेषता को स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है-

> "जातवाला ब्राह्मण – जात ले जात। टके सेर जात। एक टका दो, हम अभी अपनी जात बेचते हैं। टके के वास्ते ब्राह्मण से धोबी हो जाय और धोबी को ब्राह्मण कर दें, टके के वास्ते जैसी कहो वैसी व्यवस्था दें। टके के वास्ते झूठ को सच कर दें। टके के वास्ते ब्राह्मण से मुसलमान, टके के वास्ते हिंदू से क्रिस्तां। टके के वास्ते धर्म और प्रतिष्ठा दोनो बेचैं, टके के वास्ते झूठी गवाही दें। टके के वास्ते पाप को पुण्य मानैं, टके के वास्ते नीच को भी पितामह बनावैं। वेद, धर्म्म, कुल, मरजादा सच्चाई बड़ाई सब टके सेर। लुटाय दिया अनमोल माल ले टके सेर।"[4]

[4] डॉ० परमानंद श्रीवास्तव (सं०) (भारतेंदु हरिश्चन्द); अँधेर नगरी; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद; २०१०

उपर्युक्त उद्धरण में देखा जा सकता है कि किस तरह से भारतेंदु जी नें तत्कालीन सामाजिक विषमताओं पर प्रहार किया है। उपर्युक्त उद्धरण में जनसाधारण की बोली भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस युग में स्त्रोत शैली की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही।इसके अतिरिक्त व्यंग्य रचनाकारों ने भाषा के लचीलेपन पर ज़्यादा ध्यान दिया। वहीं बालमुकुंद गुप्त ने नयी भाषा के मुहावरों का प्रयोग किया और परिष्कृत भाषा के साथ-साथ व्यंजना शक्ति का भी प्रयोग किया।

भारतेंदु युग में व्यंग्य के लगभग सभी प्रकारों में रचनाएँ लिखी गयी। इस कड़ी में प्रहसन का सर्वाधिक प्रमुख स्थान रहा है। इस युग में प्रहसन शैली का उपयोग प्रमुखता से किया गया है। व्यंग्य नाटक/प्रहसन की बात करें तो भारतेंदु जी द्वारा १८७३ में लिखी रचना 'वैदिक हिंसा-हिंसा न भवति' को इस तरह की पहली रचना होने का गौरव प्राप्त है। इस व्यंग्य में पहली बार धर्मावलम्बियों पर व्यंग्यात्मक ढंग से प्रहार किया गया और जिसके परिणामस्वरूप प्रहसन की परम्परा का जन्म हुआ। बाद में इसी परम्परा का निर्वहन करते हुए भारतेंदु जी ने सबै जाति गोपाल की (१८७३), ज्ञात विवेकिनी सभा (१८७६), संड भंड़यो संवाद (१८७८), भारत दुर्दशा (१८८०), अँधेर नगरी चौपट्ट राजा (१८८१) जैसी रचनाएँ लिखीं। राधाचरण गोस्वामी की रचना 'बूढ़े मुँह मुहाँसे' (१८८७), बालकृष्ण भट्ट की रचना 'जैसा काम वैसा परिणाम' (१८८७) और 'आचार विडम्बना' (१८९९), विजयानंद त्रिपाठी की रचना 'महाअँधेर नगरी'

(१८९३), प्रताप नारायण मिश्र की रचना 'कलि कौतुक रूपक' बद्रीनारायण चौधरी प्रेमघन की रचना 'परिहास '(१८९२) एवं किशोरी लाल गोस्वामी की रचना 'चौपट चपेट' इसी परम्परा का निर्वहन करते हुए लिखी गयी हैं। देवकी नन्दन त्रिपाठी ने संख्या की दृष्टि से इस युग में सर्वाधिक प्रहसनों की रचना की, जिनकी संख्या ९ है; यथा- रक्षा बंधन, स्त्री-चरित्र, एक-एक के तीन, कलियुगी जनेऊ, बैल छैट के को, सैकड़ों में दस-दस, जय जरसिंह की, वैश्या विलास और कलयुगी विवाह। हाँलाकि अगर शिल्प के आधार पर देखा जाए तो सिर्फ़ 'स्त्री चरित्र' और 'कलयुगी विवाह' ही अच्छे हैं बाक़ी का शिल्प कमजोर है। अन्य व्यंग्य प्रहसनों में राधाकान्त लाल के 'देशी कुत्ता विलायती बोल' और 'चाण्डाल चौकड़ी', आनंद प्रसाद ठाकुर के 'मूर्खानन्द', गोपाल राम के 'दादा और मैं', आनंद प्रकाश कपूर के 'भण्डाफोड़', कार्तिक प्रसाद खत्री के 'रेल का टिकट', बलदेव मिश्र के 'लल्ला बाबू' और माधो प्रसाद के 'बैसाख नन्दन' का उल्लेख किया जा सकता है।

इस युग में व्यंग्य स्त्रोत की भी रचना हुई। भारतेंदु युगीन व्यंग्य परम्परा में प्रहसन के बाद इसी शैली की प्रमुखता देखने को मिलती है। गद्य में इस शैली का प्रथम प्रयोग का श्रेय भारतेंदु जी को जाता है। उनके बाद अनेक रचनाकारों ने उनके द्वारा स्थापित इस परम्परा का निर्वहन किया। इस युग में लिखे गए प्रमुख स्त्रोतों में भारतेंदु की 'अंगरेज स्त्रोत', 'अथ मदिरा स्तवराज', 'कंकड़ स्त्रोत', 'श्री वेश्या स्तवराज', 'स्त्री सेवा पद्धति';

राधाचरण गोस्वामी की 'नापित स्त्रोत', 'रेलवे स्त्रोत', 'मूषक स्त्रोत', 'वैद्यराज स्तवराज' तथा बालकृष्ण भट्ट की 'पत्नी स्तव' एवं 'वधुस्तवराज' आदि का उल्लेख किया जा सकता है। व्यंग्य निबंधों की बात करें तो इस युग में व्यंग्य निबंधों की संख्या काफ़ी कम है। भारतेंदु जी की रचना 'पाँचवे पैगम्बर' (१८८६), 'स्वर्ग में विचार सभा का अधिवेशन' (१८७५), 'ईश्वर बड़ा विलक्षण है' (१८८६), के अलावा 'शौहर आप ही तो हैं', 'सच मत बोलो' आदि रचनाएँ इस युग के उल्लेखनीय व्यंग्य-निबंध हैं। इन व्यंग्य-निबंधों के अतिरिक्त राधाचरण गोस्वामी के 'मिस्टर बूट' (१८८४), बालकृष्ण भट्ट के 'मेला-ठेला' (१८८५), 'पंच महाराज' (१९०३), प्रतापनारायण मिश्र के 'बात', 'भौं', 'होली है', 'कलि कोष' आदि रचनाओं में व्यंग्य निबंधों के तत्व पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं।

छिटपुट व्यंग्य स्तम्भों की भी रचना इस युग में हुई। इस संदर्भ में बालमुकुंद गुप्त की रचना 'शिवशम्भु के चिट्ठे' और 'चिट्ठे और ख़त' का उल्लेख किया जा सकता है। इस युग की कुछ रचनाएँ ऐसी हैं जिन्हें ना तो पूरी तरह कहानी की श्रेणी में रखा जा सकता है और ना ही निबंध की श्रेणी में रखा जा सकता है। इस तरह की रचनाओं में 'अद्‌भुत अपूर्व स्वप्न', 'दुलाई वाला', 'वामा मनोरंजन' और 'हास्य रतन' जैसी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इस युग में व्यंग्यात्मक शैली में कुछ उपन्यासों की भी रचना हुई। भाषा और विषय चयन की दृष्टि से प्रथम व्यंग्य उपन्यास होने का गौरव बाबू भगवान दास बी० ए० के उपन्यास 'उर्दू बेगम' को दिया जा सकता है।

अन्य उल्लेखनीय व्यंग्य उपन्यासों में 'ठेठ हिंदी का ठाठ' एवं 'धूर्त रसिक लाल' का उल्लेख किया जा सकता है। चूँकि यह युग व्यंग्य का आरम्भिक युग था, इसलिए इस युग में व्यंग्य आलोचना के क्षेत्र में प्रगति बहुत कम हुई। भारतेंदु, बालकृष्ण भट्ट एवं प्रताप नारायण मिश्र जैसे रचनाकारों की रचनाओं की छिट-पुट समीक्षाएँ अवश्य प्रकाशित हुई। व्यंग्य की श्रेणी में अगर पत्र-पत्रिकाओं की बात की जाए तो 'रसिक पंथ' का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इस समाचार-पत्र नें प्रथम बार व्यंग्य को समर्पित करते हुए लेख लिखे। इसके अतिरिक्त भारत बंधु, भारत मित्र, हिंदी प्रदीप, ब्राह्मण, आनंद कादम्बिनी, बंगवासी आदि उल्लेखनीय पत्रिकाएँ रहीं जिन्होनें व्यंग्य को स्थान दिया। प्रकाशन वर्ष के आधार पर कुछ विद्वानों ने 'धूर्त पंच' को हिंदी का पूर्ण हास्य व्यंग्य पत्र माना है जो १८९१ में प्रकाशित होना शुरू हुआ।

व्यंग्य को स्थान एवं वाणी देने का श्रेय सर्वप्रथम भारतेंदु जी को ही जाता है। उनके व्यंग्य न सिर्फ़ शोषित जनमानस के आवाज़ बनें अपितु उन्होनें अपने व्यंग्यों के माध्यम से सामाजिक, राजनीतिक एवं धार्मिक आडम्बरों को भी निशाना बनाया। कुछ भारतीय जो यथास्थितिवाद का समर्थन कर रहे थे उनके साथ-साथ सरकारी दमन पर भी भारतेंदु जी ने प्रहार किया। इसके अतिरिक्त भारतेंदु जी नें कुछ ऐसे विषयों को भी व्यंग्य का आधार बनाया जिनपर प्रहार करना उचित नहीं प्रतीत होता। भारतेंदु जी की "भाषा में कई जगह पर वैयाकरणिक दोष भी मिलता है। उन्होनें

अनेक स्थानों पर इच्छा किया, भावना किया, जाया किया जैसे दोषपूर्ण शब्दों का उल्लेख किया है।...भाषा के प्रचलित रूपों को तोड़-मरोड़कर उन्होनें कई नए शब्दों की भी सृष्टि की। प्रिजुडिसों, उच्चाटक, विलक्षणापन, मालमस्त, पड़तव्यं, दंत कटाकट"[5] आदि इसके प्रमुख उदाहरण हैं। इन शब्दों की रचना भारतेंदु जी की स्वच्छंदता के उदाहरण हैं। उन्होनें भाषा की परवाह किए बिना अपने लक्षित उद्देश्य की प्राप्ति हेतु नए शब्दों की रचना की। बालकृष्ण भट्ट भारतेंदु से बहुत अधिक प्रभावित हुए मालूम होते हैं। उन्हीं की व्यंग्य रचनाओं से प्रभावित होकर बालकृष्ण भट्ट जी ने 'जैसा काम वैसा परिणाम', 'रेल का विकट खेल', 'कलिराज की सभा' जैसे नाटकों के अतिरिक्त आँख, कान जैसे व्यंग्य निबंधों की रचना भी की। भट्ट जी ने सामाजिक और धार्मिक आडम्बरों पर प्रहार करने के साथ लोगों की अकर्मण्यता, रूढ़िगत समस्याएँ, धार्मिक व्यापार एवं दिखावटीपन जैसी विसंगतियों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया। इन प्रहारों के बावजूद वो अंग्रेजों की कुटिल नीतियों पर व्यंग्य रचना करने से सामान्यतः बचते हुए ही प्रतीत होते हैं। 'वकील' जैसे व्यंग्य निबंधों में उन्होनें अंग्रेजों को निशाना बनाया किंतु उनमें प्रहारात्मक कुशलता देखने को नहीं मिलती है। उनकी व्यंग्य रचनाएँ हास्य प्रधान मालूम होती हैं, जिनमें प्रहार की पर्याप्त कमी है। भाषाई छेड़-छाड़ के सहारे उन्होनें पाठकों को लुभाने का कार्य किया है।

---

[5] सुभाष चंदर; हिंदी व्यंग्य का इतिहास; भावना प्रकाशन; दिल्ली; तृतीय संस्करण; २०१७; पृष्ठ ६२ पर उद्धृत

प्रतापनारायण मिश्र ने सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, मानवीय एवं प्रशासनिक विषयों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया। इन्होनें दो तरह की व्यंग्य रचनाएँ लिखीं हैं। एक का उद्देश्य पाठकों को हँसना एवं गुदगुदाना है तथा दूसरे प्रकार के व्यंग्य का उद्देश्य सामाजिक सरोकारों पर प्रहार करते हुए पाठक के हृदय पटल को कचोटना है। भाषायी प्रयोग की अधिकता के कारण उद्देश्य का स्थान गौण हो गया है। क्षेत्र विशेष की भाषा के प्रयोग की वजह से रचना की पठनीयता भी सीमित हो गयी है। प्रतापनारायण मिश्र की रचना 'भारत की महादुर्दशा' भारतेंदु जी की रचना 'भारत दुर्दशा' से प्रभावित है। इस रचना में उन्होनें लोगों की यथास्थितिवाद, अकर्मण्यता, और कायरता पर प्रहार किया है। मिश्र जी ने अपने सरोकारों की गम्भीरता और प्रहारात्मकता को विशेष रूप से अपनी रचना 'कलि कौतुक कथा', 'रिश्वत', 'इनकम टैक्स', 'पुलिस की निंदा क्यों', 'बात', 'समझदार की मौत है' में प्रदर्शित किया है। मिश्र जी के व्यंग्य में सरल भाषा प्रयोग के साथ ग्राम्य कहावतों और मुहावरों का भी भरपूर प्रयोग देखने को मिलता है, जो ललित निबंधों के साथ मिलकर पाठकों के आनंदित करते हैं। भाषाई प्रौढ़ता के साथ इनके व्यंग्यों में कई स्तरों पर सफलता पूर्वक किया गया प्रयोग भी देखने को मिलता है। कई जगह ये जजमेंटल होते हुए भी दिखाई देते है और इनके व्यंग्य एक सुधारक और उपदेशक की भूमिका अदा करने लगते हैं जिससे व्यंग्य के प्रभाव में कमी आ जाती है।

पं० राधाचरण गोस्वामी ने व्यंग्यात्मक स्त्रोत, प्रहसन नाटक, व्यंग्य निबंध आदि विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। सामाजिक सरोकार के अभाव की वजह से इनके लेखों को बहुत अधिक ख्याति नहीं मिली। एक दो लेखों को अगर छोड़ दिया जाए तो इनके व्यंग्यों में सतही प्रहार ही देखने को मिलता है। तीक्ष्णता की कमी की वजह से इनके व्यंग्य अधिकतर पाठकों को महज़ गुदगुदाने का कार्य करते हैं। इनके व्यंग्यों की भाषा में कसाव, संस्कृत और अंग्रेज़ी शब्दों का बहुतायत प्रयोग देखने को मिलता है और साथ ही वक्रोक्ति और परिहास की प्रमुखता भी देखने को मिलती है। बालमुकुंद गुप्त जी ने इस युग को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाने का कार्य किया है। निर्भीकता और अंतरमन को झकझोर देने की कला के कारण इनकी रचना 'शिवशम्भु के चिट्ठे' का हिंदी व्यंग्य साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान है। सजीव और सहज शैली में इन्होनें अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों पर कटाक्ष किया है साथ ही जनभावना को अंग्रेजों के विरुद्ध प्रेरित करने का भी कार्य किया है। क्यूँकि ये उर्दू के लेखक एवं सम्पादक भी रह चुके थे जिसकी वजह से वाक्य विन्यासों में उर्दू का प्रभाव देखने को मिलता है। उर्दू के अतिरिक्त अंग्रेज़ी, बंगला, संस्कृत और लोक प्रचलित शब्दों के प्रयोग के साथ मुहावरों का भी सटीक प्रयोग किया है। सुगठित और प्रवाहमयी भाषा के प्रयोग के साथ सामासिक शैली, मुहावरों और कहावतों का मिश्रण, लक्षणा और व्यंजना का अभिनव प्रयोग उन्हें भाषिक रूप से भारतेंदु युग का एक श्रेष्ठ व्यंग्यकार घोषित करता है। पं० माधव प्रसाद मिश्र ने व्यंग्य के माध्यम से

समाज में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार किया है। इनके व्यंग्य की भाषा प्रौढ़ और प्रहारात्मकता से परिपूर्ण है। प्रसिद्ध व्यंग्य आलोचक सुभाष चंदर जी इनके व्यंग्यों में "सात्विक क्रोध और क्षोभ" की पर्याप्त मात्रा खोजते हैं।

भारतेंदु युग के प्रतिनिधि व्यंग्यकारों के अतिरिक्त इस युग में अन्य व्यंग्यकारों नें भी अपनी लेखनी चलायी है। इनमें लज्जाराम शर्मा, किशोरीलाल गोस्वामी, गोपाल राम गहमरी, काशीनाथ खत्री, देवकीनन्दन त्रिपाठी आदि का उल्लेख किया जा सकता है। भारतेंदु युग के व्यंग्यों में सरोकारों की गम्भीरता, विद्रोही स्वर और तीखी प्रहारात्मकता स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होती है। इस युग के व्यंग्यकारों ने सामाजिक विसंगतियों से मुँह नहीं मोड़ा बल्कि उसका पर्दाफ़ाश करने का भी प्रयास किया। हाँलाकि कुछ रचनाओं में रचना-शिल्प के आधार पर कुछ कमियाँ देखने को मिलती हैं किंतु इस युग ने व्यंग्य विधा के प्रारम्भिक अवस्था में होने के बावजूद निर्भीकता का परिचय दिया है, जिसकी वजह से इसके महत्व को हिंदी व्यंग्य साहित्य में किसी भी सूरत में भुलाया नहीं जा सकता है।

भारतेंदु युग में व्यंग्य के जिस बीज का अंकुरण किया गया था वह बीज द्विवेदी युग में आकर हास्य की प्रमुखता के साथ देखने को मिलता है। इस युग की व्यंग्य रचनाओं में भारतेंदु युगीन गम्भीरता का प्रायः अभाव देखने को मिलता है किंतु यह युग हास्य रचनाओं के युग के रूप में सामने आया। इस युग में एक प्रवृत्ति यह भी देखने को मिलती है कि अन्य विधाओं

के लेखकों नें भी हास्य रचनाएँ लिखी हैं। यह एक ऐसा युग था जब हिंदी गद्य विधा अपने युवावस्था में प्रवेश कर रही थी। इस युग के लेखकों को भारतेंदु युग के लेखक, जैसे - भारतेंदु हरिश्चन्द्र, प्रतापनारायण मिश्र, बालमुकुंद गुप्त जैसे लेखकों की परम्पराओं का मार्गदर्शन भी प्राप्त हुआ।

इस काल की राजनीतिक परिस्थितियों की बात करें तो जहां इस काल के पूर्व अंग्रेजों के खिलाफ आवाज़ उठाने की हिम्मत आम जनमानस की नहीं होती थी वहीं इस युग में कांग्रेस, गांधी जी और गरमपंथियों के सहयोग से आम आदमी भी अपनी-अपनी क्षमतानुसार अंग्रेजों के विरोध में संलग्न था। रोलेट ऐक्ट का विरोध, नमक क़ानून और १९२१ के असहयोग आंदोलन में लोगों नें बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। इस युग में जलियाँवाला बाग की घटना, लाला लाजपत राय की हत्या एवं भगत सिंह, राजगुरु, बटुकेश्वर दत्त, चंद्रशेखर आज़ाद, पं० रामप्रसाद बिस्मिल जैसे क्रांतिकारियों के बलिदान नें जनमानस में अंग्रेजों के प्रति घृणा और विद्रोह को बढ़ाने का कार्य किया। धीरे-धीरे यह विरोध गांधी जी के नेतृत्व में एक संगठित एवं सकारात्मक विद्रोह के रूप में आगे बढ़ा और अंततः १९४७ में भारत की आज़ादी के रूप में परिणत हुआ।

इस युग में सामाजिक परिस्थितियों में अनेक परिवर्तन परिलक्षित होते हैं। अनेक सामाजिक सुधार संस्थाएँ आगे आकर लोगों के मन से रूढ़ियों और अंधविश्वास को दूर करने के कार्य में लिप्त रहीं। बाल-विवाह, जातीय भेदभाव, सती प्रथा आदि कुरीतियों के ख़िलाफ़ आवाज़ उठाई गयी। अंग्रेजों

की 'फूट डालो और राज करो' नीति के चलते हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य भी समाज में घर कर रहा था। १९३५ के गवर्नमेंट ऑफ इंडिया ऐक्ट के द्वारा अछूतों को भी वोट देने का अधिकार दिया गया।

आर्थिक क्षेत्र की अगर बात करें तो इस युग में भारतीय संपदाओं के दोहन से जहाँ एक तरफ़ अंग्रेज़ी अर्थव्यवस्था वैश्विक स्तर पर मज़बूत होती जा रही थी वही भारतीय अर्थव्यवस्था अपने बुरे दौर से गुजर रही थी। एक समय 'सोने की चिड़िया' कहा जाने वाला देश अंग्रेजों के आर्थिक दमन का शिकार हो रहा था। अंग्रेजों के दोहन नीति के चलते भारतीय उद्योग-धंधे तेज़ी से बंद होते जा रहे थे। यही वजह थी कि समाज का कोई तबका ऐसा नहीं बचा था जो अंग्रेजों के कुशासन से प्रभावित नहीं था। यही वजह रही की भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन में हर वर्ग के लोगों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। धार्मिक क्षेत्र में जहाँ शहरों में अंधविश्वास जैसी चीजें ख़त्म हो रही थीं वहीं सुदूर ग्रामीण इलाक़े इन सुधारों से अछूते ही रहे। साथ ही साथ अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' की नीति नें हिंदू-मुस्लिम वैमनस्य बढ़ाने के साथ-साथ दोनों धर्मों में कट्टरपंथियों की संख्या में वृद्धि हुयी।

इसी कड़ी में कविता नें दरबार की चौखट छोड़ते हुए आम आदमी तक अपनी पहुँच बनायी। इस युग के साहित्यकारों पर अंग्रेजों के प्रेस ऐक्ट का भी प्रभाव देखने को मिलता है। इस ऐक्ट के आधार पर अंग्रेजों के ख़िलाफ़ कुछ भी लिखने पर लेखक के ऊपर राजद्रोह लगा दिया जाता था। इसका परिणाम यह हुआ की लेखकों ने अपने लेख या तो किसी और के नाम

से प्रकाशित करवाए या फिर चुपके-चुपके लेख लिखे। कविता को ही आधार मानकर छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद आदि प्रकाश में आए। भारतेंदु युग की अपेक्षा इस युग में विषय चयन की विविधता देखने को मिलती है। शैलीगत एवं भाषाई बुनावटों पर ध्यान देने के साथ-साथ सूक्ष्म उपकरणों पर भी ध्यान दिया गया। प्रसिद्ध व्यंग्य समीक्षक सुभाष चंदर ने इस युग की व्यंग्य रचनाओं को तीन श्रेणियों- गम्भीर प्रहारक व्यंग्य, हास्य-मिश्रित व्यंग्य एवं हास्य प्रधान रचनाओं में विभाजित किया है।

गम्भीर प्रहारक व्यंग्य का अर्थ है ऐसे व्यंग्य जिनमें विषय चयन का विशेष ध्यान देते हुए रचनाकार विसंगतियों पर अपनी सूक्ष्म पकड़ बनाते हुए तीक्ष्ण चोट करता है। ऐसा करने में वह शैलीगत उपकरणों का प्रयोग तापीय आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए करता है। इन प्रक्रियाओं से होकर उत्पन्न होता है गम्भीर प्रहारक व्यंग्य। हाँलाकि इस युग में इस तरह के व्यंग्यों की अधिकता तो नहीं है किंतु इस तरह के व्यंग्यों की प्रभावोत्पादकता में कमी देखने को नहीं मिलती है। वहीं प्रेस ऐक्ट के बाद राजनीतिक व्यंग्य लिखने का अर्थ था की खुद को राजद्रोही बन जाना। बावजूद इसके कृष्णदेव प्रसाद गौड़ उर्फ़ बेढब बनारसी, पाण्डे बेचन शर्मा उग्र, विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक, भुवनेश्वर, हरि शंकर शर्मा जैसे साहसी व्यंग्यकारों ने निर्भीकता का परिचय देते हुए व्यंग्य लेखन में गुणात्मक वृद्धि लाने का कार्य किया। इस युग का सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य ‘लफ़्टंट पिगसन की डायरी’ है जिसमें बेढब बनारसी जी नें ‘लफ़्टंट पिगसन’ नामक काल्पनिक पात्र के

माध्यम से तत्कालीन विसंगतियों पर प्रहार किया है। इस रचना में भाषाई एवं शैलीगत प्रौढ़ता की जो प्रवृत्ति मिलती है वह इस युग में किसी अन्य रचना में नहीं देखने को मिलती। उपकरणों का प्रयोग, प्रसंग वक्रता और तीव्र प्रहारता जैसी खूबियों से सुसज्जित इस युग में व्यंग्य रचना की गयी। बेढब बनारसी के अतिरिक्त पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' भी इसी श्रेणी के व्यंग्यकार हैं। इनके व्यंग्य तीखे तेवर और सपाट बयानबाज़ी के साथ पाठकों के मन में अव्यवस्था के प्रति खीझ और आक्रोश उत्पन्न करने का कार्य करते हैं। इनकी कहानियों और उपन्यासों में पाठकों को झकझोर देने वाले व्यंग्य की प्रवृत्ति मिलती है। लघु उपन्यास 'खुदा राम' और 'चंद हसीनों के खतूत' इनकी व्यंग्यात्मक शैली और तीक्ष्णता का प्रदर्शन करते हैं। उग्र जी ने अपनी व्यंग्यात्मक शैली का प्रयोग करते हुए 'नेता का स्थान', 'सरकार तुम्हारी आँखों में' जैसे राजनीतिक व्यंग्य, 'भुनगा' जैसी लाक्षणिक कहानियों एवं 'चुम्बन' और 'चार बेचारे' जैसे व्यंग्य नाटकों की रचना की है। इनकी रचनाएँ इस मध्यकालीन युग के गम्भीर प्रहारक व्यंग्य के वर्ग में एक महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इसी कड़ी में विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक जी की रचना 'दुबेजी की चिट्ठियाँ' का उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है। कौशिक जी नें व्यंग्यों की रचना तो अधिक मात्रा में नहीं की है किंतु उनकी इस रचना में विषय चयन की गम्भीरता, शैलीगत एवं तापीय विशेषता के आधार पर इस वर्ग में उन्हें शामिल किया जा सकता है।

हास्य मिश्रित व्यंग्य का अर्थ है ऐसे व्यंग्य जो पाठकों को गुदगुदाने का कार्य करें एवं अव्यवस्थाओं पर हल्की चोट करें। इस युग में ऐसे व्यंग्यों की अधिकता देखने को मिलती है। इस युग के लगभग सभी रचनाकारों नें इस तरह के व्यंग्यों की रचना की है। हास्य मिश्रित व्यंग्यों में विषय की विविधता देखने को मिलती है। समाज का शायद ही ऐसा कोई पहलू हो जिस पर इस वर्ग के व्यंग्यों की रचनाS की गयी हो। इस वर्ग में पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी की 'म्युनिसपिलैटी के कारनामे' एवं 'सुतापराधे जनकस्य दण्डे', गुलेरी जी की 'कांशी की नींद और नूपुर', 'कछुआ धर्म', 'मोरिस मोहि कुठाऊँ' और बाबू गुलाबराय की 'ठलुआ क्लब', 'मेरी असफलताएँ' एवं 'नवरस' जैसी रचनाएँ उल्लेखनीय हैं। इस वर्ग के अन्य रचनाओं की बात करें तो जी० पी० श्रीवास्तव के 'उलटफेर' (व्यंग्य नाटक), भुवनेश्वर के 'एक साम्यहीन साम्यवादी' (व्यंग्य नाटक), उपेन्द्र नाथ अश्क़ के 'तौलिए', लक्ष्मी का स्वागत', बेढब बनारसी के 'चिकित्सा का चक्कर', निराला के 'बिल्लेसुर बकरिहा', 'चतुरी चमार', 'कुल्ली भाट', 'गजानन्द शास्त्रिणी', प्रेमचंद के 'सत्याग्रह', 'स्वाँग', 'बड़े भाईसाहब', भगवती चरण वर्मा के 'वसीयत', वृंदालाल वर्मा के 'मेंढकी का ब्याह', अमृतलाल नागर की व्यंग्य रचनाएँ, प्रभाकर माचवे की 'मकान', 'कुत्ते की डायरी' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

हास्य रचना की अगर बात करें तो यह महज़ पाठकों को गुदगुदाने का कार्य करती हैं। हाँलाकि कई जगह छीटों के रूप में इन रचनाओं में

कटाक्ष भी देखा जा सकता है किंतु वे महज़ सतही रूप में ही हैं। इस धारा के रचनाकारों में जी० पी० श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द वर्मा, श्रीनारायण चतुर्वेदी, हरिशंकर शर्मा, अनंत गोपाल शेवड़े, उपेन्द्रनाथ अश्क़, प्रभाकर माचवे, राधाकृष्ण आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

इस युग में व्यंग्य लेखन व्यंग्य साहित्य की लगभग सभी विधाओं में देखने को मिलता है फिर चाहे व्यंग्य निबंध हो, व्यंग्य नाटक/एकांकी हो, व्यंग्य कथा हो, व्यंग्य उपन्यास हो या फिर व्यंग्यालोचना हो। इस युग के प्रमुख प्रतिनिधि व्यंग्यकारों की अगर बात करें तो इसकी सूची बहुत बड़ी है। जैसा कि पहले ही उल्लिखित किया जा चुका है कि इस युग में लगभग सभी रचनाकारों में व्यंग्य रचनाएँ की। पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी, पं० रामचंद्र शुक्ल, पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, बाबू गुलाब राय, बेढब बनारसी, पं० विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र', जी० पी० श्रीवास्तव, अन्नपूर्णानन्द वर्मा, हरिशंकर शर्मा, राधाकृष्ण, श्रीनारायण चतुर्वेदी, डॉ० प्रभाकर माचवे, कांता नाथ पाण्डेय 'चोंच', प्रेमचंद, पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला', उपेन्द्र नाथ अश्क, भुवनेश्वर प्रसाद, भगवती चरण वर्मा, वृंदावनलाल वर्मा, यशपाल और पं० माखनलाल चतुर्वेदी आदि रचनाकार इस युग के प्रतिनिधि रचनाकार हैं। तुलनात्मक रूप से अगर देखा जाए तो इस युग में भारतेंदु युग की अपेक्षा प्रहारात्मकता एवं पैनापन कम देखने को मिलता है। ऐसा तात्कालिक परिस्थितियों की वजह से हो सकता है। यह युग हास्य रचनाओं की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण युग रहा

है। इस युग में भाषाई प्रौढ़ता एवं शैलीगत उपकरणों में कसावट भी देखने को मिलता है। वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य, कटुक्ति, परिहासबोध आदि का प्रयोग अधिक देखने को मिलता है।

आज़ादी के पूर्व लेखकों की कलम पर जो अंग्रेज़ी सेन्सर था वह आज़ादी के बाद खत्म हो गया और साथ ही साथ संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों के माध्यम से लेखनी में स्वतंत्रता देखने को मिलती है। अभिव्यक्ति की आज़ादी जैसे अधिकारों ने लेखकों की अभिव्यक्ति पर लगे आवांछित रोक-टोक को खत्म किया। यही वजह रही है कि इस युग के व्यंग्यों में प्रहारात्मकता, पैनापन, निडर लेखन, विषय चयन की स्वतंत्रता जैसे व्यंग्य के मूलभूत आधारों में आमूल परिवर्तन देखने को मिलता है। आज़ादी के बाद जीवन के लगभग सभी पहलुओं में परिवर्तन देखने को मिलता है। ऐसे में परिवर्तित युगीन परिस्थितियों पर गौर करना आवश्यक प्रतीत होता है।

राजनीतिक परिस्थितियों की अगर बात करें तो भारत की आज़ादी के बाद अंग्रेजों ने भारत के दो टुकड़े कर दिए थे तथा सभी देशी रियासतों को यह अधिकार दे दिया था की वो चाहे तो भारत के साथ रहें या फिर पाकिस्तान के साथ। इसका परिणाम यह रहा कि आज़ादी के प्रारम्भिक वर्षों में भारत की एकता को सुनिश्चित करना सबसे ज़रूरी कार्य था। साथ ही भारत पाकिस्तान के बँटवारे के साथ हिंदू-मुस्लिम दंगे भी बड़े पैमाने पर हुए जिसके परिणामस्वरूप शरणार्थी समस्या से समस्त भारतवासियों

को जूझना पड़ा। इसी समय कश्मीर में घुसपैठ हुई जिसके कारण राजा हरिसिंह नें कश्मीर का विलय भारत में अनेक शर्तों के साथ किया। यही शर्त आगे चलकर कश्मीरी समस्या के रूप में उभर कर आये। आज़ादी के प्रारम्भिक वर्षों में राजनेताओं को समाज में एक सम्मान पूर्वक स्थान प्राप्त था किंतु आगे चलकर भ्रष्टाचार के आरोपों से घिरते हुए राजनेताओं के सम्मान में निरंतर गिरावट हुई। कुछ वर्षों के बाद भारत चीन युद्ध हुआ जिसके परिणाम स्वरूप नेहरू की नीतियों पर समाज के कई वर्गों ने प्रश्नचिन्ह लगाया। कुछ वर्षों बाद शास्त्री जी के समय में भारत-पाकिस्तान युद्ध हुआ। शास्त्री जी के बाद इंदिरा गांधी देश की प्रधानमंत्री बनीं। इनके समय में इनके बड़े बेटे संजय गांधी का प्रशासन में अनावश्यक हस्तक्षेप देखने को मिलता है। इसी समय भारत ने पूर्वी पाकिस्तान में पश्चिमी पाकिस्तान द्वारा की जा रही ज्यादतियों और भारत में उससे उत्पन्न शरणार्थी समस्या से बचने के लिए इंदिरा जी नें मुक्तिवाहिनी को प्रशिक्षित करने का फ़ैसला लिया। जवाब में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध का अंत बांग्लादेश के जन्म के रूप में हुआ और इंदिरा गांधी को 'आयरन लेडी' की संज्ञा प्राप्त हुई। भारतीय राजनीति में सबसे अधिक उथल-पुथल तब हुआ जब इंदिरा गांधी में आपातकाल की घोषणा कर दी। इस आपात काल के दौर में चाटुकार नौकरशाह जनता का शोषण करने से पीछे नहीं हटे। कुछ वर्षों बाद पंजाब में खालिस्तान के समर्थन में बढ़ रही गतिविधियाँ भी भारतीय राजनीति में प्रमुख स्थान रखती हैं। सन् १९७५

के बाद देश की परिस्थितियाँ पुनः बहुत तेज़ी से बदली। आपातकाल की घोषणा के साथ ही आम जनमानस नें यह महसूस किया कि लोकतंत्र में भी किस तरह से आज़ादी के पूर्व की स्थित वापस आ सकती है। इस समय राजनीतिक रूप से देश में अराजकता जैसी स्थिति बनी हुई थी। विपक्षी दलों के प्रमुख सदस्यों को जेल भेजा जा रहा था। प्रेस पर सेन्सर लग जाने से सरकार की आलोचना पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। कुल २१ महीनो बाद अंततः आपातकाल को वापस ले लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ की आने वाले चुनाव में कांग्रेस हार गयी, किंतु कोई भी पार्टी बहुमत प्राप्त न कर सकी। इसी के साथ मोरारजी देसाई के नेतृत्व में जनता दल ने पहली बार देश में ग़ैर-कांग्रेसी सरकार का निर्माण किया गया। यह सरकार लगभग २ वर्ष और ४ महीने ही शासन कर सकी। पुनः चरण सिंह के नेतृत्व में जनता दल (सेक्युलर) ने लगभग ६ महीनें तक शासन किया। किंतु यह सरकार भी ज़्यादा नहीं चल सकी और चुनाव कराने पड़े। इस बार इंदिरा गांधी ने बहुमत की सरकार बनायी और लम्बे समय से सरदर्द बने खालिस्तानी मुद्दे से निपटने के लिए ऑपरेशन 'ब्लू स्टार 'चलाया। इस ऑपरेशन से सिख वर्ग में असंतोष की लहर दौड़ गई और इसी का बदला लेने के लिए इंदिरा गांधी की सुरक्षा में शामिल एक सुरक्षाकर्मी ने उनकी हत्या कर दी। इंदिरा के बाद उनके छोटे बेटे राजीव गांधी प्रधानमंत्री बनें। वहीं सर्वोच्च न्यायालय द्वारा १९८६ में प्रेस की स्वतंत्रता को मौलिक अधिकार की श्रेणी में रखना एक प्रमुख निर्णय था। इस युग में व्यंग्य साहित्य

अपने शैशवावस्था से बाहर निकल कर अपने प्रौढ़ावस्था में प्रवेश कर रही थी। इस प्रकार इस युग में भिन्न-भिन्न समस्याओं को भारतीय समाज ने देखा। परिणामस्वरूप इस युग के व्यंग्यकारों को व्यंग्य लेखन के लिए पर्याप्त मसाला प्राप्त हुआ। इन्हीं को आधार बनाकर अनेक राजनीतिक व्यंग्यों की रचना की गयी।

आजादी के बाद भारतीय समाज में राजनीतिक भ्रष्टाचार, अवसरवादियों एवं वोट बैंक की राजनीति में वर्ग विभेद और जातिवाद को और भी बढ़ाने का कार्य किया। छुआ-छूत जैसी विकृतियाँ तो भारतीय समाज में पहले से ही विद्यमान थी। आज़ादी के बाद के दिनों में जहाँ एक तरफ़ शहरों का आधुनिकीकरण हो रहा था वहीं सुदूर इलाक़ों में राजनीतिक भ्रष्टाचार एवं राजनेताओं की महत्वाकांक्षा की वजह से भिन्न-भिन्न वर्ग एक दूसरे से वैमनस्य रखना शुरू कर रहे थे। समाज की इन सभी बुराइयों/विकृतियों को व्यंग्यकारों ने महसूस करते हुए अपनी व्यंग्यात्मक प्रतिभा का परिचय दिया और इन सभी विषयों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया।

अंग्रेजों ने भारत छोड़ने से पूर्व भारतीय धार्मिक परिस्थितियों में ज़हर घोलने का कार्य किया था, बाद की स्थितियों ने इस समस्या को और भी बढ़ाने का कार्य किया। आज़ादी के बाद हुए 'विभाजन की त्रासदी', ख़ालिस्तानी मुद्दा (जिन्होनें बाद में धर्म के आधार पर लोगों को लक्षित करना शुरू किया), कश्मीरी पंडितों का पलायन, एवं देश के विभिन्न भागों

में अलग अलग समय पर हुए धार्मिक दंगे इसका प्रमुख उदाहरण हैं। जैसा कि कहा भी जाता है कि एक रचनाकार समाज के सभी पहलुओं पर अपनी सूक्ष्म दृष्टि रखता है एवं उनके आधार पर रचना करता है। भारतीय समाज में हो रहे इन परिवर्तनों को भी व्यंग्यकारों ने अपनी लेखनी का आधार बनाया है। आज़ादी के बाद भारतीय अर्थव्यवस्था की हालत पहले से ही बुरी थी, उस पर भारत-चीन युद्ध, भारत-पाकिस्तान युद्ध, भारत का बांग्लादेश को मुक्त कराना आदि समस्याओं के साथ-साथ, कृषि के हालात नें भारतीय अर्थव्यवस्था को उस दौर में काफ़ी हानि पहुँचाई थी। अगर निष्कर्षतः कहा जाए तो तत्कालीन भारतीय अर्थव्यवस्था अपने बुरे दौर से गुज़र रही थी। ऐसे सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों के माहौल में युगीन व्यंग्यकारों ने अपनी लेखनी का प्रयोग करते हुए तात्कालिक विषमताओं पर प्रहार किया।

1947 से 1990 तक व्यंग्य साहित्य के विकास की बात करें तो इस दौर में व्यंग्य विधा की रचनाओं की भरमार है। इस युग की व्यंग्य रचनाओं को ४ विधाओं में विभक्त किया जा सकता है जो हैं- व्यंग्य निबंध, व्यंग्य कथा, व्यंग्य नाटक एवं व्यंग्य उपन्यास। इस युग इस युग के व्यंग्य निबंधों में तात्कालिक सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं धार्मिक विषमताओं पर प्रहार किया गया है। व्यंग्य कथाओं में राजनीतिक विसंगतियों के साथ-साथ सामाजिक विसंगतियों, पुलिस-प्रशासन की विकृतियों, सांस्कृतिक

विसंगतियों, कार्यालयीन विसंगतियों एवं शैक्षणिक विसंगतियों पर प्रहार किया गया।

इस युग के व्यंग्यकारों एवं उनके प्रमुख व्यंग्य रचनाओं की बात करें तो पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' कृत 'कढ़ी में कोयला', राधाकृष्ण कृत 'घोष बोस बनर्जी चटर्जी' एवं 'सनसनाते सपने', अमृतलाल नागर कृत 'देश सेवा शाह मदारों की', 'लंगूर का बच्चा', 'मैं ही हूँ' एवं 'बाबू पुराण', अमृत राय कृत 'बतरस', 'आनन्दम' और 'विज़िट इण्डिया', डॉ प्रभाकर माचवे कृत, श्रीनारायण चतुर्वेदी कृत 'राजभवन की सिगरेटदानी', डॉ० संसारचंद्र कृत 'सोने का दाँत', 'पानी जाली के काँटे', 'गंगा जब उल्टी बहे', 'लाख रूपये की बात', 'विदूषक की याद में', 'लाल भुजक्कड़', गोपालदास व्यास के व्यंग्य स्तम्भ हैं। 'यत्र-तत्र सर्वत्र' एवं प्रत्येक शनिवार को प्रकाशित 'नारद जी खबर लाए हैं', हरिशंकर शर्मा कृत 'मन की मौज' और 'गड़बड़गोष्ठी', अन्नपूर्णानंद वर्मा कृत 'मनमयूर' आदि प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कुछ उभरते व्यंग्यकारों ने भी अपनी व्यंग्यात्मक शैली का परिचय दिया है जो स्वयं में एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इन उभरते हुए व्यंग्यकारों एवं उनकी रचनाओं की बात करें तो केशवचंद्र वर्मा कृत 'काठ का उल्लू और कबूतर', 'मौहब्बत', 'दाढ़ी मूँछ और मनोविज्ञान', हरिशंकर परसाई कृत 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'सदाचार का ताबीज़', शरद जोशी कृत 'एक था गधा', 'अंधों का हाथी', श्रीलाल शुक्ल कृत 'राग-दरबारी', 'अंगद का पाँव', 'यहाँ से वहाँ', 'मकान', 'मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ', 'उमराव नगर में

कुछ दिन' और 'पहला पड़ाव', रवीन्द्रनाथ त्यागी कृत 'खुली धूप में नाव पर' नरेंद्र कोहली कृत 'एक और लाल तिकोन', 'जगाने का अपराध', डॉ० शंकर पुणतांबेकर कृत 'बचाओ मुझे डॉक्टरों से बचाओ' और 'रेडीमेड कपड़े', लतीफ़ घोंघी कृत 'उड़ते उल्लू के पंख', 'बुद्धिजीवी की चप्पलें', 'चोरी न होने का दुःख', डॉ० सुदर्शन मंजीठिया कृत 'मुख्यमंत्री का डंडा', के० पी० सक्सेना कृत 'मूँछ-मूँछ की बात' और 'गुलसनोवर की यात्रा' आदि रचनाएँ और रचनाकार प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त इस युग के कुछ अन्य व्यंग्यकार हैं- रोशन लाल सुरीरवाला, रामनारायण उपाध्याय, कृष्ण चराटे, डॉ बरसाने लाल चतुर्वेदी, मनोहर श्याम जोशी, डॉ० इंद्रनाथ मदान, डॉ० आत्मानंद मिश्र, शांति मेहरोत्रा, डॉ० श्याम सुंदर घोष, रमेश बक्षी, मुद्राराक्षस, प्रदीप पंत, लक्ष्मीकान्त वैष्णव, डॉ० शेरजंग गर्ग, अजातशत्रु एवं गोपाल चतुर्वेदी आदि।

इस युग में अनेक ऐसे रचनाकारों की रचनाएँ देखने को मिलती हैं जिन्होनें अपनी लेखनी की शुरुआत तो पहले से ही की थी किंतु उनकी रचनाओं को प्रौढ़ता इस युग में आकर प्राप्त हुई। वहीं कुछ ऐसे व्यंग्यकार भी थे जिन्होंने हिंदी व्यंग्य साहित्य के बहुमूल्य भंडार में वृद्धि करने की शुरुआत तो इसी युग में कर दी थी किंतु उनकी लेखनी को प्रौढ़ता आधुनिक युग में जाकर प्राप्त हुई। अंग्रेजों द्वारा रचनाकारों की लेखनी पर लगाया गया प्रतिबंध इस युग में समाप्त हो चुका था। साथ ही जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है, भारत इस युग में अनेक परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था।

इन परिवर्तनों और बदलती ज़रूरतों ने समाज में अनेक विसंगतियाँ पैदा कर दी थी। समाज की इन विसंगतियों पर प्रहार करने का दायित्व इस युग के व्यंग्यकारों ने समझा और उसपर प्रहार किया। इस युग के अलग-अलग दशक अलग-अलग विषमताओं के साक्षी रहे और इन विषमताओं पर अलग-अलग तापीय शैली और प्रहारात्मकता के साथ प्रहार करते रहे। उदाहरणार्थ अगर ५० के दशक की बात करें तो आरम्भ में देश में नई-नई आज़ादी प्राप्त हुई थी और इस समय प्रहरात्मकता में कमी देखने को मिलती है। इस समय की रचनाओं जैसे 'करिया अक्षर भैंस बराबर', 'बौछार' एवं 'लतखोरी लाल, भड़ाम सिंह' नें मीठी गुदगुदी और सीमित प्रहारात्मकता के साथ पाठकों को गुदगुदाने का कार्य अधिक किया। किंतु ५० के दशक के उत्तरार्ध में आते-आते 'गांधी का भूत' जैसी तीखी प्रहारात्मक रचनाएँ भी लिखी जाने लगी। ६० के दशक में अनेक सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन हुए जिसके प्रभाव व्यंग्य रचनाओं पर भी देखने को मिलता है। व्यंग्य साहित्य की बहुमूल्य धरोहर 'राग-दरबारी' (१९६८) की रचना इसी दशक में हुई। 'भूत के पाँव पीछे' एवं 'जैसे उनके दिन फिरे' जैसी रचनाओं के साथ परसाई जी ने इस दशक में व्यंग्य लेखन शुरू किया और इस पूरे दशक में छाए रहे। नई शैली और भाषाई मुहावरों के साथ हास्य की अनिवार्यता का समर्थन करते हुए रवीन्द्रनाथ त्यागी जी ने 'खुली धूप में नाव पर' जैसी रचनाओं से व्यंग्य साहित्य के क्षेत्र में पदार्पण किया। व्यंग्य साहित्य में नए शिल्प और भावों को साथ लेकर रवीन्द्रनाथ त्यागी

ने 'एक और लाल तिकोन' से गम्भीर व्यंग्य परम्परा की शुरुआत की। इस युग में ऐसे व्यंग्य जिनमें प्रहारात्मकता की कमी थी उनकी मात्रा काम होने लगी और ऐसे व्यंग्यों की मात्रा बढ़ने लगी जिनमें प्रहारात्मकता अधिक थी। ७० के दशक में प्रमुख व्यंग्यकार (हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल, रवीन्द्रनाथ त्यागी) छाए रहे। इस अवधि में व्यंग्य लेखन में परिमाण और गुणवत्ता की दृष्टि से प्रमुख रूप से उल्लेखनीय रहे हैं। इन व्यंग्यकारों के अतिरिक्त के० पी० सक्सेना नें उर्दू मिश्रित भाषा एवं शैली के साथ व्यंग्य लेखन प्रारम्भ किया। लतीफ़ घोंघी नें 'उड़ते उल्लू के पंख', 'मृतक से क्षमायाचना सहित' जैसी रचनाओं में सरल सहज भाषा एवं चुटीली शैली का प्रयोग करते हुए आलपीन की चुभन का एहसास पाठकों को कराया।

विश्व में १९९० के बाद अनेकों परिवर्तन देखने को मिलते हैं। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अगर बात करें तो द्वितीय विश्व युद्ध के बाद से प्रारम्भ शीत युद्ध का समाप्त होना, बर्लिन की दीवार का गिराया जाना, पूर्व सोवियत संघ का विघटन एवं खुले बाजा की नीति को प्रोत्साहन मिलना आदि। इन सभी प्रभावों से भारत भी प्रभावित हुआ। इन सभी प्रभावों के अतिरिक्त भारत में १९९० के दशक में राजनीतिक अस्थिरता विद्यमान रही। चुनावों में कांग्रेस का एकाधिकार समाप्त होने से अनेक क्षेत्रीय पार्टियाँ उभर कर आयीं। यही वजह है कि १९९० के दशक में देश में अत्यधिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए उदारीकरण, मंडल कमीशन, राजनीतिक अस्थिरता (अल्पमत की सरकार), कारगिल युद्ध जैसी

घटनाएँ। वहीं २१वीं सदी के प्रारम्भिक दशक में गोधरा कांड एवं नागरिकों को शिक्षा का अधिकार और सूचना का अधिकार दिया जाना अपने आप में एक प्रमुख घटना थी। ९० का दशक राजनीतिक रूप से उथल-पुथल भरा रहा। इन दस वर्षों में देश नें कुल सात प्रधानमंत्री देखे। वी० पी० सिंह ने जब गठबंधन की सरकार के प्रधानमंत्री के रूप में पद ग्रहण किया तो अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए इन्होनें मंडल कमीशन की नियुक्ति की। मंडल कमीशन एवं आरक्षण के विरोध में देशभर में छात्रों के आत्मदाह की घटनाएँ भी सामने आयी। २१वीं सदी के आरम्भ में लोगों की बदलती आवश्यकताओं एवं महत्वाकांक्षाओं नें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं प्रशासनिक स्तरों पर अनेक बदलाव हुए। महत्वाकांक्षाओं एवं बदलावों की इसी कड़ी में भा० ज० पा० ने लोगों को विकास एवं अच्छे दिनों का स्वप्न दिखाकर २०१४ के चुनावों में प्रचंड बहुमत हासिल किया। २०१५ में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने डिजिटल इंडिया की शुरुआत की। पूर्व की (९० के दशक की) संचार क्रांति ने जहां पारिवारिक स्तर पर देश-विदेश को जोड़ने का प्रयास किया था वहीं इस संचार क्रांति नें व्यक्तिगत स्तर पर देश-विदेश को एक करने का प्रयास किया। पहले जहाँ एक परिवार में एक टी० वी०, एक फ़ोन एवं एक ही संचार के उपकरण होते थे वहीं अब धीरे-धीरे हर व्यक्ति के पास अपने स्वयं के संचार के उपकरण मौजूद हैं। वर्ष २०१६ में रिलायंस जियो ने निःशुल्क ४जी सेवाएँ प्रदान करके भारत के संचार सेवाओं में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया।

इंटरनेट सेवाएँ जो अब तक महज़ अमीरों की पहुँच तक सीमित थी, अमीरों के दरवाज़ों की सीमा लांघती हुई सुदूर ग्रामीण इलाक़ों के छप्परों तक जा पहुँची। इसका परिणाम यह हुआ कि परिवर्तन की जो प्रक्रिया अभी शनैः शनैः आगे बढ़ रही थी वह अचानक से काफ़ी तेज हो गयी।

संचार क्रांति का परिणाम यह हुआ कि प्रमुख राजनीतिक दलों ने इंटरनेट एवं सोशल नेटवर्किंग साइट को अपने प्रचार का माध्यम बना लिया। पहले उन्हें प्रचार करने के लिए दूर-दूर तक यात्रा करनीं होती थी वही अब वो अपने संदेश दिल्ली में बैठकर भारत के किसी भी सुदूरवर्ती इलाक़ों तक पहुँचा सकते थे। भा० ज० पा० नें इस माध्यम का बढ़-चढ़कर प्रयोग किया। अपनी नीतियों, कार्यक्रमों एवं लोगों से सम्पर्क स्थापित करने के माध्यम के रूप में भा० ज० पा० नें इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट का बहुधा उपयोग किया। इंटरनेट और सोशल नेटवर्किंग साइट के प्रयोग में हाँलाकि अन्य दल भी पीछे नहीं रहे। २०१५ के बाद के वर्षों में भारत ने न सिर्फ़ राष्ट्रीय स्तर पर वरन् अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी अपनी छवि बदलने का प्रयास किया। प्रधानमंत्री जी ने इसके लिए अनेक देशों की यात्राएँ कीं। भारत जो अब तक 'सॉफ़्ट पावर' के रूप में परिभाषित किया जाता था अब वह अपनी 'सॉफ़्टनेस' से आगे बढ़ रहा है। कश्मीर में हो रहे आतंकवादी हमलों का जवाब देने के लिए सर्जिकल स्ट्राइक हो या फिर म्यांमार की सीमा में घुसकर आतताइयों को मारना आदि इस बात के सूचक हैं। २०१९ के बाद भा० ज० पा० अपने पुराने एजेंडे 'कश्मीर को भारत का अभिन्न

अंग बनाना' पर खरा उतरने के लिए कश्मीर के विशेष दर्जे को खतम कर दिया। लम्बे समय से उत्तर-पूर्वी क्षेत्र में जो अशांति थी उसको दूर करने के लिए विभिन्न हितधारकों के मध्य समझौता कराने का प्रयास गृहमंत्री के द्वारा किया गया ताकि पूर्वोत्तर राज्यों में शांति स्थापित किया जा सके और उनका विकास भी सुनिश्चित हो सके। इसका परिणाम यह हुआ कि २०१९ के चुनावों में पुनः भारतीय जनता पार्टी ने नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में प्रचंड बहुमत की सरकार बनायी।

इस युग के प्रारम्भ में मिली-जुली सरकारों नें विपक्षी दलों का (मुख्यतः कांग्रेस) का विरोध तो सहन कर लिया किंतु वे अपनी ही सरकार में शामिल दलों की खिंचातानी को सम्भालने में असमर्थ रहे। यही कारण रहा कि कोई भी सरकार लम्बे समय तक कार्य नहीं कर पाई। इसी समय लालकृष्ण आडवाणी के नेतृत्व में बाबरी मस्जिद को मुद्दा बनाते हुए देशव्यापी आंदोलन चलाया गया। अंततः कारसेवकों ने बाबरी मस्जिद को ढहा दिया। नरसिम्हा राव के प्रधानमंत्री पद पर रहते हुए उन पर हर्षद मेहता द्वारा एक करोड़ रूपये रिश्वत लेने का आरोप लगाया गया एवं एक भ्रष्ट न्यायाधीश के महाभियोग के सवाल पर पूरे देश में इनकी किरकिरी हुई। शिराकांड, लक्खूभाई कांड जैसे घोटालों नें उनकी बची-खुची छवि को और भी धूमिल किया। इस सरकार को गिरते हुए अटल बिहारी वाजपेयी जी ने अलग-अलग दलों से समर्थन लेकर १३ दिनों की सरकार बनायी। कुछ वर्षों में वाजपेयी जी नें पुनः सरकार बनाई। इन्होंने परमाणु परीक्षण

और भारत-पाकिस्तान बस सेवा की शुरुआत करके एक लोकप्रिय नेता की छवि बनाने का प्रयास किया। इसी दौरान कारगिल का युद्ध हुआ जिसमें भारत विजय ने उनकी छवि को और भी मज़बूत किया, किंतु तहलका कांड में भाजपा के कई बड़े नेताओं के नाम उजागर होने के बाद भाजपा की छवि धूमिल हुई। तत्पश्चात् २००४ के चुनावों में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू० पी० ए०) को बहुमत प्राप्त हुआ, जिसकी कमान मनमोहन सिंह के हाथों में आई। मनमोहन सिंह के कार्यकाल में सांसदों पर संसद में धन लेकर प्रश्न पूछने और अनेक भ्रष्टाचारों में लिप्त होने के आरोप लगे। इसी दौरान बहुचर्चित राष्ट्रमंडल खेलों में हुए भ्रष्टाचारों का पर्दाफ़ाश हुआ। जातिवाद, परिवारवाद, अवसरवादिता, भ्रष्टाचार, कालाधन, महँगाई एवं औरतों की सुरक्षा जैसे मुद्दों पर विपक्षी दल मुख्यतः भा० ज० पा० ने सरकार को खूब घेरा और अंततः २०१४ के चुनावों में संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (यू० पी० ए०) की हार हुई और राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (एन० डी० ए०) नें नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में पूर्ण बहुमत की सरकार बनायी।

सामाजिक परिस्थितियों की अगर बात करें तो इस काल-खंड में सामाजिक रूप से अनेक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। परम्परागत वर्ण-व्यवस्था चरमरायी किंतु उसका स्थान जातिवाद ने ले लिया। पारिवारिक दृष्टि से अगर देखें तो ९० के दशक तक आते-आते लोगों में व्यक्तिवादी सोच में वृद्धि होने लगी जिसनें भारत के पारम्परिक पारिवारिक मूल्यों को चुनौती दी। शहरों में यह प्रवृत्ति ज़्यादा ही देखने को मिली। हाँलाकि

सुदूरवर्ती ग्रामीण इलाक़े इस विकास से अभी भी अछूते थे। मंडल कमीशन ने बढ़ते हुए जातिवाद में आग में घी की तरह कार्य किया। समाज धीरे-धीरे पारम्परिक जातिवादी व्यवस्था से आगे बढ़कर आरक्षण व्यवस्था के आधार पर बँटने लगा। बाबरी मस्जिद, गोधरा कांड जैसी घटनाओं ने साम्प्रदायिकता को और बढ़ावा दिया। गोधरा कांड की घटना ने पूरे देश को झकझोर कर रख दिया। हाल ही में हुए संचार क्रांति की वजह् से इस वीभत्सता को पूरे देश ने देखा। संचार क्रांति की वजह् से दहेज हत्याओं, ऑनर किलिंग, बाल मज़दूरी और बाल विवाह् आदि कुरीतियों को मीडिया ने उजागर किया जिसे पूरे देश नें देखा। अंततः दबाव में आकर तत्कालीन सरकार ने इन पर रोक लगाने का प्रयास किया। सामान्य तौर पर देखा जाए तो इस समय समाज में अनेक विसंगतियाँ व्याप्त थीं और समाज एक संक्रमण-क़ालीन अवस्था में था।

आर्थिक परिस्थितियों की अगर बात करें तो आज़ादी के बाद से ही देश आर्थिक संसाधनों की कमी से जूझ रहा था। भ्रष्टाचार, लूट-खसोट, विदेशी-क़र्ज़ एवं राजनेताओं की लालच ने इस स्थिति को बदतर बना दिया। कारगिल के युद्ध ने पहले से ही संकटग्रस्त आर्थिक अवस्था को और ख़राब कर दिया। भारत एक बड़े बाज़ार के रूप में धीरे-धीरे उभर रहा था किंतु बाजारीकरण की इस प्रक्रिया में आम आदमी अधिकतर पिसता हुआ दिख रहा था। सस्ते ऋणों का लालच देकर भौतिक सुख-सुविधाओं की आवश्यकता को पूर्ण करने के लिए आम इंसान को प्रेरित किया गया। इसका

परिणाम यह हुआ कि अमीर और गरीब के बीच की खाई बढ़ती चली गयी। पहले से ही अंधविश्वास में जकड़े भारतीय समाज में राजनेताओं नें अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की वजह से धार्मिक कट्टरता को बढ़ाने का प्रयास किया। बाबरी मस्जिद और गोधरा कांड जैसी घटनाओं की वजह से दोनों पक्षों के कट्टरपंथियों ने अपने स्वार्थों की रोटी को सेंकने का प्रयास किया।

सन् २००० के बाद के वर्षों में भारत तेज़ी से आगे बढ़ती हुई अर्थव्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जाने लगा। भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास की दर विकसित देशों के विकास की दर से कहीं आगे रही, हाँलाकि सकल विकास उतना नहीं हुआ। नोटबंदी के दौरान जहाँ अर्थव्यवस्था में गिरावट देखने को मिलती है वहीं लोगों को अनेक समस्याओं का सामना करना पड़ा। अचानक हुई नोटबंदी नें एक आम परिवार की आर्थिक व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया। उत्तर-आधुनिकतावाद का एक प्रमुख हथियार प्रचार-माध्यम भी है, जिसका उपयोग करते हुए सरकार ने भरसक प्रयास किया कि नोट-बंदी के महज़ सकारात्मक प्रभाव ही लोगों को दिखाए जाएँ। लेकिन जब हर व्यक्ति को समस्या हो तो सरकार उसे कहाँ तक दबाएगी। कोविड-१९ ने सभी देशों की अर्थव्यवस्था को झकझोर कर रख दिया। भारत भी इससे अछूता नहीं रहा। जिन मुद्दों (बेरोज़गारी, महँगाई, विकास, आर्थिक-पिछड़ापन, ग़रीबी) को उठाकर भा० ज० पा० सरकार में आई थी वही मुद्दे विफल होते दिखाई दिए। पुनः २०२२ में यूक्रेन पर हुए रूसी हमले से भी पूरा विश्व

प्रभावित हुआ और भारत पर भी इसका प्रभाव देखने को मिला। महँगाई में पुनः इज़ाफ़ा हुआ। दैनिक आवश्यकता की वस्तुओं के दाम बहुत तेज़ी से बढ़े।

इस तरह अगर देखा जाए तो देश में संचार क्रांति के बाद धार्मिक रूप से कुछ सुधार देखने को मिले साथ ही कुछ विषमताएँ भी बढ़ती गयी, उदाहरण के लिए जहाँ एक तरफ़ लोगों में शिक्षा का प्रसार हुए और अनेक धार्मिक कुरीतियों से मुक्ति मिली वहीं विभिन्न धर्मों के मध्य कटुता को बढ़ावा देने के लिए आधुनिक संचार माध्यमों का प्रयोग किया गया। देश के विभिन्न स्थानों पर हुए दंगों को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। इसी दौरान सर्वोच्च न्यायालय ने अयोध्या स्थित राम मंदिर के विषय में फ़ैसला सुनाया जिससे हिंदू-मुस्लिम समुदाय के बीच लम्बे समय से चल रहे विवाद का निपटारा हो गया। हाँलाकि वोट-बैंक की राजनीति के चलते इसी तरह के अन्य मुद्दे भी उछाले गए, उदाहरण के लिए ज्ञानव्यापी विवाद व हिजाब विवाद आदि। सोशल नेटवर्किंग साइट के माध्यम से समाज बहुत तेज़ी से दो भागों में विभाजित होता जा रहा है, एक विरोध वाले और एक समर्थन वाले। २०१५ के बाद से हर व्यक्ति के हाथ में इंटरनेट पहुँच गया, इंटरनेट कि इस पहुँच ने जहाँ एक तरफ़ देश-विदेश को क़रीब लाया वहीं भारतीय मूल्यों को भी क्षति पहुँचाई। आधुनिकता के नाम पर पाश्चात्य संस्कृति का प्रभाव बढ़ा एवं भारतीय पारंपरिक मूल्यों का ह्रास हुआ। समाज, पारिवारिक बंधन से मुक्त होकर व्यक्तिवाद की तरफ आगे बढ़ने

लगा। विभिन्न सोशल नेटवर्किंग साइट ने एक तरफ़ जहाँ लोगों को अपनी समस्याएँ साझा करने का मंच प्रदान किया वही दूसरी तरफ़ राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक आतताइयों ने इसे समाज में कटुता/वैमनस्यता बढ़ाने के माध्यम के रूप में प्रयोग किया। इस दौरान सरकारी स्तर पर अनेक कुरीतियों को भी दूर करने का प्रयास किया गया, उदाहरण के लिए कार्यस्थल पर महिलाओं की सुरक्षा को बढ़ाने का प्रयास किया गया, तीन तलाक़ जैसी कुरीतियों को खत्म किया गया एवं स्वास्थ्य सेवाओं पर विशेष ध्यान दिया गया। कोविड -१९ के प्रकोप ने लोगों को यह एहसास दिलाया कि अपने पैत्रिक आवास से व्यक्ति को हमेशा जुड़े रहना चाहिए।

भारतेंदु युग से पूर्व प्रारम्भ व्यंग्य परम्परा जो आज़ादी के पूर्व तक शैशव काल में थी, वह आधुनिक काल में आकर किताबों के माध्यम से पुस्तकालयों तक पहुँच बनाने में सफल रही। आधुनिक युग में समाज में सम्पन्नता बढ़ी और व्यंग्य का प्रवेश साहित्य की अन्य विधाओं के साथ घरों तक हुआ, साथ ही इस युग में डिजिटल माध्यमों के द्वारा व्यंग्य की पहुँच व्यक्ति के हाथों तक हुई। व्यंग्य लेखन पारम्परिक माध्यमों (समाचार पत्र, पत्र-पत्रिकाओं, पुस्तकों) से आगे बढ़कर डिजिटल माध्यमों के रूप में सामने आया। जैसा कि हम पहले ही देख चुके हैं इस युग में राजनीतिक उथल-पुथल बहुत अधिक हुआ। यही वजह रही कि इस युग में राजनीतिक व्यंग्यों की अधिकता देखने को मिलती है। राजनेताओं की अवसरवादिता, परिवारवाद एवं छिछोरेपन जैसी प्रवृत्तियाँ देखने को मिलने लगी जिसके

परिणामस्वरूप राजनीतिक भ्रष्टाचार तेज़ी से बढ़ रहा था। इन सभी विसंगतियों पर व्यंग्य लेखन इस दशक में देखने को मिलता है। 'विकलांग श्रद्धा का दौर', 'पाखंड का अध्यात्म', 'दो नाम वाले लोग', 'काग भगोड़ा', 'तुलसीदास चंदन घिसैं' जैसी रचनाओं के माध्यम से परसाई जी ने इन विसंगतियों पर प्रहार किया। साथ ही शरद जोशी एवं रवीन्द्रनाथ त्यागी जी ने भी इन विसंगतियों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया। २१वीं सदी के प्रारम्भ में देश में सिर्फ़ सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक ही नहीं वरन् धार्मिक, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक आदि सभी क्षेत्रों में विसंगतियाँ अपने चरम पर थी। इस परिवर्तन नें नए व्यंग्य लेखकों को एक पहचान दी एवं पुराने व्यंग्यकारों को और प्रचलित करने का कार्य किया। साथ ही व्यंग्य की पहुँच पाठकों तक सुगम बनाया। व्यंग्य जो अब तक सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं प्रशासनिक मुद्दों पर अधिकतर केंद्रित था अब वह एक आम इंसान के दैनिक जीवन से जुड़ी घटनाओं को व्यंग्य के विषय के रूप में शामिल करने लगा। किशोरावस्था एवं प्यार जैसे विषयों पर भी व्यंग्य लेखन किया जाने लगा, छात्रों की स्थिति एवं राजनीति पर भी व्यंग्य किया जाने लगा।

इस युग में व्यंग्य समाचार पत्र-पत्रिकाओं से लेकर अनेक प्रकाशक संस्थानों तक दिखायी देने लगे। व्यंग्य को अब रचनाधर्म के रूप में प्रतिष्ठित किया जाने लगा। हरिशंकर परसाई, शरद जोशी, रवींद्रनाथ त्यागी, श्रीलाल शुक्ल, नरेंद्र कोहली, शंकर पुणतांबेकर आदि नामी व्यंग्यकारों नें

इस युग में व्यंग्य रचना की। हिंदी व्यंग्य आलोचना के क्षेत्र में भी उन्नति देखने को मिली। डॉ० बालेंदु शेखर तिवारी, डॉ० श्यामसुंदर घोष, डॉ० मलय, डॉ० तेजपाल चौधरी, डॉ० भगवानदास कहार, डॉ० सुरेश माहेश्वरी, डॉ० नंदलाल कल्ला, डॉ० हरिशंकर दुबे, राजेश चौधरी, बाबूराव देसाई, सुभाष चंदर जैसे प्रमुख व्यंग्य विचारकों नें व्यंग्यालोचना को प्रतिष्ठित किया।

इस युग में व्यंग्य की पारम्परिक विधाओं के अतिरिक्त व्यंग्य की नयी विधाएँ भी प्रकाश में आई। उदाहरण के लिए व्यंग्य पत्रकारिता, व्यंग्य चर्चा, व्यंग्य सम्पादन, व्यंग्यालोचना आदि। व्यंग्य के अगर रूपों की बात करें तो व्यंग्य निबंध - राजनीतिक व्यंग्य निबंध, सामाजिक व्यंग्य निबंध, आर्थिक व्यंग्य निबंध, सांस्कृतिक व्यंग्य निबंध, शैक्षणिक व्यंग्य निबंध, धार्मिक व्यंग्य निबंध, साहित्यिक व्यंग्य निबंध, प्रशासनिक व्यंग्य निबंध; व्यंग्य कथा- राजनीतिक व्यंग्य कथा, सामाजिक व्यंग्य कथा, आर्थिक व्यंग्य कथा, सांस्कृतिक व्यंग्य कथा, व्यंग्य उपन्यास, लघु व्यंग्य आदि रूपों में व्यंग्य की प्रस्तुति हुई।

भाषाई दृष्टि से देखें तो स्थापित व्यंग्यकारों नें विषय-चयन, भाषाई प्रौढ़ता एवं शैलियों पर विशेष ध्यान दिया, किंतु नवोदित व्यंग्यकारों के व्यंग्यों में हास्य की प्रधानता दिखाई देती है। यह युग व्यंग्य लेखन व पाठन के लिए अनेक मंच प्रदान करता है। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि अगर व्यंग्यकार सावधानी पूर्वक व्यंग्य रचना करें तो इस युग में व्यंग्य

एक नए प्रतिमान स्थापित करेगा। इस युग के प्रमुख व्यंग्यकार एवं उनकी व्यंग्य रचनाओं की अगर बात करें तो सुरेशकांत की रचना मुल्ला तीन प्याज़ा, कुछ अलग, लेखक की दाढ़ी में तिनका, जॉब बची सो एवं बॉस, तुस्सी ग्रेट हो; एम० एम० चंद की रचना यह गाँव बिकाऊँ है; वेद माथुर की रचना बैंक ऑफ पालमपुर; सुभाष चंदर की रचना अक्कड़-बक्कड़; अर्चना चतुर्वेदी की रचना 'लव की हप्पी एंडिंग'; कृष्ण चंदर कृत 'एक गधे की आत्मकथा'; मनीष शर्मा कृत 'गंदगी के महारथी'; मुकेश नेम कृत 'साहब नामा'; दुर्गेश पांडेय कृत 'कचहरी की चकल्लस'; इब्राहिम जलीस कृत 'नेकी कर थाने में जा' एवं राकेश धर द्विवेदी की रचना 'मेरा पहला प्यार' आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

आधुनिक युग के प्रमुख व्यंग्यकारों एवं उनकी प्रमुख रचनाओं की अगर बात करें तो निम्न रचनाकार और उनकी रचनाओं का उल्लेख किया जा सकता है। गोपाल प्रसाद व्यास कृत 'नारद जी खबर लाए हैं'; डॉ० संसार चंद्र कृत 'लाख रूपये की बात' एवं 'विदूषक की याद में'; कृष्ण चराटे कृत 'प्रतिनिधि व्यंग्य और हास्य' एवं 'हाथ दो और मुड़ जाओ'; केशवचंद्र वर्मा कृत 'मोहब्बत दाढ़ी और मूँछ और मनोविज्ञान' एवं 'काठ का उल्लू और कबूतर बेपानी के लोग'; रामनारायण उपाध्याय कृत 'भेड़ और भेड़िए' एवं 'बोलता हिंदुस्तान'; हरिशंकर परसाई कृत 'आवारा भीड़ के ख़तरे', 'प्रेमचंद के फटे जूते' और 'जाने पहचाने लोग'; शरद जोशी कृत 'यत्र तत्र सर्वत्र'; श्रीलाल शुक्ल कृत 'अगली शताब्दी का शहर', 'यहाँ से वहाँ', 'कुछ

ज़मीन पर कुछ हवा में' एवं 'विश्रामपुर का संत'; रवीन्द्रनाथ त्यागी कृत 'बादलों का गाँव', 'पूरब खिले पलाश', 'रस विलास' एवं नरेंद्र कोहली कृत 'अस्पताल' आदि रहे हैं। इसके अतिरिक्त अन्य प्रमुख उल्लेखनीय व्यंग्यकार हैं- शंकर पुणतांबेकर, सुदर्शन मजीठिया, लतीफ़ घोंघी, के० पी० सक्सेना, डॉ बरसाने लाल चतुर्वेदी एवं मनोहरश्याम जोशी, शेरजंग गर्ग, डॉ० श्यामसुंदर घोष, गोपाल चतुर्वेदी, डॉ० बालेंदु शेखर तिवारी, ज्ञान चतुर्वेदी, प्रेम जनमेजय, सूर्य बाला, विनोद शंकर शुक्ल, विष्णु नागर, अलका पाठक, ओम प्रकाश कश्यप, ईश्वर शर्मा, सुभाष चंदर, सुरेशकांत आदि प्रमुख हैं।

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक एवं प्रशासनिक स्तरों पर न सिर्फ़ क्षेत्रीय स्तर पर परिवर्तन देखने को मिले वरन् राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भी यह परिवर्तन दृष्टिगोचर होते हैं। इन सभी परिवर्तनों की झलक व्यंग्य के रूप में देखनें को मिलती है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समकालीन युग (१९९०-२०००) में समाज उतार चढ़ाव के दौर से गुज़र रहा था। इस युग का साहित्य विभिन्न पहलुओं को प्रतिबिम्बित करता है। समकालीन व्यंग्य साहित्यकारों में गोपाल चतुर्वेदी, ज्ञान चतुर्वेदी, नरेंद्र कोहली, रवीन्द्रनाथ त्यागी, शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ल एवं हरिशंकर परसाई है। इन्होनें व्यंग्य साहित्य को मात्र समृद्ध ही नहीं किया बल्कि साहित्य प्रेमियों को एक नई दृष्टि भी दी।

अध्याय- ३

समकालीन व्यंग्य साहित्य: अंतर्वस्तु

साहित्य समाज का दर्पण होता है। समाज में घटने वाली घटनाओं का प्रभाव किसी न किसी रूप में साहित्य में ज़रूर देखने को मिलता है। ऐसे में साहित्य समाज को सिर्फ़ आइना दिखाने का ही कार्य नहीं करता वरन् समाज को नयी दिशा देने का भी कार्य करता है। क्यूँकि साहित्य, समाज के गम्भीर मुद्दों से जुड़ा होता है, इसलिए इन मुद्दों को पाठक के समक्ष सामान्य रूप में रखने पर पाठक को अरुचि हो सकती है। इसी अरुचि को दूर करने का बेड़ा साहित्य की 'व्यंग्य विधा' ने उठाया। 'व्यंग्य विधा' समाज के गम्भीर से गम्भीर मुद्दों को भी पाठकों के समक्ष इतनी सरलता से प्रस्तुत करती है कि पाठक के हृदय में अरुचि का नामो-निशान देखने को नहीं मिलता। उल्टा पाठक रचना से रुचिपूर्वक जुड़ा रहता है। साहित्य के किसी भी विधा को समझने के लिए उस विधा की रचनाओं को केंद्र में रखकर समझना बहुत आवश्यक होता है। रचनाओं की प्रवृत्ति से ही उस समाज की मनोदशा और परिस्थिति को समझा जा सकता है। यही बात व्यंग्य विधा पर भी लागू होती है। ऐसे में अभीष्ट वर्ष (सन् १९९० ई० - सन् २००० ई०) की रचनाओं को समझना आवश्यक हो जाता है। इन

रचनाओं को समझना इसलिए भी आवश्यक है कि इन रचनाओं से हमें उस दौर के सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक मुद्दों, उन मुद्दों का समाज पर प्रभाव, व्यंग्यकारों की प्रतिक्रिया एवं उस समय के व्यंग्यकारों के शिल्प की जानकारी प्राप्त होती है। अभीष्ट समय सीमा की रचनाओं की अंतर्वस्तु पर चर्चा से पूर्व इन रचनाओं के रचनाकारों के बारे में संक्षिप्त जानकारी आवश्यक है।

इस कड़ी में सर्वप्रथम नाम जो सामने आता है वह है- हरिशंकर परसाई का। हरिशंकर परसाई हिंदी साहित्य के अमूल्य निधियों में से एक थे। इनकी ख्याति लेखक और व्यंग्यकार के रूप में है। यूँ कहा जाए तो ये लेखक कम व्यंग्यकार अधिक थे, व्यंग्य साहित्य का यदि नाम लिया जाए तो इनका नाम सर्वप्रथम आता है, इन्होंने ही आधुनिक साहित्य में व्यंग्य-लेखन को प्रतिष्ठा और सम्मान दिलाया। इनका व्यंग्य लेखन हमारे समय के तकलीफ़ों को उजागर करने के साथ-साथ मानवीय सहानुभूति और संवेदना को भी संजोए रखा है। इनका वैचारिक चिंतन साहित्य प्रेमियों के लिए प्रखर और सामाजिक नेतृत्व का कार्य करता है तथा स्वयं की दुर्बलताओं को पहचानने एवं रेखांकित करने का उत्स है। इन्होंने अपने गम्भीर लेखन द्वारा व्यंग्य साहित्य को परम्परागत मनोरंजनपरक शैली की पद्धति से बाहर निकालकर सामाजिक चेतना एवं सांस्कृतिक संदर्भों को समाज में व्याप्त उठते प्रश्नों से जोड़ा है। लेखक अपने आस-पास जीवन को जीता और भोगता है उन्हीं संदर्भों का जीवन्त और प्रामाणिक पुस्तक 'ऐसा भी सोचा जाता

है' जिसमें इन्होंने अपने जीवन में व्याप्त सभी अनुभवों और मूल्यों को अंतर्निहित किया है। इस पुस्तक में इन्हीं के वाणी द्वारा अभिव्यक्त चेतना- " ये निबंध मैंने पिछले चार सालों में लिखे हैं। इनमें विषय की विविधता है। सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, धार्मिक विषयों पर मेरे अनुभव और चिंतन इन निबंधों में है। इससे अधिक कुछ नहीं कहना।" 'ऐसा भी सोंचा जाता है' व्यंग्य संग्रह में 29 अध्याय संकलित है।

इस दौर के अन्य व्यंग्यकार हैं गोपाल चतुर्वेदी। गोपाल चतुर्वेदी जी की बात करें तो चतुर्वेदी जी नें 'खम्भों के खेल', 'गंगा से गटर तक', 'दाँत में फँसी कुर्सी' एवं 'फाइल पढ़ि पढ़ि' आदि रचनाओं के आधार पर समकालीन व्यंग्य साहित्य (१९९०-२०००) में अपना योगदान दिया। 'खम्भों का खेल' व्यंग्य संग्रह गोपाल चतुर्वेदी जी नें १९९० में लिखा है। इस व्यंग्य संग्रह में ४ भाग हैं और कुल ३७ अध्याय हैं। प्रथम भाग का नाम 'खम्भों की ख्वाहिश', द्वितीय भाग का नाम 'खंभों के पेशे', तृतीय भाग का नाम 'खंभा, संस्कृति और समाज' एवं चतुर्थ भाग 'खंभा होने की नियति' है। इस व्यंग्य संग्रह में व्यक्ति के आम जीवन में होने वाली घटनाओं को केंद्र में रखते हुए व्यंग्य-रचना की गयी है। दाँत में फँसी कुर्सी गोपाल चतुर्वेदी द्वारा सन् १९९६ ई० में लिखित एक व्यंग्य रचना है। इस रचना में ३४ अध्याय हैं। हर अध्याय एक विसंगति पर चोट करते हुए लिखा गया है। गोपाल जी ने इस रचना में जीवन के विभिन्न पहलुओं- सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक, पारिवारिक, शैक्षणिक आदि पर प्रहार किया है।

कई जगह गोपाल जी नें मनोवैज्ञानिक विषयों को भी आधार बनाया है। सामाजिक व्यंग्यों अर्थात् ऐसे व्यंग्य जिनका आधार सामाजिक व्यवस्थाएँ हो, की अगर बात करें तो गोपाल जी नें इस रचना के लगभग सभी अध्यायों में सामाजिक विषमता को उजागर किया है चाहे उस अध्याय का मुख्य विषय कुछ भी हो। साथ ही प्रशासनिक विषमताओं को भी द्वितीयक विषय की तरह प्रयोग किया है, अर्थात् लगभग सभी अध्यायों में प्रशासनिक विषमताओं के ऊपर प्रहार अवश्य देखने को मिलता है। गोपाल चतुर्वेदी की रचना 'फाइल पढ़ि-पढ़ि' सन् १९९१ में प्रकाशित है जिसे चार भागों में विभाजित किया गया है। इसमें ४२ अध्याय हैं एवं इन अध्यायों में इन्होंने सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक, मनोवैज्ञानिक एवं आदर्शपरक व्यंग्य विषयों को अपने व्यंग्य का आधार बनाया है। यह चार भागों में विभक्त है। प्रथम भाग का नाम 'दफ़्तर में प्रवेश', द्वितीय भाग का नाम 'दफ़्तर और व्यक्ति', तृतीय भाग का नाम 'दफ़्तर और देश 'एवं चतुर्थ भाग का नाम 'विदाई के क्लेश 'है।

इसी संदर्भ में ज्ञान चतुर्वेदी जी का नाम लिया जा सकता है। ज्ञान चतुर्वेदी जी के योगदान की बात करें तो इस समय सीमा में ज्ञान चतुर्वेदी की रचना 'दंगे में मुर्गा '(१९९८) का उल्लेख किया जा सकता है। 'दंगे में मुर्गा '(१९९८) ज्ञान चतुर्वेदी द्वारा रचित एक व्यंग्य संकलन है। इस रचना में कुल २६ अध्यायों को संकलित किया गया है। अपनी इस रचना में ज्ञान चतुर्वेदी जी नें अपने व्यंग्यात्मक कौशल का प्रदर्शन विभिन्न मुद्दों

पर किया है। जिसमें सरकारी व्यवस्था, राजनीति, भ्रष्टाचार, कुरीतियाँ और ग्रामीण परिवेश जैसे मुद्दे शामिल हैं। इन सभी मुद्दों में सरकारी कार्यों एवं भ्रष्टाचार का मुद्दा प्रमुख रूप से इनके व्यंग्यों का विषय रहा है। यहाँ तक की ग्रामीण मुद्दों एवं सामान्य मुद्दों में भी बीच-बीच में सरकारी कार्यों, भ्रष्टाचार एवं राजनीति पर कटाक्ष देखने को मिलता है। ज्ञान चतुर्वेदी जी कटाक्ष करने में इतने निपुण हैं कि किसी विषय पर व्यंग्य करते हुए उसके साथ किसी अन्य विषय की कड़वी सच्चाई से रूबरू करा जाते हैं। उदाहरण के लिए अपनी इसी रचना के 'प्रेम प्रकटन निर्देशिका 'नामक अध्याय में जहां ज्ञान चतुर्वेदी जी प्रेम प्रकट करने के तरीक़े बता रहे थे वहीं प्रेम को परिभाषित करते हुए कहते हैं "प्रेम तो जाफ़ना शहर की तरह है, जहाँ कदम-कदम पर बारूदी सुरंगें फटने का डर रहता है।"[1] जिस समय ज्ञान चतुर्वेदी जी अपनी यह रचना लिख रहे उस समय जाफ़ना शहर की हालत बहुत ख़राब थी। यहाँ पर ज्ञान चतुर्वेदी जी नें तात्कालिक मुद्दों पट कटाक्ष करने की अपनी शैली का प्रदर्शन किया है। 'दंगे में मुर्गा 'नामक रचना पर और अधिक बात करने से पूर्व इस रचना में संकलित सभी अध्यायों के विषय को जानना आवश्यक प्रतीत होता है।

नरेंद्र कोहली जी इस कड़ी के अगले सूत्रधार हैं। 'गणतंत्र का गणित' नरेंद्र कोहली द्वारा १९९७ में लिखित एक व्यंग्य संग्रह है। इस संग्रह में 'राम भुलाया' नामक काल्पनिक पात्र एवं काल्पनिक कहानियों के माध्यम से

[1] ज्ञान चतुर्वेदी; प्रेम प्रकटन निर्देशिका; दंगे में मुर्ग़ा; किताब घर प्रकाशन; नई दिल्ली; १९९८; पृष्ट ७७

विभिन्न विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। 'किसे जगाऊँ' नरेंद्र कोहली द्वारा लिखित एक अन्य व्यंग्य रचना है। इस व्यंग्य संग्रह में मुख्यतः आध्यात्मिक व्यंग्य निबंध देखने को मिलता है। इसमें आध्यात्मिकता को आधार बनाते हुए विभिन्न सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विषमताओं पर कटाक्ष किया गया है। 'किसे जगाऊँ' व्यंग्य में नरेंद्र कोहली जी आत्मा के उस अंतःस्थल को जागृत करने का उद्घोष करते हैं जो समाज में व्याप्त विभिन्न विषमताओं से 'राम' मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान राम बनकर युद्ध करे और इन विषमताओं को दूर करें। इन विषमताओं को दूर करके ही समाज में शांति एवं समृद्धि की रचना की जा सकती है एवं देश का गौरव पुनः प्राप्त किया जा सकता है। सभी विषमताओं के दूर होने पर ही देश में राम राज्य की स्थापना हो सकती है।

सन् १९९० ई० से सन् २००० ई० के समयांतराल में सर्वाधिक व्यंग्य रचनाओं से हिंदी व्यंग्य साहित्य के अनमोल भंडार में वृद्धि करने का कार्य रवीन्द्रनाथ त्यागी जी ने किया। इस दौर में रवीन्द्रनाथ त्यागी जी ने जिन व्यंग्यों की रचना की उनके नाम हैं- 'इतिहास का शव', 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा', 'चम्पाकली', 'देश-विदेश की कथा', 'पूरब खिले पलाश', 'बादलों का गाँव', 'लाल पीले फूल', 'विषकन्या', एवं 'शुक्लपक्ष'। 'इतिहास का शव' रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा सन् १९९३ ई० में लिखित व्यंग्य संग्रह है। 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा सन् १९९१ ई० में लिखित व्यंग्य संग्रह है। 'चम्पाकली 'रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा

सन् १९९२ ई० में लिखित व्यंग्य संग्रह है। 'देश-विदेश की कथा' रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा सन् १९९४ ई० में लिखित एक व्यंग्य संग्रह है। 'पूरब खिले पलाश' रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा सन् १९९८ ई० में लिखित मुख्यतः एक साहित्यिक व्यंग्य संग्रह है। इस व्यंग्य संग्रह में हिंदी साहित्य एवं साहित्यकारों से जुड़ी व्यंग्य रचनाओं को सम्मिलित किया गया है। 'बादलों का गाँव' व्यंग्य को रवींद्रनाथ त्यागी जी नें अपने व्यक्तिगत जीवन की घटनाओं पर आधारित करते हुए लिखा है। अपने जीवन की विभिन्न घटनाओं को व्यंग्यात्मक अंदाज़ में प्रस्तुत करते हुए अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं पारिवारिक विसंगतियों पर भी प्रहार किया है। 'विषकन्या' अध्याय में रवीन्द्रनाथ त्यागी जी ने अस्पतालों, व्यक्ति के चरित्रों, विधानसभा सदस्यों, सांसदों एवं पत्रकारिता के क्षेत्र में व्याप्त तमाम विसंगतियों पर प्रहार किया है। 'शुक्लपक्ष' रवींद्रनाथ त्यागी द्वारा सन् १९९४ में लिखित एक व्यंग्य संग्रह है। इस संग्रह में २६ अध्यायों को शामिल किया गया है। 'शुक्लपक्ष' का मुख्य विषय साहित्यिक में उपस्थित विभिन्न प्रकार की विसंगतियों का ज़िक्र किया गया है। इस रचना में साहित्य जगत में व्याप्त तमाम विसंगतियों को आधार बनाकर उन पर प्रहार किया गया है।

समाज में, अपने आस-पास घटने वाली छोटी से छोटी एवं बड़ी से बड़ी घटनाओं को अपने व्यंग्य का केंद्रीय विषय बनाने का कार्य एक व्यंग्यकार को करना होता है। इस कार्य को भली भाँति करने में शरद जोशी

और श्री लाल शुक्ल जी का भी नाम लिया जाता है। शरद जोशी जी नें 'यत्र तत्र सर्वत्र' व्यंग्य संग्रह में कुल १०१ व्यंग्य अध्यायों को सम्मिलित किया है। इस व्यंग्य संकलन में शरद जोशी जी नें विविध आयामों को अपने व्यंग्यात्मक लेख का विषय बनाया है। इसी काल-खंड में श्रीलाल शुक्ल जी के भी व्यंग्य संग्रह प्रकाशित हुए। प्रथम है 'कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में', द्वितीय है 'आओ बैठ लें कुछ देर' तथा तृतीय है 'अगली शताब्दी का शहर'। श्रीलाल शुक्ल की रचना 'कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में' सन् १९९० में लिखित एक व्यंग्य संग्रह है। यह व्यंग्य संग्रह दो भागों में विभक्त है, जिसमें प्रथम भाग का नाम 'कुछ ज़मीन पर' एवं द्वितीय भाग का नाम 'कुछ हवा में' है। प्रथम भाग में कुल २७ अध्याय एवं द्वितीय भाग में कुल २० अध्याय सम्मिलित हैं।हर अध्याय अलग-अलग मुद्दों पर प्रहार करते हुए लिखा गया है 'आओ बैठ लें कुछ देर' एवं 'अगली शताब्दी का शहर' व्यंग्य-संग्रह में श्री लाल शुक्ल जी नें राजनीति, समाज, भाषा, साहित्य, रंगमंच और पत्रकारिता जैसे विषयों को अपने व्यंग्य निबंध संग्रह का आधार बनाया है। श्री लाल शुक्ल जी नें समाचार पात्रों में प्रकाशित समाचारों को ही मुख्यतः अपने व्यंग का आधार बनाया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि इस युग में व्यंग्य साहित्य के लगभग सभी व्यंग्यकारों की कोई न कोई रचना अवश्य शामिल है। उपर्युक्त संक्षिप्त परिचय के बाद अब आवश्यकता है कि इस युग के व्यंग्यो की अंतर्वस्तु पर एक दृष्टि डाली जाए। सुविधानुसार इस युग के व्यंग्यों की अंतर्वस्तु को

राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं साम्प्रदायिक, सांस्कृतिक, साहित्यिक, प्रशासनिक एवं अन्य भागों में विभक्त करते हुए समझा जा सकता है।

राजनैतिक व्यंग्य-

यह समय राजनीतिक अस्थिरता का युग था। यही वजह थी कि इस युग में राजनीतिक व्यंग्यों की प्रमुखता देखने को मिलती है। इस युग के सभी व्यंग्यकारों द्वारा राजनीति को केंद्र में रखते हुए व्यंग्य रचना की गयी है। उदाहरणस्वरूप-राजनैतिक अंतर्वस्तु के अंतर्गत अग्र लिखित अध्यायों को लिया जा सकता है। 'विदेशी धन के साथ और क्या आयेगा' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में भारत के द्वारा विश्व बैंक और अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष द्वारा विदेशी कर्ज लेने के परिणाम स्वरूप भारतीयों की मूल्य-पद्धति का किस तरह हनन हो रहा है इस पर विचार व्यक्त किया गया है। अध्याय के मूल में चिंतन है कि किस तरह विदेशी कर्ज भारतीयों की जीवन-पद्धति के साथ-साथ विचार-पद्धति को भी परिवर्तित कर रही है। इन्होंने राष्ट्रीय नेतृत्व कर रहे नेता वर्ग पर टिप्पणी की है कि यदि राष्ट्र नेतृत्वकर्ता का व्यक्तित्व गरिमा, दृढ़ता और आत्मविश्वास से पूर्ण हो तो दुनिया का कोई भी विकसित देश कमजोर देश पर दबाव नहीं बना सकता। परसाई जी नें इस अध्याय में चिंता व्यक्त की है कि क्या विदेशी कर्ज लेने के साथ भारतीयों को सिर झुकाकर और उनकी शर्तों को मानते हुए मुफ़्त में जबान बंद रखने की प्रवृत्ति भी साथ में लेना पड़ता है, क्या सहयोग और शर्त के नाम पर

अपनी विश्वबंधुत्व, उदारता, मानवीयता परदुखकातरता, सहिष्णुता, सबकी मंगलकामना, शालीनता, मन की उदात्तता जैसी अपनी संस्कृति और मूल्य-पद्धति का गला घोंटना होगा? पश्चिमी सभ्यता का रहन-सहन तथा उनकी सतही नक़ल करते हुए पश्चिमी पूंजीवाद तथा उपभोक्तावाद को बढ़ावा देने में इस तरह लिप्त हैं कि हम ज़रूरी और ग़ैर ज़रूरी वस्तुओं में अंतर ही नहीं कर पा रहे जबकि इस बात से बिलकुल अनजान व्यक्ति नहीं जानता कि "जो कुछ यहां आयेगा, वह फूहड़, हलका, कुरुचिपूर्ण होगा। पोशाक, व्यवहार, मनोरंजन, स्त्री-पुरुष सम्बंध, दृश्य माध्यम-सबमें पतनशीलता, फूहड़ता, निर्लज्जता और कुरुचि होगी।"[2] 'ज़रूरत है सामाजिक आन्दोलनों की' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में समाज-सुधार के लिए राजनैतिक आंदोलन के अतिरिक्त सामाजिक आंदोलन को भी अधिक महत्व दिया गया है तथा राजनीतिक महत्वकांक्षा रखने वाले व्यक्तियों पर भी कटाक्ष किया गया है। जिस तरह उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में राजा राम मोहन राय, ईश्वरचंद्र विद्यासागर, महाराष्ट्र के महात्मा ज्योतिबा फूले तथा पण्डिता रमाबाई रानाडे और केरल के नारायण गुरु नें समाज के कल्याणार्थ सती प्रथा का अंत, विधवा विवाह क़ानून, वर्ण व्यवस्था का विरोध एवं स्त्री शिक्षा का प्रसार तथा उनकी मुक्ति के लिए सक्रिय आंदोलन चलाया वैसे ही आज भी सामाजिक आन्दोलनों की ज़रूरत है, समाज व्यवस्था में सुधार की ज़िम्मेदारी सिर्फ़ क़ानून और पुलिस को

---

[2] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ २२

सौंपना कहाँ तक उचित है। परसाई जी की चिंता है कि आज़ादी के बाद सिर्फ़ राजनैतिक आंदोलन ही शेष हैं जिसमें पतनशीलता आ गयी है तथा अब राजनीति धंधे की राजनीति बन गयी है, जहाँ समाज-सुधार के बजाए वोट बैंक की राजनीति होती है। सामाजिक शक्तियाँ हमारे देश में बलवान नहीं हैं जबकि सामाजिक दबाव में इतनी शक्ति होती है कि वह अदृश्य होते हुए भी क़ानून से अधिक कारगर साबित होती है। "समाज में 'धन्य' और 'धिक्कार' की शक्तियाँ होती हैं। ये सामाजिक सदाचरण बनाए रखती हैं।,,,जो चालीस साल पहले धिक्कार पाते थे, वे धन्य पाने लगे हैं जिन्हें धन्य मिलता था, वे अपमानित, पीड़ित और अवहेलित हैं।"[3] 'प्रतिभा का सिंदूर खरोंचे' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में महिमा मण्डित व्यक्तियों की ख्याति को धूमिल करने वाले व्यक्तियों पर कटाक्ष करते हुए ऐसे व्यक्तियों की प्रशंसा भी की है जो बिना किसी जलन और भेदभाव के सच्चे मन से किसी की प्रतिभा को सराहा हो। हमारे इतिहास में गिने-चुने लोग ही ऐसे हैं जो किसी दूसरे दल के होते हुए भी किसी अन्य दल के व्यक्तियों और उनके किए गए कार्यों की सराहना भी की है तथा यह प्रवृत्ति सिर्फ़ राजनीति में ही नहीं बल्कि बड़े पैमाने पर साहित्यकारों में भी मौजूद है। उदाहरणस्वरूप शरदचन्द्र का सिंदूर पोंछने में रवीन्द्रनाथ ठाकुर नें भी कोई कसर नहीं छोड़ी। लोकसभा के अध्यक्ष रविराय जोकि एक लोहियावादी थे, श्रद्धांजलि देते हुए नेहरू जी की तारीफ़ की थी। हालाँकि वर्तमान में यह

[3] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ २६

विरले ही मिलता है। सरकारें बदलने के साथ ही उनके द्वारा प्रारम्भ किए गये कार्य किस तरह अप्रासंगिक हो जाते हैं तथा किस तरह नयी सरकार बनने के साथ ही निर्माण कार्य का शिलान्यास भी नए प्रधानमंत्री एवं मुख्यमंत्री द्वारा करा दिया जाता है। भारत देश में कुछ व्यक्तियों को ख्याति अपने कृत्यों द्वारा स्वयं मिल जाती है तथा कुछ व्यावहारिक रूप में कौवा होते हुए भी हंस की महिमा धारण कर लेते हैं। 'देश का नेता कैसा हो' (आओ बैठ ले कुछ देर) अध्याय में आधुनिक नेताओं का व्यंग्यात्मक ढंग से रेखांकन किया गया है। उक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि "नेता को उभरना हो तो उसके लिए आपका गला और हाथ पाँव स्वतंत्र हो, उसका विरोध करना चाहते हैं तो अपनी ज़बान परतंत्र हो।" इसी तरह 'हुक्का, हम और राजनीति' (खम्भों के खेल) नामक अध्याय में हुक्के को केंद्र में रखकर शहर में रहने वाले लोगों के बारे में कहा गया है कि वोट बैंक के लिए ये शहरी लोग किस तरह ग्रामीण परिवेश से जुड़ने और ग्रामीण दिखने के लिए तरह-तरह के प्रयत्न करते हैं। इसी तरह 'जनसेवक का कुटीर उद्योग '(खम्भों के खेल) अध्याय में पैसों के दम पर भीड़ इकट्ठा करने की राजनीति की प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। 'चुनाव वर्ष कार्यकर्ताओं की तलाश '(खम्भों के खेल) अध्याय में कार्यकर्ताओं की खोज, उनके चरित्र और एक सच्चे राजनीतिक कार्यकर्ता के चरित्र का व्यंग्यात्मक वर्णन मिलता है। 'पंचायत और प्रजातंत्र '(खम्भों के खेल) अध्याय में प्रजातंत्र में नेताओं के पाँच वर्षों में पाँच चरित्र का विवरण दिया गया है अर्थात् हर वर्ष नेताओं का चरित्र किस अवस्था में होता है

उसी का व्यंग्यात्मक विवरण दिया गया है। 'डेमोक्रेसी बनाम रैली-कैसी ' (खम्भों के खेल) अध्याय में रैलियों में भाड़े की भीड़ जुटाने के ऊपर व्यंग्य किया गया है।' चुनाव के बाद '(खम्भों के खेल) अध्याय में वोट देने की प्रवृत्ति जैसे जातिवाद, क्षेत्रवाद, धर्म आदि पर प्रहार किया गया है तथा साथ ही साथ चुनाव के बाद जीते हुए राजनेताओं के मन की स्थिति का व्यंग्यात्मक वर्णन किया गया है। 'मच्छर और सुलतान-एक 'पातक 'कथा ' (खम्भों के खेल) में एक मच्छर के काटने पर प्रजातंत्र का सुलतान किस तरह व्यवहार करता है उस बात को आधार बनाकर व्यंग्य रचना की गयी है। 'मुद्दे, नारे और चुनाव (१९८९) '(खम्भों के खेल) अध्याय में १९८९ में होने वाले चुनावों और उस चुनाव में मुद्दों और नारों को किस तरह से पेश किया गया इस बात को आधार बनाकर व्यंग्य किया गया है। 'पान, पालिटिक्स और पटना '(खम्भों के खेल) अध्याय में चुनाव के रंग में डूबे पटना के पान की दुकानों पर हो रही राजनीति की बातों को आधार बनाकर इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'वित्त मंत्री से मुलाकात '(खम्भों के खेल) अध्याय में वित्तमंत्री से मुलाक़ात को केंद्र में रखकर तमाम राजनीतिक विकृतियों और प्रशासनिक विकृतियों पर प्रहार किया गया है। 'अपने-अपने नुक्कड़ नाटक '(खम्भों के खेल) अध्याय में नाटकों को केंद्र में रखते हुए अनेक राजनीतिक विसंगतियों जैसे दल-बदल, स्वार्थ-लोलुपता आदि पर प्रहार किया गया है। 'ढोल ही ढोल '(खम्भों के खेल) अध्याय में में ढोल एवं डमरू के माध्यम से तमाम राजनीतिक एवं प्रशासनिक विसंगतियों पर प्रहार

किया गया है। 'बारात बनाम राजनीति' (खम्भों के खेल) अध्याय में एक बारात की राजनीतिक पार्टी के सम्मेलन से तुलना करते हुए व्यंग्य रचना की गयी है। 'खंभा होने की नियति '(खम्भों के खेल) में एक खंभे के माध्यम से अनेक सामाजिक, राजनीतिक, प्रशासनिक विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। 'नेता के गुण' (दांत में फँसी कुर्सी) एक राजनीतिक व्यंग्य है, जिसमें नेताओं के समाज में व्यवहार पर व्यंग्य किया गया है। 'सियासत, सास और समाज की तीसरी ताक़त' एक राजनीतिक और पारिवारिक व्यंग्य है। 'दाँत में फँसी कुर्सी '(एक राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यंग्य है जिसमें दाँत में अनवरत चीजें फँसने को आधार बनाकर देश में व्याप्त राजनीतिक एवं प्रशासनिक विषमताओं पर प्रहार किया गया है। 'क़िस्सा गिरहकट का ' (दांत में फँसी कुर्सी) अध्याय में एक चोर के माध्यम से अनेक राजनीतिक, सामाजिक एवं प्रशासनिक विषमताओं पर प्रहार किया गया है।' आग, समाज और प्रजातंत्र '(दांत में फँसी कुर्सी) अध्याय में विपक्षी दलों द्वारा विरोध प्रदर्शन के लिए सार्वजनिक सम्पत्ति को जलाना, भाड़े की भीड़ को विरोध प्रदर्शन में शामिल करना आदि विषयों को आधार बनाकर इस कुकृत्य पर प्रहार किया गया है। 'चुनाव सुधार की दरकार '(दांत में फँसी कुर्सी) अध्याय में चुनाव आयोग एवं चुनाव के दौरान राजनीतिक पार्टियों द्वारा अपनाए जाने वाले विभिन्न हथकंडों के ऊपर प्रहार किया गया है। 'आज के नेता की आदर्श बनावट' (दांत में फँसी कुर्सी) एवं 'रैली की राजनीति' (दांत में फँसी कुर्सी) अध्यायों में राजनीतिक व्यंग्य को मुख्य

आधार बनाते हुए मंत्रियों के राजनीतिक जीवन एवं रैलियों में जाने वाले लोगों पर क्रमशः व्यंग्य किया गया है। 'गांधी बनने का संकल्प' (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में इन्होंने गांधीवादी आदर्शों के माध्यम से सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। 'दहेज की दरकार, बिल का सदाचार' (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में गोपाल जी मध्यम और निम्नवर्गीय समाज की तुलना करते हुए सामाजिक और राजनैतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं। 'सावधान ऑडिट चालू है' (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) में लेखक ऑडिट व्यवस्था को आधार मानते हुए राजनैतिक व्यवस्था पर व्यंग्य करते हैं।' झंडा, डंडा और प्रजातंत्र '(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) में गोपाल जी नें राष्ट्रीय प्रतीकों को माध्यम बनाकर राजनीतिक तथा सामाजिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया है। 'सरकार और समोसा '(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में समोसे को माध्यम बनाकर भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। 'प्रशासन के उसूल - अंग्रेज़ी पत्राचार का सारांश ' (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में गोपाल जी नें पत्र को माध्यम बनाकर भारतीय दलीय व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। 'कमेटी सरकार '(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर व्यंग्यात्मक टिप्पणी की है। 'प्रशासन का मूँछ-प्रिन्सिपल '(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में गोपाल जी नें शिक्षा को आधार बनाकर राजनीतिक व्यवस्था पर प्रहार किया है। 'किसान: एक परिचय' (दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में किसानों की स्थिति को व्यंग्य के माध्यम से इस तरह पेश किया गया है जो पाठकों

के हृदय को कचोट उठता है। इसमें किसानों की तुलना जानवरों से करते हुए किसानों की दयनीय स्थिति से पाठकों को परिचित करवाया है और इस वास्तविकता को भी दर्शाया है कि सरकार की नज़र में किसान महज़ एक वोट देने वाले जानवर हैं और कुछ हद तक उनकी स्थिति जानवरों से भी ख़राब है क्यूँकि "गाय थानेदार से नहीं डरती, कुत्ता पटवारी को देखकर नहीं दुबकता, तथा बकरी तहसीलदार को सामने पाकर ज़मीन पर नहीं लोटती। किसान ऐसा करता है"[4]। प्रस्तुत अध्याय में किसानों के प्रति प्रशासन के रवैये पर व्यंग्य करते हुए प्रशासन की नज़र में वास्तव में किसान का अर्थ (दो पैरों वाले जानवर) बतलाया है, जिसका महत्व पाँच साल में एक बार (चुनाव के समय सिर्फ़ वोटर के रूप में) होता है इस बात से पाठकों को परिचित करवाया है। 'चरखे की खोज' (दंगे में मुर्ग़ा) में व्यंग्य के माध्यम से यह प्रदर्शित किया गया है कि आजकल महापुरुषों को महज़ एक विशेष दिन पर ही याद किया जाता है ताकि राजनीति चमकायी जा सके। उसमें भी लोगों को उन महापुरुषों के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं होती है। इसी विषय को केंद्र में रखते हुए गांधी जयंती के दिन उनके चरखे को ढूँढने की क्रिया पर यह अध्याय लिखा गया है। 'राजनीति, कुत्ते, चुनाव और मुख्यमंत्री जी '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में एक ही पार्टी के एवं करीबी मित्र रहे दो राजनेता हैं जो मुख्यमंत्री पद के दावेदार होते हैं। उनके द्वारा पाले हुए कुत्ते भी करीबी मित्र होते हैं। मुख्यमंत्री बनने के लिए दोनों की

[4] ज्ञान चतुर्वेदी; किसान:एक परिचय; दंगे में मुर्ग़ा; किताब घर प्रकाशन; नई दिल्ली; १९९८; पृष्ट १०

होड़ उन दोनो नेताओं को दुश्मन बना देती है और कुत्ते भी अपनी वफ़ादारी दिखाते हुए एक-दूसरे के दुश्मन बन जाते हैं। अंत में जब एक को मुख्यमंत्री बना दिया जाता है तो दोनों कुत्ते आपस में खूब लड़ाई करते हैं, एक जीत के जश्न में तो दूसरा हार की खीझ में। दोनों कुत्ते यह देखकर दंग रह जाते हैं कि हारा हुआ नेता ख़ुशी-ख़ुशी जीतने वाले को माला पहना कर गले मिलता है और जीतने वाला सार्वजनिक रूप से अपनी जीत को दूसरे नेता का आशीर्वाद स्वीकार करता है। राजनीति की इसी अबूझ पहेली को इस अध्याय का आधार बनाकर व्यंग्य के माध्यम से यह शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया है कि नेताओं के कार्यकर्ताओं एवं समर्थकों को आपस में नहीं लड़ना चाहिए नहीं तो उनकी हालत भी इन कुत्तों जैसी हो जाती है। 'आतंकवाद पर छह कुत्ता कथाएँ '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में डर और आतंक के माहौल में डूबे शहर की पृष्ठभूमि में छह अलग-अलग कुत्तों की कहानी व्यंग्यात्मक रूप में लिखी गयी है। हालाँकि कहानी में कुत्तों का ज़िक्र है, किंतु कुशलतापूर्वक कुत्तों का इंसानों से साम्य बिठाते हुए उनके मार्मिक स्थिति का वर्णन किया है। 'कांग्रेस में होना और नहीं होना '(दंगे में मुर्ग़ा) जिसमें कांग्रेस पार्टी के कार्यकर्ताओं का बड़े पैमाने पर भ्रष्टाचार में लिप्त होने पर व्यंग्य किया गया है। वे कार्यकर्ता इतने कांग्रेसी हो जाते हैं (भ्रष्टाचारी) कि वे कांग्रेस से निकलकर भी जाएँ तो कांग्रेस (भ्रष्टाचार) उनके अंदर से नहीं निकलती। ज्ञान चतुर्वेदी जी यहाँ कांग्रेसी होने की उपमा भ्रष्टाचारी होने के साथ कर के इस अध्याय में कटाक्ष करते हैं। वे यहाँ तक

कहते हैं कि कुछ लोग कांग्रेस में होकर भी कांग्रेसी नहीं होते (अर्थात् भ्रष्टाचारी नहीं होते) और कुछ लोग तो बिना कांग्रेस में हुए भी कांग्रेसी होते हैं। 'सौतेली दादी' (गणतंत्र का गणित) नामक अध्याय में अपनी स्वयं की सौतेली दादी को आधार बनाते हुए सरकार के संघ के प्रति रवैये पर प्रहार किया गया है। 'माँ और सम्पत्ति' (गणतंत्र का गणित) नामक अध्याय में माँ, घर और देश को एक समान मानते हुए ऐसे व्यक्तियों, राजनेताओं एवं प्रशासकों पर प्रहार किया गया है। जो माँ को महज़ एक औरत घर को महज़ एक मकान एवं अपनी मातृभूमि को महज़ एक देश मानते हुए अपने फ़ायदे के लिए बेचने को तत्पर रहते हैं। 'आज़ादी के चालीस वर्ष बाद' (गणतंत्र दिवस की शोभा यात्रा) अध्याय में आज़ादी के चालीस वर्ष बीत जाने पर देश की विदेश नीति एवं राष्ट्रीय नीति पर प्रहार किया गया है। इस अध्याय के अंतर्गत चिंता व्यक्त की गयी है कि आज़ादी महज़ चोर-उचक्कों, भ्रष्टाचारियों, राजाओं, नेताओं एवं अमीरों को प्राप्त हुई है। गरीब आदमी तो अभी भी देश में व्याप्त तमाम विसंगतियों से जकड़ा हुआ है। 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' एक राजनीतिक, सामाजिक एवं तमाम विसंगतियों को व्यंग्य का आधार बनाया गया है। गणतंत्र दिवस के अवसर पर निकलने वाली झांकियों को आधार बनाकर इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। इन झाँकियों में शामिल लोगों के आधार पर विधायकों को विधान सभा में किए जाने वाले हंगामे, पुलिसकर्मियों द्वारा क़ानून पालन न करने की प्रवृत्ति, छात्रों एवं अध्यापकों के बीच के संघर्षों, व्यापारियों द्वारा आम

जनता का खून चूसने की प्रवृत्ति, राजनीतिक पेंशनरों तथा कथित बुद्धिजीवियों, राजनीतिक पार्टियों धर्मात्मा पुरुषों के रूप में देश में रह रहे आतंकवादियों, वकील एवं जजों के भ्रष्टाचारी चरित्र पर प्रहार किया गया है। आज़ादी के इतने वर्षों के बाद भी इन विसंगतियों से देश को आज़ादी नहीं मिली है। 'चुनाव जो अभी अभी हुए' (चंपाकली) अध्याय में चुनाव के दौरान होने वाली राजनीतिक उठा-पठक को आधार बनाते हुए व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'प्रजातंत्र के सच्चे तांत्रिक' (बादलों का गांव) अध्याय में ७ जनवरी, १९९४ को साप्ताहिक संडे मेल, दिल्ली में प्रकाशित खबर को आधार बनाकर एक राजनीतिक एवं प्रशासनिक व्यंग्य की रचना की गयी है। उक्त अध्याय में प्रशासकों द्वारा एवं दफ़्तरों के बाबूओं द्वारा कार्य ना करने एवं अपने कार्य को किसी और से करवाने की प्रवृत्ति पर कटाक्ष किया गया है। 'राष्ट्रीय कीड़े का चुनाव' (लाल पीले फूल) अध्याय में विभिन्न राष्ट्रीय प्रतीकों जैसे राष्ट्रीय पशु, राष्ट्रीय पक्षी आदि के चुनाव में होने वाली समस्याओं को गिनाते हुए एवं उनकी विशेषता बताते हुए राष्ट्रीय कीड़े के चुनाव के लिए भी अपनी राय रखी गयी है। राष्ट्रीय कीड़े के माध्यम से विभिन्न प्रशासनिक एवं राजनीतिक समस्याओं के साथ सामाजिक विसंगतियों पर भी प्रहार किया गया है। 'चुनाव में खड़ा आदमी' (यत्र तत्र सर्वत्र) में चुनावी उम्मीदवार के चुनाव के दिनों के व्यवहार पर व्यंग किया है। चुनावी दिनों में उम्मीदवार किस तरह से पूरी तरह बदल जाते हैं इसी विषय पर यह व्यंग लिखा गया है। जो व्यक्ति कभी मुस्कुराता

नहीं चुनाव के दिनों में सबसे मुस्कुराते हुए मिलता है, बात करता है और फ़ोटो खिंचवाता है।हमेशा की तरह गाड़ियों में नहीं चलता बल्कि जनता के बीच पैदल चलता है। उम्मीदवार अगर किसी आम आदमी को पहचान लेता है तो पूरे इलाक़े में उसका गुणगान होता है कि नेता जी की "महानता है कि वह उसे भूले नही...उनकी यादों की कचरा-पेटी में इस चुनाव-क्षेत्र का भी स्थान है"।[5] थोड़ा आगे बढ़ने पर उन्हें कुछ सुंदर महिलाएँ नज़र आती है। अन्य दिनों पर शायद उनकी नज़र में वे कुछ और होती पर "आज वे सब माँ हैं, बहनें हैं, बहू हैं, बेटियाँ हैं...बुरी नज़र से नहीं देख रहे...अपना पशुत्व घर छोड़ आए हैं...अपना देवत्व ओढ़ा है"।[6] आज वे सभी बीमारों का हाल-समाचार ले रहे हैं। इन सबके बावजूद वो उन लोगों की तरफ़ निगाह भी नहीं डाल रहे जो उनके वोटर नहीं, चाहे वे अनाथाश्रम के बच्चे हों, बस में लटके हुए लोग हों या फिर ठेले पर लद कर जाती हुई लावारिस लाश हो। शरद जोशी जी को अपने घर के सामने के चौराहे की मूर्ति (एक राजनेता की) पर अक्सर कौवे बैठे हुए दिख जाते हैं। कौवे और मूर्ति की इसी स्थिति पर व्यंग करते हुए शरद जी नें उनका अगला अध्याय 'मूर्तियों पर बैठे कौवे' (यत्र तत्र सर्वत्र) लिखा है। दोनों में समानता बताते हुए शरद जी कहते हैं कि जिस तरह कौवा सर्वत्र होता है पर किसी का नहीं उसी तरह नेता "सब जगह होता है किंतु किसी का नहीं"।[7] नेताओं के पुतलों और

---

[5] शरद जोशी; चुनाव में खड़ा आदमी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १२

[6] शरद जोशी; चुनाव में खड़ा आदमी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १२

[7] शरद जोशी; मूर्तियों पर बैठे कौवे; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १६

कौवों में एक आत्मिक जुड़ाव होता है ठीक उसी तरह जैसे मरे हुए जानवरों के आस-पास बैठे कौवों के बीच में आत्मिक जुड़ाव होता है। दोनों जितना अधिक झपटना चाहते उतना झपट नहीं पाते हैं। अगले अध्याय 'कागभुशुण्ड और वित्तमंत्री' (यत्र तत्र सर्वत्र) में भारतीय कर व्यवस्था और बजट पर व्यंग किया गया है। इस व्यंग में एक वित्तमंत्री कागभुशुण्ड से मिलने जाते हैं ताकि आगामी बजट को वे सरलता से प्रस्तुत कर सकें जो सभी को स्वीकार्य हो। कागभुशुण्ड के माध्यम से शरद जी नें वर्तमान कर व्यवस्था जो अमीरों, ऐयाश, होशियार एवं हरामखाऊ कि हितैषी एवं ग़रीबों, ईमानदारों एवं मेहनती वर्गों का शोषक है, पर कटाक्ष करते हैं। "पर पीड़ा वित्तमंत्री का परम सुख है" इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए जिस भी वस्तु के लिए शब्दकोश में "शब्द उपलब्ध हों उस पर कर लगा।"[8] कागभुशुण्ड यह भी सलाह देता है कि "ईमानदार और मेहनती वर्ग पर अधिक कर लगा, जिनसे वसूली में कठिनाई नहीं होगी... ऐयाश, होशियार और हरामखाऊ वर्ग पर कम कर लगा क्योंकि वसूली की सम्भावनाएँ क्षीण हैं। बदमाशों सामाजिक अपराधियों और मुफ़्तख़ोरों पर बिलकुल कर न लगा क्योंकि वे देंगे ही नहीं।"[9] कुछ ऐसे शब्दों में शरद जी नें करारोपण व्यवस्था पर कटाक्ष किया है। 'यह नहीं चलेगा' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक

---

[8] शरद जोशी; कागभुशुण्ड और वित्तमंत्री; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ठ १८

[9]शरद जोशी; कागभुशुण्ड और वित्तमंत्री; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ठ १८

अध्याय एक विपक्ष के उम्मीदवार पर अधिकारी द्वारा विभिन्न शब्दों के उपयोग की मनाही से सम्बंधित है। इस अध्याय में विपक्ष का उम्मीदवार अनेक शब्दों का नाम लेता है और अधिकारी उन सभी शब्दों के उपयोग करने के लिए उस उम्मीदवार को रोकता है। अंत में उम्मीदवार रोते हुए कहता है कि फिर तो हो चुकी मेरी राजनीति। 'छोटी मछलियों के शिकारी' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय को इस विषय पर केंद्रित किया गया है कि सतर्कता आयोग गंदगी से भरे शासन-तंत्र में सिर्फ़ छोटे-मोटे अपराधी को ही सजा दे पाती है। बड़ी मछलियाँ अर्थात् बड़े-बड़े भ्रष्टाचार करने वाले लोग "अपने भारीपन का रोब देती छूट निकलती हैं"[10] तथा कुछ तंत्र के कमजोर सुराख़ों से बच निकलते हैं।' इत्तिफ़ाक़ '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय की कहानी में दयाल सिंह नामक एक चुनावी उम्मीदवार है जो चुनाव के दौरान विपक्षी से पैसा लेकर अपना समर्थन उन्हें देने की बात कहता है। फिर भगवान शंकर के स्वप्न में आने की बात कर कुछ पैसा मंदिर में दान कर खुद को जनता के सामने भोले का भक्त बताते हुए अपने बाद विपक्षी पार्टी के उम्मीदवार को दूसरा सर्वश्रेष्ठ उम्मीदवार बताते हुए वोट माँगता है। 'नासमझी के क्षितिज' (यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में भारतीय नेताओं की नासमझी पर व्यंग किया है। किस तरह नेता विदेश में होने वाले आंदोलन की सराहना करते हैं और उसी आंदोलन को अपने देश में "कुछ

[10] शरद जोशी; छोटी मछलियों के शिकारी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १४२

सिरफिरों का तमाशा"[11] घोषित कर देते हैं। 'भीख की भारतीय शैली...' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में विदेशों से अनाज लेने के ऊपर व्यंग किया गया है। भारत में तीन तरह के भीख लेने वाले हैं। पहले वे जो मजबूर हैं और मजबूरी में पेट पलने के लिए भीख माँगते और दाता की तरफ़ असहाय नज़रों से देखते कि वो उनपर कृपा कर दे। दूसरे वैश्य जो पैसा लेकर बदले में बिना कहे कुछ वापस करने का दृढ़ संकल्प करते हैं। क्षत्रिय मर जाएँगे पर भीख नहीं लेंगे, वो भले वसूली कर लें। तीसरे हैं ब्राह्मण जो भीख माँगते हैं किंतु उसे अपना अधिकार समझते हैं, देने वाले की मजबूरी और ज़रूरत है देना। इसी तीसरे अहं की तरह भारत विदेशों से अनाज लेता जिस पर शरद जी नें व्यंग्य किया है। 'एक होता है योजना आयोग '(यत्र तत्र सर्वत्र) में भारत में नीतियों से सम्बंधित तत्कालीन संस्था पर व्यंग्यात्मक ढंग से प्रहार किया गया है। किस तरह से योजना आयोग राज्यों की माँगों को कम कर के उन्हें धन आवंटित करता है। राज्य अब आयोग के इस व्यवहार से परिचित हो गए हैं और अब वे दस के ज़रूरत को पंद्रह बताते हैं और बारह प्राप्त करते हैं। आयोग के इसी रवैए पर इस अध्याय में व्यंग्य का विषय बनाया गया है। 'बॉर्डर पर गोलियाँ '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में पाकिस्तान द्वारा दान में मिली गोलियों को भारतीय सैनिकों पर दागने पर व्यंग्य किया गया है। पाकिस्तान सीमा पर निरंतर जवानों पर गोलियाँ दागता रहता है, उसे ये गोलियाँ मुफ़्त में मिली होती है अब अगर

[11] शरद जोशी; नासमझी के क्षितिज; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १९६

पाकिस्तान की एक हज़ार गोलियों के बदले में भारत अपनी कमाई से बनी दस गोलियाँ भी छोड़ता है तो उन दस गोलियों का भारतीय अर्थव्यवस्था पर असर होगा जबकि पाकिस्तान पर नहीं। 'क्या चमचे बदलेंगे '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में सरकार बदलने पर चमचों की स्थित पर शरद जी नें व्यंग्य प्रस्तुत किया है। जो चमचे अब तक सरकार की हाँ में हाँ मिलाते हुए सरकार के समर्थक बने बैठे थे ताकी उन्हें व्यक्तिगत लाभ प्राप्त हो सके अब वे क्या करेंगे जबकि सरकार बदल चुकी है। क्या वे अब नयी सरकार के चमचे बनेंगे? 'कुर्सियाँ छीनने का मौसम '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय चुनाव के बाद पार्टी में हो रही खिंचातानी का विवरण प्रस्तुत करता है। चुनाव के पूर्व जो नेता एक-दूसरे के समर्थक थे परिणामों के बाद वे कुर्सी की चाह में एक-दूसरे के ख़िलाफ़ खड़े होते हैं।' नया वर्ष '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में नव-वर्ष मंगलकामना के रूप में शरद जी नें व्यंग्यात्मक ढंग से भारतीय लोगों के व्यवहार जैसे - वादे करना, उधार लेना, सिर्फ़ अपनी जाति/वर्ग/प्रांत के लोगों के हित को ध्यान देना, आलोचना-प्रत्यलोचना, बोर करने की प्रवृत्ति, मानसिक रूप से तंग होने की प्रवृत्ति और मियाँ मिट्ठू बनाने की कला पर व्यंग्य किया गया है। 'आकाश को देखते हुए '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में बारिश को केंद्र में रखते हुए कांग्रेस पार्टी और उसके नेताओं प्रहार करते हुए योजना आयोग पर भी तीखा प्रहार किया गया है। 'रावण एक कैबिनेट था '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में रावण को केंद्र में रखकर वर्तमान लोकतांत्रिक कैबिनेट व्यवस्था पर व्यंग्य किया है। जिस

तरह कैबिनेट में सभी मंत्री हुज़ूर की हाँ में सिर्फ़ हाँ और नहीं में सिर्फ़ नहीं मिलाते ताकि उनका पद बचा रहे उसी तरह रावण के दस सर वास्तव में उसके सर नहीं रहे होंगे वरन नौ उसकी कैबिनेट के अन्य सदस्य रहे होंगे, हाँ में हाँ और नहीं में नहीं मिलाने की आदत से क्षुब्ध हो नागरिकों नें कैबिनेट को दस सर वाले व्यक्ति की संज्ञा दे दी होगी। अगले अध्याय 'असंतुष्ट होने के बजाय युवक राजनीति में आएँ '(यत्र तत्र सर्वत्र) में ऐसे युवकों से जो नौकरी ना पाने से, शासन तंत्र से निराश होने, गन्दी राजनीति का शिकार होने आदि बातों से असंतुष्ट हैं उन्हें राजनीति में आने के लिए प्रेरित किया गया है। क्योंकि यही युवक वास्तविक समस्याओं को समझते है और आज नहीं तो कल यही लोग समाज में सही परिवर्तन ला सकते हैं। 'बरसात में राजनीति '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय बारिश के दिनों में पुराने समय की फ़ोनलाइन की ख़राब सेवा को प्रदर्शित करते हुए लिखा गया है। इस अध्याय में कहानी यह है कि पाँच मंत्रियों ने इस्तीफ़े दे दिए हैं और उनके समर्थन में बयान देने के लिए एक नेता दूसरे नेता को फ़ोन करता है किंतु उसकी आधी बात ही दूसरे नेता तक पहुँचती है और वह पूरे अध्याय तक पूरी बात नहीं समझा पाता। 'शासन जड़, तबादले चेतन' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में सरकार द्वारा नित्य किए जा रहे तबादलों के ऊपर व्यंग्यात्मक कटाक्ष किया गया है। तबादला करना सरकार का "रोब है, अधिकार है, उसके तौर-तरीक़े हैं। सरकारी नौकर... परिवर्तन की पीड़ा भोगता है, टी० ए० चाटता, डी० ए० खाता वह यात्रा करता है और नयी

जगह नए क्वॉर्टर में स्थान खोजता है। उसकी यंत्रणा से शासन को एक विशेष क़िस्म का परपीड़न सुख मिलता है, सैडिस्टिक प्लेज़र।”[12] ‘राजनीतिक मंच पर परेशान हैमलेट ’(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में एक ऐसे मुख्यमंत्री की व्यथा का वर्णन है जो अपने मंत्रिपरिषद के सदस्यों पर लगे भ्रष्टाचार के आरोपों को ध्यान में रखते हुए यह निर्णय नहीं कर पा रहा कि उन सदस्यों को मंत्रिपरिषद से बेदख़ल करें या नहीं। इस बात पर उसके जितने सलाहकार उतने विचार उसके समक्ष प्रस्तुत किए जाते हैं। इसी बात को केंद्र में रखकर इस अध्याय की रचना की गयी है।‘ मामला सास-बहू का ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय इंदिरा गांधी एवं उनकी बहू मेनका गांधी के रिश्तों के ऊपर इस व्यंग्यात्मक अध्याय की रचना की गयी है। ‘राजनीति ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय अध्याय में शरद जी नें राजनीति की घटिया प्रवृत्तियों का वर्णन करते हुए इस अध्याय की रचना की है। ‘समाजवाद: एक उपयोगी चिमटा ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारत में सभी नेताओं द्वारा उपयोग किए जा रहे ‘समाजवाद ’शब्द के ऊपर प्रहार किया है। हर कोई समाजवादी बना बैठा है चाहे वह वास्तव में समाजवादी हो या न हो। समाजवाद शब्द एक ऐसा चिमटा बन गया है जिससे हर कोई अपनी राजनीतिक रोटी को सेंक रहा है। ‘प्रजातंत्र की जड़ें ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें भारत में फैले अंधविश्वास और राजनीति में उन

[12] शरद जोशी; एक पौरुषेय खेल का यों रसबदल; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ठ ३०३

अंधविश्वासों को सामाजिक मान्यता मिलने के ऊपर प्रहार किया है। किसी को चुनाव में भाग लेना है तो वह अपने ग्रह और नक्षत्र देखता है, नॉमिनेशन फ़ॉर्म भरने के लिए मूर्त देखता है आदि बातों पर प्रहार किया है। अंत में भारत में इन सब समस्याओं के साथ प्रजातंत्र की जड़ें कैसे बढ़ेंगी इस पर खेद व्यक्त किया गया है। 'राजनीतिक का धर्म और धर्म की राजनीति' (आओ बैठ ले कुछ देर) अध्याय में वर्तमान समय की राजनीति में नेताओं द्वारा धर्म को अपने हित के लिए प्रयोग किया गया है। 'जीती-जागती सरकार का एक हसीन सपना' (कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय में परीक्षा केंद्रों पर हो रही नक़ल और शिक्षामंत्री द्वारा ऐसी गतिविधियों को नकारने के ऊपर व्यंग्य किया गया है। 'राजनीतिज्ञों की पंचायत' (कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय में पंचायती राजव्यवस्था को आधार बनाते हुए केंद्र द्वारा विकेंद्रीकरण के नाम पर केंद्रीयकरण करने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। इसी के संदर्भ में वे लिखते हैं कि "पंचायतें केंद्र के हाथ में कब और कैसे पहुँचेगी यह देखने की बात है, हम देख रहे हैं हम देखेंगे। नारा विकेंद्रीकरण का, ख़तरा सम्पूर्ण केंद्रीकरण का"[13] 'दुराचार बनाम भ्रष्टाचार' (कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय में विभिन्न देशों के राजनेताओं की दुराचारी प्रवृत्ति को आधार बनाते हुए व्यंग्य किया गया है। इसी संदर्भ में वे आगे लिखते हैं कि "इस प्रसंग में ज़्यादा से ज़्यादा आज पंजाब के पुलिस महानिदेशक के० पी० एस० गिल को याद कर सकते हैं। पर यह भी दुराचार नहीं शराबखोरी

[13] श्री लाल शुक्ल, कुछ जमीन पर कुछ हवा में, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पृष्ठ ११५

का नमूना है, और शायद इसीलिए इसके तुरंत बाद हमारे राष्ट्रपति नें श्री गिल को पद्मश्री से सम्मानित किया है।"[14] उक्त पंक्तियों द्वारा भारत में दुराचार करने की प्रवृत्ति को महज़ शराबखोरी का परिणाम बता देने की प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। 'सर्विस नेता और टेनिस की '(खम्भों के खेल) में खेलों को आधार बनाकर भारत पर अंग्रेज़ी प्रभाव, खेल के दौरान एवं खिलाड़ियों के कपड़ों पर विज्ञापनों, भारतीय राजनीति आदि पर प्रहार किया गया है। 'ऋण और राजनीतिक '(गणतंत्र का गणित) अध्याय में लेखक रामलुभाया को ऋण देता है। रामलुभाया ऋण वापस न करके धरने पर बैठ जाता है और ऋण को अनुदान में बदलने की माँग करता है। इस कहानी के माध्यम से त्यागी जी विदेशों से प्राप्त धन को अनुदान में बदलने या ऋण को माफ़ करने के सरकारी प्रयास पर कटाक्ष करते हैं। 'झूठ का महापर्व ' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में चुनावों के दौरान नेताओं द्वारा किए गए झूँठे वादों के ऊपर यह व्यंग लिखा है। चूँकि सभी नेता बढ़-चढ़कर झूठ बोलते हैं इसी वजह से शरद जी नें चुनावों के मौसम को झूठ का महापर्व कहा है। 'मंत्री जी से भेंट '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक मंत्री द्वारा दिए गए साक्षात्कार के ऊपर व्यंग्य किया गया है। मंत्री जी हर बात में शेखी बघारते हुए दिखे साथ ही हर सवाल का जवाब मंत्री जी घुमा-फिर कर देते हैं।

[14] श्री लाल शुक्ल, कुछ जमीन पर कुछ हवा में, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पृष्ठ १२५

सामाजिक व्यंग्य-

'राजनीतिक मुद्दों के बाद इस युग में सर्वाधिक व्यंग्य रचना सामाजिक मुद्दों को केंद्र में रखते हुए की गयी है। सामाजिक मदों पर केंद्रित व्यंग्यों की बात करें तो रावण न हो पाने का संत्रास' (खम्भों के खेल) अध्याय में टेलीविज़न पर आने वाले धारावाहिक 'रामायण' को केंद्र में रखकर इस बात पर व्यंग्य किया गया है कि किस प्रकार लोग रामायण को महज़ धारावाहिक के रूप में ही देख रहे हैं। 'फ़ोन टेप न होने का दर्द' (खम्भों के खेल) अध्याय में इस बात पर प्रहार किया गया है कि किस प्रकार समाज में बुरे कार्य करने वाले लोगों को प्रतिष्ठित स्थान प्राप्त है। 'चुल्लू भर पानी की तलाश' (खम्भों के खेल) अध्याय में पानी के लिए होने वाली जद्दोजहद को केंद्र में रखकर व्यंग्य किया गया है। 'मारुति-महिमा' (खम्भों के खेल) अध्याय में मारुति कार को ख़रीदने की ख्वाहिश और समाज में कार की प्रतिष्ठा को केंद्र में रखते हुए व्यंग्य किया गया है। 'हम वकील क्यों न हुए' (खम्भों के खेल) अध्याय में वकीलों और दफ़्तर के बाबुओं की तुलना करते हुए व्यंग्य रचना की गयी है। 'बेकारी हटाओ-एक नाश्ता-वार्ता' (खम्भों के खेल) अध्याय में बेकारी हटाने पर हो रही चर्चा-परिचर्चा पर व्यंग्य किया गया है। 'वह मुस्कुराते क्यों हैं '(खम्भों के खेल) अध्याय एक पारिवारिक मुद्दों पर लिखा हुआ व्यंग्य है जिसमें लेखक अपनी बीवी के साथ, अपने पड़ोसी के साथ एवं एक नेता के साथ हुई बातचीत का ज़िक्र करते हुए व्यंग्य करता है। 'दूरदर्शन और दर्शन शुल्क '(खम्भों के खेल) अध्याय में दूरदर्शन के

निजीकरण और कार्पोरेट जगत द्वारा अधिक शुल्क वसूलने आदि को आधार बना कर इस अध्याय की रचना की गयी है। 'पान और पेड़ की दुकान ' (खम्भों के खेल) अध्याय में एक पान की दुकान पर हो रही बातचीत को आधार बनाकर विभिन्न सामाजिक एवं प्रशासनिक मुद्दों पर प्रहार किया है। 'मूँछ का सवाल '(खम्भों के खेल) अध्याय में मूँछ के माध्यम से सामाजिक और शैक्षणिक विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। 'देश और दहेज' (खम्भों के खेल) अध्याय में दहेज के ऊपर सामाजिक व्यंग्य के माध्यम से प्रहार किया गया है। 'इक्कीसवीं सदी का कैलेंडेर '(खम्भों के खेल) अध्याय में २१वीं सदी में होने वाले बदलावों को आधार बनाकर व्यंग्य रचना की गयी है। 'शहर और सावन-कुछ प्रतिक्रियाएँ' (खम्भों के खेल) अध्याय में बारिश के बारे में सरकारी कालोनी में रहने वाले व्यक्ति, कवि-लेक्चरर, इंजीनियर झुग्गी-झोपड़ी में रहने वाले व्यक्ति, नेता एवं डॉक्टर के विचारों को आधार बनाकर समाज में व्याप्त विषमता पर कटाक्ष किया गया है।' खरे-खोटे मुखौटे '(खम्भों के खेल) अध्याय समाज में लोगों के जीवन और चरित्र पर कटाक्ष करता है। 'अपने-अपने कूड़ेदान '(खम्भों के खेल) अध्याय के माध्यम से घर में गंदगी को प्रतिबिम्बित करते हुए देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक गंदगी पर कटाक्ष किया गया है। 'दादा का अहिंसा-उसूल '(दांत में फंसी कुर्सी) नामक अध्याय में राजनीति, पुलिस प्रशासन, एवं पहलवानों की समाज में धौंस पर प्रहार करते हुए व्यंग्य रचना की है। 'फ़ायदे फ़ोन के '(दांत में फंसी कुर्सी) नामक अध्याय एक

सामाजिक व्यंग्य है जिसमें टेलीफ़ोन दफ़्तर जैसे दफ़्तरों में रिश्वत, बाबूगिरी आदि पर भी व्यंग्य किया गया है। 'अपनी अंतिम हवाई यात्रा ' (दांत में फंसी कुर्सी) अध्याय में एक स्मगलर द्वारा हवाई यात्रा करवाने और उसके परिणाम के बारे में लिखते हुए एक सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यंग्य रचना की गयी है। साथ ही 'इंडिया और भारत 'के बीच के अंतरों पर भी प्रहार किया गया है। 'देश में रेल का योगदान '(दांत में फंसी कुर्सी) एक सामाजिक एवं प्रशासनिक व्यंग्य है, जिसमें रेल यात्रा और उसके यात्रियों को आधार बनाकर व्यंग्य किया गया है। 'अपना-अपना नरक दर्शन '(दांत में फंसी कुर्सी) एक सामाजिक और प्रशासनिक व्यंग्य है। इस व्यंग्य में समाज में व्याप्त विषमताओं और प्रशासनिक अक्षमता के कारण विभिन्न समस्याओं पर प्रहार किया गया है। 'नए वर्ष का भविष्य', 'अख़बार की दरकार', 'हिंदी का नूतन शब्द भंडार 'एवं 'मुंडी हिलाने का मतलब '(दांत में फंसी कुर्सी) नामक अध्याय में देश में व्याप्त तमाम विषमताओं को आधार बनाकर व्यंग्य रचना की गयी है। 'दिवसों की दरकार '(दांत में फंसी कुर्सी) अध्याय में किसी अच्छे चीज को प्रोत्साहन देने के लिए महज़ एक दिन निर्धारित करना और बाक़ी के दिन उसका उल्टा करने की प्रथा पर प्रहार किया गया है। 'महत्व मक्खी मारने का '(दांत में फंसी कुर्सी) अध्याय एक सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक व्यंग्य है जिसमें लोगों के कुछ ना करने पर व्यंग्य किया गया है। 'हमारे राष्ट्रीय शौक '(दांत में फंसी कुर्सी) नामक अध्याय सामाजिक, मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक रूप से निकम्मेपन पर पर प्रहार करता है।

‘इंतज़ार का दर्शन ’ (दांत में फंसी कुर्सी) नामक अध्याय में इंतजार को मुख्य विषय बनाते हुए तमाम विसंगतियों जैसे अस्पताल, रेलवे स्टेशन, बस स्टेशन आदि में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार किया है। ‘मार का हथियार ’ (दांत में फंसी कुर्सी) अध्याय में समाज में ‘मारने-पीटने ’को हथियार के रूप में प्रयोग करके अनेक समस्याओं प्रेत-बाधा, पुलिस स्टेशन में शिकायत करने वाले लोगों, चुनाव में हारने की समस्या, अपनी हार की खीझ से परेशान होने की समस्या आदि के लिए प्रयोग किया जा सकता है। इसी विषय पर यह व्यंग्य लिखा गया है। ‘अतीत के आयाम और कुर्सी ’(दांत में फंसी कुर्सी) नामक अध्याय में लोगों की उस प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है जिसमें लोग कहते हैं कि ‘वो भी क्या दिन थे’। ‘सतरंज और दफ़्तर में लेखक’ (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में व्यवस्था में शामिल लोगों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। ‘बे-कार दर्शन’ (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) में गोपाल जी नें व्यवस्था में कार्य को स्थगित करने के ढंग को आधार बनाकर व्यंग्य किया है। ‘रेनी डे बनाम नाली डे’ (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में मानवीय जीवन के मूल्यों पर छाते को माध्यम बनाकर कटाक्ष किया गया है। ‘अपनी दिल्ली, अपनी शान’ (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) में इंसान का व्यवस्था से लगाव पर कटाक्ष किया गया है और कहा गया है कि व्यवस्था कैसी भी हो फिर भी उस व्यवस्था के नागरिक को अपनी उस व्यवस्था पर गर्व होता है। ‘मूल्य वृद्धि के पक्ष में ’ (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में इन्होंने सरकारी व्यवस्था पर कटाक्ष किया है। ‘अपने-अपने इम्तहान ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) में भारतीय सामाजिक दशा पर

एक पात्र के माध्यम से व्यंग्य किया गया है। ‘बरसात में बाबू’ (फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में कहानी के पात्र द्वारा गोपाल जी नें व्यक्ति के सामाजिक व्यवहार पर व्यंग्य किया है। ‘अब दो दिन काम के ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में सामाजिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। ‘वेतन आयोग और आलू ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में मानवीय स्वभाव और सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। ‘प्रमोशन और पी० एच० डी० तकनीक ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में शिक्षा व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था को मिलाते हुए दोनों व्यवस्थाओं पर प्रहार किया गया है। ‘भाषा भविष्य की ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में सामाजिक संस्कारों को विचारधारा से जोड़ते हुए व्यंग्यात्मक टिप्पणी की गयी है। ‘मौसम मार्क्स और भेड़ ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) में गोपाल जी नें मौसम को माध्यम बनाकर विचारधारा और राजनैतिक सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। ‘देश के लिए दौड़ ’(फ़ाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में भारतीय समाज की कुरीतियों पर दौड़ को आधार मानते हुए व्यंग्य किया गया है। ‘सर्दी के दिन ’(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में सर्दी के दिनों में ग्रामीणों की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। इस अध्याय में मूलतः सामाजिक ग्राम्य जीवन एवं उनकी सामाजिक सच्चाई को ज्ञान चतुर्वेदी जी नें अपने व्यंग्य का आधार बनाया है। ‘गाँव के स्कूल में कम्प्यूटर ’(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में ग्रामीण स्कूलों की शिक्षा व्यवस्था पर प्रकाश डाला गया है। इन स्कूलों में अध्यापक पढ़ाई से अधिक छात्रों की कुटाई में लिप्त पाए जाते हैं।

‘सती प्रथा के पक्ष में ’(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में महिलाओं पर हो रहे जुल्म एवं उसकी दुर्दशा का विवरण दिया गया है। जिस देश में महिलाओं को देवी समझा और माना जाता था कि ‘यत्र नर्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र च देवता ’उसी देश में महिलाओं के ऊपर इतने अत्याचार हो रहे हैं। पहले तो उन्हें भ्रूण में ही मार दिया जाता था। और कहीं तो शादी के बाद उन्हें दहेज के लिए प्रताड़ित किया जाता है और अगर असमय पति की मृत्यु हो जाए तो ससुराल वालों को ज़मीन में हिस्सा ना देना पड़े इसके लिए वे उन्हें सती बनाने में जुट जाते हैं। ‘बिलियर्ड: जैसा मैंने समझा’ (दंगे में मुर्ग़ा) अध्याय में ज्ञान चतुर्वेदी जी ने लोगों के दिखावटीपन को उजागर किया है। कोई व्यक्ति भले ही किसी खेल में पारंगत ना हो किंतु वह इस तरह से माहौल बनाता है जैसे उसके अलावा वह खेल कोई जानता ही नहीं। इसी बात को दर्शाने के लिए ज्ञान चतुर्वेदी जी नें बिलियर्ड खेल के आधार पर उस तरह के लोगों पर कटाक्ष किया है।‘ कर्फ़्यू में रामगोपाल ’(दंगे में मुर्ग़ा) अध्याय में रामगोपाल नामक सिपाही के माध्यम से ज्ञान चतुर्वेदी जी नें यह दर्शाने का प्रयास किया है कि कर्फ़्यू में सिपाहियों की कितनी बुरी हालत हो जाती है। वे ना तो ठीक से खाने को पाते, ना सोने को और अगर घर में कोई बीमार हो तब भी वे उसे देख नहीं पाते क्योंकि उनकी ड्यूटी कर्फ़्यू प्रभावित क्षेत्र में लगी है। अफ़सर आते भी हैं तो अफ़सरी दिखा के चले जाते हैं। उनकी सुध लेने वाला कोई नहीं। ऐसे में उनके अंदर उमड़ रही खीझ को वे आम नागरिकों पर निकालते हैं। ‘मेरे गाँव के राम, रावण इत्यादि ’(दंगे में मुर्ग़ा)

नामक अध्याय में ग्राम्य क्षेत्रों में होने वाली रामनवमी और उनके पात्रों की भूमिका निभाने वाले कलाकारों के सामान्य जीवन पर प्रकाश डाला है। साथ ही साथ ग्रामीण क्षेत्रों में होने वाली दिन-प्रतिदिन की राजनीति पर भी प्रकाश डाला है। अगले अध्याय जिसका नाम 'तंत्र से गुजरते हुए' (दंगे में मुर्ग़ा) है, में ज्ञान जी नें ग्रामीण क्षेत्रों में तंत्र-विद्या को लेकर लोगों के मन में व्याप्त अंधविश्वास पर प्रहार किया है। ग्रामीण क्षेत्रों में अनेक समस्याओं का एकमात्र समाधान तंत्र-विद्या को समझा जाता है। तंत्र-विद्या को लेकर सिर्फ़ बड़े-बूढ़े ही नहीं बल्की नवयुवक भी पूरी तरीक़े से आश्वस्त होते हैं। अगर तंत्र-विद्या से कोई कार्य सफल नहीं होता तो इसमें तंत्र-विद्या नहीं वरन् करने वाले पर सवाल किया जाता। यह समझा जाता कि उसने ठीक से तंत्र-विद्या का उपयोग अपने फ़ायदे के लिए नहीं किया। 'प्रेम-प्रकटन निर्देशिका '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में ग्रामीण क्षेत्र के युवाओं पर कटाक्ष किया है। वे युवा जो अपना प्रेम प्रकट करने में असफल होते हैं उनके लिए एक ऐसे पुस्तक को लिखने की बात ज्ञान जी नें की है जो उन्हें उनके प्रेम को प्रकट करने में मदद कर सके। जिसमें विभिन्न रास्ते बताए गए हों जिनके द्वारा प्रेम को प्रकट किया जा सकता हो। क्यूँकि ग्रामीण युवा अपना अधिकतर समय इसी बात में गँवा देते हैं। इस तरह की पुस्तक होने पर उनका समय बचेगा। इसी बात पर ज्ञान जी का व्यंग्य केंद्रित है। 'आपदा का नागरिक शास्त्र' (दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में शिक्षा व्यवस्था एवं क़ानून व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। क्यूँकि वर्तमान व्यवस्था कई

मायनों में ख़ामोश है; उदाहरण के लिए “भूकम्प आया है और नागरिक शास्त्र की पोथी में इस विषय में कुछ भी नहीं लिखा है-तो आप क्या करें? घर से बाहर निकलें या दबकर मर जाएँ-सरकार क्या कहती है? क़ानून क्या कहती है? पुलिस दरोगा और कलेक्टर के क्या विचार हैं? ऐसा तो ना होगा ना की भूकम्प से बाहर भागते हुए लोग गिरफ़्तार कर लिए जायें? ऐसे प्रश्न मन में उठाना स्वाभाविक है। एक पढ़े-लिखे औसत निम्न तथा मध्यमवर्गीय भारतीय नागरिक के सामने ऐसी समस्या आ खड़ी होती है कि वह बाढ़, सूखे, भूकम्प, हैज़ा आदि में क्या करे?”[15] ‘गिलास में आधुनिकता ’(गणतंत्र का गणित) नामक अध्याय में शराब को आधुनिकता का पर्याय मानते हुए एवं गिलास के ऊपर के टिशू पेपर की परम्परा का पर्याय मानते हुए आधुनिकता एवं परम्परा के ऊपर व्यंग्य किया गया है। साथ ही साथ रामलुभाया एवं लड़की के संवाद को आधार बनाते हुए मेकअप एवं भारतीयों के ऊपर कटाक्ष किया गया है। ‘रेलगाड़ी’ (गणतंत्र का गणित) अध्याय में रेलगाड़ी को आधार बनाते हुए समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों जैसे छुआछूत, आधुनिकता, विदेशी तर्क एवं विदेशी ज्ञान पर प्रहार किया गया है। ‘अतिथि देवों भव’ (गणतंत्र दिवस की शोभा यात्रा) अध्याय में अतिथि को केंद्रीय विषय बनाते हुए व्यंग्य रचना की गयी है। अपने घर आने वाले विभिन्न प्रकार के अतिथियों का ज़िक्र करते हुए त्यागी

[15] ज्ञान चतुर्वेदी; आपदा का नागरिक शास्त्र; दंगे में मुर्ग़ा; किताब घर प्रकाशन; नई दिल्ली; १९९८; पृष्ट ८०

जी अतिथियों के व्यवहार एवं चरित्र पर प्रहार किया गया है। 'आज का अख़बार' (गणतंत्र दिवस की शोभा यात्रा) अध्याय में २९ जनवरी १९८८ के इंडियन एक्सप्रेस समाचार पत्र में छपी खबरों को आधार बनाते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। तमिलनाडु विधानसभा में तोड़-फोड़, मेरठ का किसान धरना, विश्वविद्यालय के छात्रों द्वारा कुलपति का घेराव, १९८४ के दंगों के अपराधियों को सजा आदि घटनाओं का ज़िक्र करते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'देवदासियों की परम्परा ' (चंपाकली) अध्याय में भारत के मंदिरों में प्रचलित देवदासियों की प्रथा पर प्रहार किया है। साथ ही साथ इस अध्याय में देवदासियों के मार्मिक स्थिति का वर्णन करते हुए भूतपूर्त देवदासियों के वेश्यालयों में पाए जाने की घटनाओं पर भी त्यागी जी नें कटाक्ष किया है। इस व्यंग्य संग्रह के अध्याय 'अंजामे गुलिस्ताँ क्या होगा' (देश-विदेश की कथा) में 'एक ही उल्लू काफ़ी था, बर्बाद गुलिस्ताँ करने को, हर शाख़ पे उल्लू बैठे हैं अंजामें गुलिस्ताँ क्या होगा 'पंक्तियों के आधार पर त्यागी जी नें तमाम विसंगतियों पर प्रहार करते हुए उक्त अध्याय की रचना की है। 'एक आदमी की मौत' (देश-विदेश की कथा) अध्याय में एक व्यक्ति एवं उसके जीवन की घटनाओं को आधार बनाते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'देश-विदेश की कथा' में महिलाओं को केंद्रीय विषय बनाते हुए समाचार पत्रों में प्रकाशित विभिन्न घटनाओं को आधार बनाते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'भारतमाता ग्रामवासिनी' (पूरब खिले पलाश) अध्याय में विभिन्न

आँचलिक लेखकों द्वारा गाँवों के चित्रण को आधार बनाते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। लगभग सभी आंचलिक लेखकों नें गावों का जो चित्रण किया है व्यवहार में गाँव उस चित्रण से सर्वथा भिन्न दिखता है। शहरीकरण के प्रभाव एवं ग्रामीण लोगों का नौकरी की तलाश में शहर की तरफ पलायन आदि कारणों से गाँव अब पूरी तरह बदल गए हैं। इसी संदर्भ में त्यागी जी कहते हैं कि "गाँव खत्म हो गया है और भारतमाता कहीं चली गयी। ये जितने लोग आँचलिक उपन्यास-लेखक होने का दावा कर रहे हैं, ये वे हैं जो कभी गाँव नहीं गये। ये साहित्य में मात्र इस कारण जमे हैं कि पाठकगण जो हैं उन्होंने भी कभी गाँव जाने की तकलीफ़ नहीं की।"[16] 'उनका कुत्ता मर गया' (पूरब खिले पलाश) अध्याय में एक औरत के मरे हुए कुत्ते की शोकसभा में गए लेखक नें उस औरत और उसके कुत्ते को आधार बनाते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। उस औरत के लिए उसका कुत्ता किसी अन्य चीज़ से बढ़कर था, यहाँ तक कि वह अपने पति से भी बढ़कर उस कुत्ते को चाहती थी। उसके और उसके कुत्ते के संदर्भ में त्यागी जी लिखते हैं कि "वह कुत्ता उनके जीवन का अभिन्न अंग था। वह उन्हीं के साथ बिस्तर छोड़ता था, वह उन्हीं के साथ चाय पीता था, रेडियो पर खबरें सुनता था, नाश्ता करता था, घूमने जाता था, और उन्हीं के साथ बाल डांस करता था, खाना खाता था और सोता था।...वह कुत्ता भूतपूर्व

[16] रवीन्द्रनाथ त्यागी, पूरब खिले पलाश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९८; पेज ३८

पतियों से अपनी मालकिन की रक्षा करता था।"[17] 'देवदार के पेड़' (पूरब खिले पलाश) अध्याय में लेखक देहरादून की वादियों में सैर करने गया होता है, जहाँ पर उसके कमरे से देवदार के पेड़ और पहाड़ों का सुंदर दृश्य दिखायी देता है। इन सुंदर दृश्यों के अलावा अगर कोई चीज़ वहाँ उसे पसंद नहीं आती तो वह है उस जगह का खाना। इन्हीं दृश्यों और ख़ानसामे के व्यवहार को आधार बनाते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। 'लेखक के नाम पाँच पत्र' (लाल पीले फूल) नामक अध्याय में लेखक को प्राप्त पाँच पत्रों पुत्र द्वारा प्रेषित, आलोचक द्वारा प्रेषित, भूतपूर्व प्रेमिका द्वारा प्रेषित, प्रकाशक द्वारा प्रेषित एवं एक गधे द्वारा प्रेषित पत्र प्राप्त होता है। इन पत्रों में सभी अपने-अपने हित की बात करते हैं और किसी को भी लेखक से कोई वास्ता नहीं है। इसी बात को आधार बनाते हुए त्यागी जी नें इस व्यंग्य अध्याय की रचना की है। 'बिहार, जनसंख्या और प्रेमगीत' (विषकन्या) अध्याय में बिहार राज्य की विसंगतियों, देश की जनसंख्या और प्रेम में लिखे गए गीतों पर व्यंग्य किया गया है। बिहार के संदर्भ में वे कहते हैं कि तमाम भ्रष्टाचार, डकैती, हत्या आदि में बिहार नें बाक़ी सभी राज्यों को पीछे छोड़ दिया है। "मेरा सरकार से निवेदन है कि वह अपराधों का कुछ इस प्रकार विकेंद्रीकरण करे कि प्रत्येक राज्य किसी अपराध विशेष के बारे में 'स्पेशलिस्ट' बन सके।"[18] जनसंख्या के संदर्भ में त्यागी जी कहते हैं कि

[17] रवीन्द्रनाथ त्यागी, पूरब खिले पलाश, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९८; पेज ६४

[18] रवीन्द्रनाथ त्यागी, विषकन्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पेज १६

तमाम धार्मिक युद्धों के बावजूद एवं समाज के अनेक विघटन एवं आपसी संघर्ष के बावजूद जनसंख्या है कि कम होने का नाम ही नहीं ले रही है। जनसंख्या को केंद्रीय विषय बनाते हुए त्यागी जी धार्मिक एवं जातीय कट्टरता पर प्रहार करते हैं। 'जूते, वसीयतनामे और दिल्ली' (विषकन्या) अध्याय तीन विभिन्न विषयों पर व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करता है। जूते के आधार पर कई घटनाओं का ज़िक्र करते हुए लोगों के जूते भिगोकर खाने की आदत पर व्यंग्य किया गया है। वसीयतनामे के आधार पर दुनिया के तमाम दिलचस्प वसीयतों पर व्यंग्य किया गया है तथा दिल्ली में बढ़ते हुए भ्रष्टाचार, राजनीति एवं प्रशासनिक भ्रष्टाचार को उजागर करने का कार्य किया गया है। 'कलियुग आ ही गया' (विषकन्या) अध्याय अस्पतालों, अदालतों एवं आध्यात्मिक गुरुओं के गिरते हुए चरित्र पर प्रहार करता है। 'सहिष्णु' (यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में कुछ ऐसे ही मिलते-जुलते विषय को आधार बनाया गया है। जिसमें एक ग़ुस्सैल और ताकतवर नौजवान बाज़ार में अपनी ओर देखते हुए बुड्ढे को देखकर क्रोधित हो जाता है और गाली-गलौज करने लगता है, दूसरे दिन फिर ऐसा होता है किंतु इस बार वह बुड्ढे की पिटाई कर देता है। ऐसा दो-तीन बार होता है। अगले दिन फिर उस बुड्ढे को मुस्कुराता देख वह नौजवान उसके सामने हाथ जोड़ कर कहता है कि "तुम बड़े नेक और शरीफ़ बुजुर्ग हो.... तुमने मुझ पर गहरा असर डाला है और मैं तुम्हारी ख़िदमत में हाज़िर हूँ"।[19] इस पर वह बूढ़ा व्यक्ति बताता

[19] शरद जोशी; सहिष्णु; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १४

है कि वह चुनाव में खड़ा है और उस व्यक्ति का सिर्फ़ वोट चाहता है। नौजवान वादा करता है कि वह अपना वोट उस बूढ़े व्यक्ति को ही देगा। अंत में वह बूढ़ा चुनाव जीतकर मंत्री भी बन जाता है। एक दिन पुलिस उस नौजवान व्यक्ति को ढूँढते हुए आयी "और उसे पकड़कर ले गयी। उस पर जुर्म था कि वह शांत नागरिकों से मारपीट करता है और उससे शहर के अमन क़ानून को ख़तरा है"। अध्याय के अंत में शरद जोशी जी अपने पाठकों को एक सीख देते हुए कहते हैं कि "जो शख़्स ग़ुस्से को पीकर दाँत निकालता रहता है, वह ज़रूर मौक़े की ताक में है।"[20] अगला अध्याय 'ई सब मन के भरमा' (यत्र तत्र सर्वत्र) में फ़िल्मी कलाकारों एवं दर्शकों को अपने व्यंग का आधार बनाया गया है। दर्शक सोंचते हैं कि उनके प्रिय बड़े स्टार अभिनेता किस तरह बुद्धू बन छोटे-मोटे विज्ञापनों को करने लगते हैं। जबकि अभिनेता "जहाँ जैसा मौक़ा मिले, चार पैसे कमाने का चांस हो, वहाँ वैसे ये लोग टूट पड़ेंगे।... वे पाखंड ओढ़ते हैं और हम अपनी भावुकता के मारे उसे सच मानते हैं।"[21] इस तरह शरद जी नें पैसे के पीछे भागते और अपने दर्शकों को पैसों के लिए गुमराह करते अभिनेताओं एवं कलाकारों को अपने व्यंग का आधार बनाया हैं। 'बातें बयान से बाहर हैं' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारत देश की वर्तमान दुर्व्यवस्था पर दुःख प्रकट करते हुए व्यंग्य का आधार बनाया गया है। नक़ली दवाइयों से लेकर अमीरों की बढ़ती

---

[20] शरद जोशी; सहिष्णु; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १५

[21] शरद जोशी; ई सब मन के भरमा; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट २१

अमीरी और ग़रीबों की बढ़ती ग़रीबी, प्रजातंत्र से लेकर वर्तमान पत्रकार जो कठपुतली की तरह् कार्य करते या भय के वातावरण में कार्य करते, जैसे विषयों के साथ-साथ महँगाई, जातिवाद, आतंकवाद एवं युद्ध को भी रेखांकित करते हुए इस अध्याय को लिखा गया है। 'न्यायी जहाँगीर और मुसीबतज़दा लेक्चरर : तबादले के सोलह् सिद्धांत' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय की पृष्ठभूमि ऐसी है कि जहाँगीर के न्याय दरबार में कुछ लेक्चरर अपने तबादले से परेशान होकर न्याय की आस लगाए गुहार लगाते हैं। यहाँ पर शरद जी नें ऐतिहासिक तथ्यों को वर्तमान समस्याओं से जोड़ते हुए व्यंग किया है। सभी की बातों को सुनकर जहाँगीर उन्हें धमकाते हुए कहा "तबादला करना हमारा फ़र्ज़ है और तबादलों पर असंतोष तो पुराना मर्ज़ है। आपको जो हुक्म हुआ है उसे मानिए, हमने नौकरी से नहीं निकला गनीमत मानिए"।[22] और फिर सभी वापस चले जाते हैं। फिर जहाँगीर तबादले के १६ सिद्धांत लिखवाता है जिसके आधार पर ही सबके तबादले होने है। उन सोलहों सिद्धांतों का निष्कर्ष यह् होता है कि तबादला पूरी तरह् उसके इच्छा पर निर्भर है।' किसान रैली '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में किसानों की रैली में जाने वाले किसानों का वर्णन है। किसान निरंतर अपने खेतों में काम करते हुए बोर हो गया होता है, ऐसे में उससे कोई भी कहता की चलो दिल्ली किसान रैली में तो वो उनके साथ हो लेता

---

[22] शरद जोशी; न्यायी जहाँगीर और मुसीबतज़दा लेक्चरर : तबादले के सोलह सिद्धांत; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट २८

है। उसे फ़र्क़ नहीं पड़ता की रैली किसकी है। 'रेल यात्रा '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारतीय रेलों में यात्रा करने के लिए जगह पाने की माथापच्ची का वर्णन है।कितनी मुश्किल से रेलों में जगह मिलती। धक्का-मुक्की, गली-गलौज आदि जो बर्दाश्त कर ले वही असली यात्री है और उसी को जगह मिलती इन्हीं बातों पर यह अध्याय केंद्रित है। 'किताब के कीड़े' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें सरकार और प्रकाशक पर व्यंग किया है। सरकार को पता है कि "सरकार अपढ़ बेकारों से निपट सकती है, पढ़े-लिखे बेकारों से निपट सकती है पर समझदार और तथ्य जानने वाले बेकारों से नहीं निपट सकती"।[23] वहीं प्रकाशक का एक मात्र उद्देश्य यह होता कि उनकी किताबों की सरकारी ख़रीद हो जाए। इस व्यंग के माध्यम से शरद जी नें यह बताने का प्रयास किया है कि सबका अपना स्वार्थ है और ज्ञान वर्धन के लिए किताबों से कोई नहीं जुड़ा है। अगले अध्याय 'आक्रमण: राजनीतिक स्टाइल' (यत्र तत्र सर्वत्र) में किसी ऑफ़िस पर क़ब्ज़ा करने का वर्णन किया गया है। इस क़ब्ज़े की रूप रेखा आक्रमण के तरीक़े से कमांडर द्वारा खिंची जा रही है। 'उस दिन की दोपहरी' नामक अध्याय वोटिंग के दिन का वर्णन किया गया है। सिरीराम बाबू और उनकी पत्नी की कहानी है जिसमें वे दोनो पहले तो दोपहर होने की वजह से नहीं जा पाते फिर गेहूँ की व्यवस्था करने में व्यस्त होने के कारण वोट देने नहीं जा पाते हैं। इस अध्याय में शरद जी नें यह बताने का प्रयास किया है कि वोट देना अभी भी

[23] शरद जोशी; किताब के कीड़े; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट ४२

बहुत से लोगों के लिए महज़ एक फ़ालतू काम है क्योंकि उन्हें इसके अलावा भी बहुत कुछ ज़रूरी कार्य करना होता है। 'कोमल कमल, भारी लक्ष्मी' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक बाल कुतूहल को दिखाया गया है जिसमें वो पूजा के दौरान लक्ष्मी जी की फ़ोटो को निहारते हुए सोंचता है की कमल तो बहुत कोमल होता है। यह लक्ष्मी जी के भार को कैसे सम्भाल सकेगा। अगर कमल टेढ़ा हो गया तो लक्ष्मी माता गिर जाएँगी। इसी बात की कल्पना करते हुए उस बालक के मन के कुतूहल को व्यंग के माध्यम से शरद जी नें दर्शाया है। 'छाता हाथ में लेकर' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में बारिश के दिनों में हाथ में छाता लेकर चलने से होने वाली समस्याओं का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में शरद जी नें एक व्यावहारिक समस्या को अपने व्यंग्य का विषय बनाया है। 'इंटरव्यू : एक स्मृति' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी ने अपने एक इंटरव्यू की दास्तान सुनायी है। उनके अनुसार वह इंटरव्यू वैसा नहीं गया जैसा कि प्रायः अपेक्षा की जाती है। इंटरव्यू लेने वाले के कई प्रयासों के बाद जब उसका लिया हुआ यह इंटरव्यू नहीं छपता तो वह शरद जी से ही गुज़ारिश करता है कि "आप ही कोशिश कर दें की कहीं छाप जाए"।[24] इसी को व्यंग्य के अन्दाज़ में शरद जी नें प्रस्तुत किया है। 'इंदौर में शादियाँ देखकर' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें इंदौर की शादियों पर व्यंग्य किया है। एक ही दिन में कई शादियाँ। घोड़ों से ज़्यादा दूल्हों की संख्या होने पर शादी के घोड़े के

---

[24] शरद जोशी; इंटरव्यू : एक स्मृति; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट ६४

लिये भागदौड़ आदि को शरद जी नें इस अध्याय का आधार बनाया है। 'इंदौर के स्वर' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में जब सुबह-सुबह इंदौर शहर के लोग जागते हैं तो कैसे उनकी दिनचर्या शुरू होती है और इस दिनचर्या की शुरुआत के कोलाहल को ही शरद जी नें अपने इस अध्याय का विषय बनाया है। 'गरज के मारों का तीर्थनगर' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें राजधानी भोपाल में रह रहे लोगों के यहाँ अपना काम करवाने के लिए आने वाले अन्य जनपदों के लोगों के ऊपर व्यंग किया है। क्यूँकि भोपाल राजधानी है तो सभी ज़िले के लोगों का काम भोपाल में पड़ता रहता है। इस वजह से जो लोग भोपाल में होते हैं उनके सम्पर्क में बने रहने के लिए अन्य ज़िले के लोगों के बीच एक होड़ होती है, बस शर्त यह है की भोपाल वालों को सरकारी दफ़्तर से कुछ छोटे-मोटे काम निकलवाने आना चाहिए। 'मेघदूत' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में यक्ष मेघ (बादल) से मध्य-प्रदेश के किस ज़िले में कितना पानी गिरना है (अर्थात् बारिश करना है) उसका विवरण देता है। इसी काल्पनिक वार्तालाप को शरद जी नें अपने व्यंग्य का आधार बनाया है।' दही कटोरा हाथ में '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक नौजवान से शरद जी नें अपने मुलाक़ात का ज़िक्र किया है जिससे वो बहुत प्रभावित हुए थे क्यूँकि वह छोटे शहर से बड़े शहर में आया था और अपने अंदर के छोटे शहर का इंसान ज़िंदा रखे हुए था। वह नौजवान व्यक्ति दोपहर को चार बजे दही लेने निकला था और उसी समय उससे हुई मुलाक़ात का ज़िक्र शरद जी ने इस अध्याय में किया

है। 'अनिश्चय में लटका हुआ कैजुअल का मारा '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक दफ़्तर के कर्मचारी की दफ़्तर से छुट्टी लेने की उहापोह की स्थिति का वर्णन है। उसकी तीन-चार कैजुअल छुट्टियाँ अभी बाक़ी हैं और वह समझ नहीं पा रहा है कि आज वह उसका उपयोग करे या नहीं करे। इसी को आधार बना कर शरद जी नें इस अध्याय की रचना की है।' भावी कर्णधार '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय नकारात्मक कार्यों में लिप्त युवाओं पर केंद्रित अध्याय है। युवा, जो देश के भावी कर्णधार हैं उनका नकारात्मक कार्यों में उलझे रहना पूरे देश के लिए एक सोचनीय विषय है, और इसी विषय को व्यंग के माध्यम से शरद जी नें प्रस्तुत किया है। 'हीरो की नियति ' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय शरद जी की एक अधूरी कहानी के काल्पनिक पात्रों पर केंद्रित व्यंग्य है। इस अध्याय में शरद जी के कहानी के हीरो जुगल और उसकी हीरोइन रुक्मा के माध्यम से शरद जी नें अनेक सामाजिक मुद्दों को अपने व्यंग का आधार बनाया है। 'शहर '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें शहरों की वर्तमान स्थिति का वर्णन किया है। किस तरह शहर बढ़ रहे हैं, जहाँ कभी जंगल होता था आज वहाँ इमारतों और गाड़ियों का जंगल हो गया है। अब शहरों की सीमा भी निश्चित नहीं रही क्यूँकि पहले कहा जाता था कि जहां से स्टेशन शुरू हो वहाँ से शहर की सीमा शुरू होती है किंतु अब शहर स्टेशन को लांघ गए हैं। नदी शहर का आख़िरी छोर हुआ करता था किंतु अब शहर नदियों को पुल के माध्यम से पार कर चुके हैं। महीने का अंत आते-आते जेब से वेतन के पैसे खर्च हो

गए होते हैं और ऐसे में अगर कोई आ जाए तो बड़ी मुश्किल हो जाती है। किंतु अगर आने वाला कोई पुरुष नहीं महिला हो तो ऐसे में एक पुरुष अपने आप को किस तरह तैयार करता है ताकि उतने पैसे में भी इज्जत बची रहे और नाक भी न कटे, साथ ही साथ उस महिला की माँगों को भी पूरा कर सके। इन्हीं बातों को केंद्र में रखकर 'है ख़बर गर्म उनके आने की '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय की रचना की गयी है। 'मौन-एक रामबाण '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में मौन रहने की कला पर कटाक्ष करते हुए उन व्यक्तियों पर निशाना साधा है जो अपने को मौन रखकर विद्वान सिद्ध करते हैं। उन्होंने व्यंग करते हुए कहा है कि 'मौन 'तो महिलाओं की अदा है जो पुरुष को परास्त कर देती है।' आधुनिकता : एक सुविधाजनक स्थिति '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में इस बात पर व्यंग किया है कि आधुनिक दौर में लोग किस तरह से अपने मतलब के लिए विभिन्न आधुनिक मतों के प्रयोग से अपनी विद्वता और अपनी बुद्धिजीविता को दिखाते हुए अपना स्वार्थ साध रहे हैं। 'बसंती के रक्षक '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में एक लड़की बसंती की कहानी है जो अपनी माँ के साथ गाँव में अकेली रहती है। उसकी माँ किसी शादी में गुम हो गयी थी। रामलाल नाम का एक आदमी उसके घर के चक्कर लगाता है जिसकी वजह से गाँव के ही सत्तो और सल्लो (दोनों अकेले रहते हैं) उसके घर की चौकीदारी करते हैं और फिर दोनों एक साथ रहने लगते हैं। 'मुर्गबीती' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय अब्बास नामक एक दरोग़ा एवं उसके यहाँ के मुर्ग़ों की कहानी है। मुर्गा अपने बच्चों को खूब

साहसी और समाज में मुर्ग़ों का नाम रौशन करने की सीख देता है। किंतु अंत में दरोग़ा का खाना बनाने वाला आता है और उनमें से तीन चूज़ों को पकाने लेकर चला जाता है। इस व्यंग के माध्यम से शरद जी नें सीख दी है कि "सुखी समाज की स्थापना नयी पीढ़ी में आकांक्षाएँ और महान कल्पनाएँ जाग्रत करनें से नहीं अपितु उनके लिए जीने के अवसर विकसित करने से होंगी।"[25] 'सरकस का भोजन' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक कारखाने का मालिक सरकस देखने जाता है और देखने के बाद सरकस के मैनेजर से पूछता है कि वो इतने लोगों के भोजन की व्यवस्था वो कैसे कर लेता है? इस पर मैनेजर कहता कुछ गेहूँ (इंसान), कुछ गोश्त (शेर) और कुछ चारा (गाय, बकरी) खा लेते। घर आने पर कुछ नेता भूदान के लिए आने वाले कार्यकर्ताओं के लिए एक माह के भोजन के व्यवस्था की बात करते हैं। पर मैनेजर मना कर देता है क्योंकि सर्कस में काम करने वालों के लिए भोजन की व्यवस्था करना आसान था पर इन लोगों में सबको कुछ अलग-अलग खाना चाहिए। इसपर दूसरा नेता कहता है की श्रीमान आप इन भूदान करने वालों को भी सरकस करने वाला ही समझें। इस तरह शरद जी नें भूदान पर व्यंग किया है।' छत्तीसवीं ठंड '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में आज़ादी के छत्तीस सालों के बाद भी ठंड से ठिठुरते ग़रीबों की स्थिति का मार्मिक वर्णन किया है। आज भी वे महज़ अपने कानों को ही ढँककर जीवन यापन कर रहे और शाम की रोटी की व्यवस्था के लिए

[25] शरद जोशी; मुर्ग़ाबीती; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट २०८

कड़कड़ाती ठंड में पतले-झीने कपड़ों से तन ढँकते हुए अपने घर से निकल जाते हैं। ‘पुजारी ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक मंदिर में पुजारी ना होने पर ईश्वर और बदल चुके समाज (सामन्तवाद से पूंजीवाद) की स्थिति का वर्णन है। आजकल ईश्वर की पूजा के लिए पुजारी नहीं मिल सकता हालाँकि देश में बेरोज़गारों की एक लम्बी फ़ौज है। ईश्वर का मंदिर में बिना पुजारी रहने के ऊपर यह लेख लिखा गया है। ‘हम बहुत अच्छे ख़ानसामा हैं ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारत के उस वक्त का वर्णन है जब भारत के लोगों के पास अन्न की कमी थी और उस वक्त किसी विदेशी राष्ट्रपति के आगमन के लिए चल रही तैयारियों पर कटाक्ष करते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। ‘आम आदमी की ख़ासियत’ नामक अध्याय इस बात पर केंद्रित है की आम आदमी कितना आम होता है किंतु इसके बावजूद कभी-कभी ख़ास आदमियों की ज़रूरत के लिए आम आदमी कितना ख़ास बन जाता है।

‘इस तरह गुजरा जन्मदिन’ (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में जन्मदिन जैसे उत्सव पर विभिन्न प्रकार के बाह्य आडम्बरों पर प्रहार किया गया है। इन्होंने इस अध्याय में बताया गया है कि सामान्य व्यक्ति और एक प्रतिष्ठित व्यक्ति के जन्मदिन मनाने के तौर तरीक़े में किस तरह के बदलाव होते हैं तथा लोगों के द्वारा मिलने वाले उपहार में किस तरह की विभिन्नता होती है। हमारे यहां जन्मदिन के तारीख़ और सन् को लेकर जिस तरह का झूठ की परम्परा चली आ रही है उसका उल्लेख इन्होंने बड़े ही बेबाक़ और

धड़ल्ले से इस अध्याय में किया है। इस अध्याय में लिखा गया है कि जन्मदिन भी लोगों के लिए अवसर के रूप में होता है। अगर आप प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं तो लोग आपके घर पर आने के लिए बहाना ढूँढते हैं और तरह-तरह के उपहार लाना पसंद करेंगे, और आपसे अपेक्षा भी रखेंगे कि आपको उनका उपहार कैसा लगा। इसी संदर्भ में उन्होंने ज़िक्र किया है कि "अगर शेर के गले में किसी तरह फूल माला डाल दी जाय, तो वह हाथ जोड़कर कहेगा- मेरे योग्य सेवा? आशा है अगले चुनाव में आप मुझे ही मत देंगे।"[26] इन्होंने इस अध्याय में समाज में फैली मान्यताओं तथा मृत्यु पर तरह तरह की तरकीब बताने वालों पर भी टिप्पणी करते हुए कहते हैं कि-"जिजीविषा विकट शक्ति होती है।ख़ुशी से भी जीते हैं और रोते हुए भी जीते हैं"।[27] 'किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में देश में फैले विभिन्न प्रकार के जातिगत भिन्नता, क्षेत्रीयता, अंतर्जातीय तथा अलगाववादियों द्वारा देश की एकता एवं अखंडता को नुक़सान पहुँचाने वाले तत्वों एवं आंदोलनों पर कटाक्ष करते हुए देश के प्रति चिंता व्यक्त की है। इन्होंने देश के लोगों को देशप्रेम से ओतप्रोत तथा उनके अंदर मात्र भूमिपुत्र की भावना को लोकप्रिय करना चाहते हैं। उदाहरणस्वरूप दृष्टव्य है-"अब विराटता में असुरक्षा लगने लगी है, और संकीर्ण हो जाने में

[26] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ १३

[27] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ १४

सुरक्षा।"[28] 'दलित-कल्याण के कई ठेकेदार' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में वर्ण-व्यवस्था, वर्ग-व्यवस्था, शैक्षणिक संस्थानों में पदों का दुरुपयोग एवं पिछड़ी जातियों के लिए विशेष शिक्षण का प्रावधान का सही रूप में न पहुँच पाना तथा गरीब, पिछड़े छात्रों को छात्रवृत्ति योजना का लाभ न मिल पाना और अपने ही वर्गों के द्वारा हड़प लिया जाना तथा धर्म-परिवर्तन जैसे विभिन्न मुद्दों पर कटाक्ष किया गया है। दलित समाज के उत्थान के लिए किए गए प्रयासों तथा सामाजिक समानता के लिए आरक्षण व्यवस्था एवं विशेष सुविधाओं का प्रावधान कहाँ तक उचित है। इन विभिन्न मुद्दों पर सवाल उठाते हुए लिखते हैं कि लोक कल्याण की नीलामी किस तरह से इस देश में हो रही है तथा लोक कल्याण के कई ठेकेदार पैदा हो गए हैं जो असल में अपनी ही झोली भरने में लगे हुए हैं। सामान्यतः वर्ण-व्यवस्था और वर्ग-व्यवस्था को एक मान लिया जाता है पर ऐसा है नहीं। भारत में वर्ग-व्यवस्था का प्रभाव वर्ण-व्यवस्था से कहीं ज़्यादा दिखाई पड़ता है। भारत में वर्ग-संघर्ष है। प्रत्येक ऊँचा वर्ग अपने से नीचे वर्ग का शोषण करता है। "भारत में एक पूरा वर्ण अछूत है और सर्वहारा है। उसका शोषण होता है। पर ग़रीबी की रेखा के नीचे कई ब्राह्मण भी जीते हैं, वैश्य भी, क्षत्रिय भी। वर्ग वर्णों के आर-पार जाता है। शोषण करने वाला जाति नहीं देखता। वह सब जातियों का शोषण करता है। कारख़ाने का मालिक यह भेद नहीं करता कि ब्राह्मण, ठाकुर का कम शोषण करो, चमार का

[28] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ १६

ज़्यादा करो। व्यापारी यह ख़्याल नहीं करता कि ग्राहक किस जाति का है।"[29] 'अंधविश्वास से वैज्ञानिक दृष्टि' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में परसाई जी नें अंधविश्वास और वैज्ञानिक पद्धति पर विमर्श किया है कि व्यक्ति दुहरे व्यक्तित्व का होता है। वह पढ़-लिख कर भी अपनी परम्परा से जुड़ा हुआ है। इसीलिए वह वैज्ञानिक-दृष्टि से सम्पन्न नहीं हो पाता। एक तरफ़ वह डॉक्टर, इंजीनियर और वैज्ञानिक होने के बावजूद भी वह संस्कार में अंधविश्वास और अवैज्ञानिक पद्धति से जुड़ा है। "सोच वैज्ञानिक और आचरण अवैज्ञानिक। सोच भी अधबीच की। विज्ञान भी सही है और परम्परा से चली आती आस्था भी सही हो सकती थी।"[30] 'समस्याएँ और जादू-टोना' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में चिंता व्यक्त की गयी है कि संप्रदायिकता, जातिवाद, समाज-सुधारक, अन्तर्जातीय विवाह तथा दहेज विहीन शादी पर चलने वाले आंदोलन, राष्ट्रीय एकता पर दम्भ भरने वाले समूहों तथा सदाचार एवं नैतिकता सिखाने जैसी समस्याओं के हल के लिए तावीज़, जादू, टोना तथा तंत्र-मंत्र नें किस तरह कर्म का स्थान ले रखा है। इन्होंने कहा है कि लोग समस्याओं पर सिर्फ़ विचार करते हैं कर्म नहीं करते क्योंकि कर्म करने में मेहनत लगती है। लोग इंसान बनने से बेहतर फ़रिश्ता बनना ज़्यादा पसंद करते हैं इसीलिए अकर्म के नुस्ख़े को इजात कर लिए हैं।' ब्राह्मण से शूद्र तक '(ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में ब्राह्मणवादी

---

[29] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ २९

[30] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ ६२

सोच पर प्रहार किया गया है और साथ ही साथ प्राचीन वर्ण-व्यवस्था में किसी कार्य को सम्पन्न करने वालों का आधुनिक युग में उन कार्यों को सम्पन्न करने वाले लोगों से तुलना करते हुए इस आधार की रचना की गयी है। इस अध्याय में यह बताया गया है कि ब्राह्मणवादी व्यवस्था को कुछ लोगों नें अपने आर्थिक एवं सामाजिक हितों को ध्यान में रखते हुए बनाया था। 'दहेज और विवाहपूर्व आत्महत्या' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में पिता द्वारा दहेज न दे पाने की असमर्थता को समझते हुए युवतियों द्वारा की जाने वाली आत्महत्या को इस अध्याय का आधार बनाया है। अब तक ऐसा होता था कि विवाह के बाद ससुराल में तनाव होने, शोषण होने या फिर सम्बंध अच्छे ना होने की वजह से औरतें विवाहोपरान्त आत्महत्या करती थी किंतु दहेज का चलन बढ़ने की वजह से युवतियां अपने पिता की हालत देखते हुए यह समझती हैं कि उनके पिता दहेज देने में असमर्थ हैं। पिता पर स्वयं को बोझ मानते हुए आत्महत्या कर लेती हैं ताकि उनके पिता पर दहेज का आर्थिक बोझ न बढ़े। 'जहां दवा भी मर्ज बन जाती है '(आओ बैठ लें कुछ देर) नामक अध्याय में चंडीगढ़ के एक गोली कांड का वर्णन किया गया है जिसमें एक पुलिस कप्तान का अंगरक्षक, अंगरक्षक की पत्नी और बच्ची गोली का शिकार हो जाती हैं। वहीं पास में खड़े ले0 कर्नल दौड़ कर वहाँ पहुँचते हैं। कप्तान की उनसे कहा सुनी हो जाती है और कर्नल को ही पीट कर जेल में बंद कर दिया जाता है। इसी घटना के आधार पर श्रीलाल शुक्ल जी नें राजनीति के अपराधीकरण, पुलिस व्यवस्था, सरकारी व्यवस्था एवं न्याय

व्यवस्था जो अपराधियों को दंडित करने में सक्षम नहीं है आदि पर कटाक्ष किया है। जैसा कि अध्याय के नाम (जहां दवा ही मर्ज बन जाती है) से ही स्पष्ट है कि जिन्हें लोगों के कष्टों को दूर करना था वही लोगों के कष्ट का कारण बन गए हैं। 'औरत बनाम नारी' (आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में हिंदी साहित्य में औरत और नारी जैसे शब्दों से दो अलग तरह की महिलाओं को चित्रित करने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। जहां औरत शब्द एक सामान्य महिला का प्रतिनिधित्व करता है वहीं नारी शब्द एक संभ्रांत एवं एलीट महिला का प्रतिनिधित्व करता है। 'भक्तों के लिए एक व्यावहारिक सुझाव '(आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में मंदिरों एवं तीर्थ स्थलों पर बढ़ रहे जूता-चोरों की संख्या को ध्यान में रखते हुए भक्तों को सलाह दी गयी है कि वे दर्शन करने जूता-चप्पल गाड़ियों में ही छोड़ कर जाएँ या फिर नंगे पाँव जाए। श्रीलाल शुक्ल नें यह सुझाव दिया है कि भक्तगण तीर्थ-स्थलों की यात्रा के पूर्व यह सुनिश्चित करें कि उनके पास एक गाड़ी हो जिसमें जूते-चप्पल रख सकें या फिर उनके पास इतनी आस्था हो कि वे नंगे पाँव यात्रा कर सकें। 'भ्रष्टाचार और शिष्टाचार का घालमेल' (आओ बैठ ले कुछ देर) अध्याय में भ्रष्टाचार को शिष्टाचार से करने पर प्रहार किया गया है। अर्थात् लोग सीधे-सीधे भ्रष्टाचार नहीं करते हैं। बस अपने फ़ायदे के लिए किसी नेता या राजनेता का दामाद बन बैठते हैं। फिर वह नेता शिष्टाचारवश अपने दामाद के फ़ायदे के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। 'होरी और उन्नीस सौ चौरासी '(कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय

प्रेमचंद के प्रसिद्ध उपन्यास 'गोदान 'के पात्र होरी को वर्ष १९८४ की पृष्ठभूमि में रखते हुए तमाम सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक विसंगतियों पर प्रहार किया है। 'बहस जारी रहेगी: मै भी शामिल हूँ' (कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) में देश में व्याप्त तमाम समस्याओं के निदान को केन्द्र में रखते हुए भारतीय शासन व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। 'फावड़ा बनाम हवाईजहाज '(कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय में असामाजिक तत्वों और सरकार के रवैए के ऊपर कटाक्ष किया गया है। 'पूड़ी सब्ज़ी प्रोग्राम, श्रीराम भक्ति, आलू आदि '(कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय में श्रीराम जन्म-भूमि के विवाद पर हो रही गोष्ठी और उसमें आए हुए किसानों को आधार बनाकर व्यंग्य रचना की गयी है। 'गाँव से शहर की ओर क्यों? क्या महत्वकांक्षा के कारण? '(कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में) अध्याय में ग्रामीण क्षेत्र में निवास करने वाले लोगों का शहरों की तरफ पलायन करने के कारणों का विवरण दिया गया है। 'प्रतियोगिता का सुपरहिट मुक़ाबला '(दाँत में फँसी कुर्सी) अध्याय में आरक्षण के ऊपर प्रहार करते हुए व्यंग्य किया गया है। 'और वे देसी खाते '(दंगे में मुर्ग़ा) में उस समय का विवरण है जब गाँवो में सिर्फ़ पोस्ट ऑफ़िस ही बैंकिंग सेवाएँ देता था और वो भी अपने प्रारम्भिक अवस्था में। ज्ञान चतुर्वेदी जी नें व्यंग्य के रूप में उस समय की तुलना ऐसे समय से की है जब लोगों के स्विस बैंक में खाते होते हैं। कहाँ एक समय था जब जरूरतमंद लोगों के मेहनत से कमाए 10 रुपए खाते में जमा नहीं होते थे और होते भी थे तो कई बार चक्कर लगाने

के बाद। उसपर भी ज़रूरत पड़ने पर उसे निकलना बहुत ही मुश्किल काम। और एक ऐसा समय आ गया है जब लोगों के स्विस बैंक जैसे विदेशों में खाते होते है और उनमें वे आसानी से अपनी काली जमा-पूँजी रख सकते हैं।

प्रशासनिक व्यंग्य-

इस दौर में राजनीतिक अस्थिरता की वजह से प्रशासनिक विसंगतियाँ भी उभरकर सामने आयी। प्रशासन के पाटों के बीच आम जनमानस पिस रहा था। इस युग में आम आदमी नौकरशाहों की प्रवृत्ति एवं रवैए से त्रस्त था। यही वजह है कि इस युग में प्रशासनिक भ्रष्टाचार को केंद्रीय विषय बनाते हुए अनेक व्यंग्यों की रचना की गयी है। 'लल्लू-युग-एक परिचर्चा' (खम्भों के खेल) अध्याय में लल्लू अर्थात् अनपढ़ आवारा लोगों पर वैज्ञानिक, खिलाड़ी, अफ़सर एवं कर्मचारी चयन आयोग के चेयरमैन से प्रश्न पूछे जाने पर उनके विचारों को आधार बनाकर व्यंग्य रचना की गयी है। 'खंभातंत्र बनाम प्रजातंत्र '(खम्भों के खेल) में सरकारी कार्य-प्रणाली की दुर्व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। 'खाने-खिलाने का राष्ट्रीय शौक़ '(दाँत में फँसी कुर्सी) एक प्रशासनिक व्यंग्य है जिसमें प्रशासन में व्याप्त भ्रष्टाचार के ऊपर प्रहार किया गया है। 'पशुपालन विकास के लाभ '(दाँत में फँसी कुर्सी) भी एक प्रशासनिक व्यंग्य है जिसमें प्रशासन में शामिल लोग किसी योजना से किस तरह लाभान्वित होते हैं उस पर व्यंग्य किया गया है। 'सचिवालय और हिमालय '(फाइल पढ़ि पढ़ि) में प्रशासनिक

व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था जहां हिमालय की तरह विशाल है वहीं हिमालय की चढ़ाई की तरह प्रशासनिक व्यवस्था का कार्य कठिन और दुर्गम है। 'कुर्सी कूलर और कबूतर '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में प्रशासनिक-कार्य, व्यवस्था के अंतर्गत किस तरह से सम्पन्न किए जाते हैं इस पर व्यंग्य किया है। 'सफ़ाई और स्वच्छ प्रशासन ' (फाइल पढ़ि पढ़ि) में प्रशासनिक व्यवस्था में कार्य कैसे स्थगित किया जाता है इस बात पर व्यंग्य करते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। 'बिन ट्रेनिंग सब सून '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में सरकारी कर्मचारियों की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है इसके लिए गोपाल जी नें 'कर्मचारियों के लिए वेलफ़ेयर के बाद ही जनता का नम्बर आएगा 'पंक्ति द्वारा कटाक्ष किया है। 'सरकार और चूहा '(फाइल पढ़ि पढ़ि) में गोपाल जी नें दफ़्तरशाही की कमियों और उन कमियों को न स्वीकार करने की प्रशासनिक व्यक्तियों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया है। 'देश फ़ाइलों का दर्पण है '(फाइल पढ़ि पढ़ि) में गोपाल जी नें व्यंग्य करते हुए कहा है कि प्रशासनिक व्यवस्था में व्यक्ति किस तरह एक काग़ज़ का टुकड़ा मात्र होकर रह जाता है, उसका व्यक्तिगत अस्तित्व इन्हीं काग़ज़ के टुकड़ों पर निर्भर होता है। 'सरकार रफ़्तार और साइकिल '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में गोपाल जी नें सरकारी व्यवस्था की प्रक्रिया और उसमें लगने वाले समयावधि पर व्यंग्य किया गया है। 'सर और साकार दृष्टिकोण '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में दफ़्तरीय व्यवस्था और सरकारी अफ़सरों के व्यवहार पर प्रहार करते हैं। 'राजभाषा विधेयक

१९९० '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में विभागीय वरिष्ठता पर शर्मा जी नामक पात्र द्वारा प्रहार करते हैं। 'विशेषज्ञ क्रिकेट और प्रशासन '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था को इंग्लैंड की प्रशासनिक व्यवस्था से जोड़ते हुए और गांधीवादी आदर्शों को लेते हुए भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था पर व्यंग्य किया गया है। 'काग़ज़ और चूहा ' (फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय को गोपाल जी नें पत्र का रूप देकर विभागीय कार्य की जटिलता पर प्रहार किया गया है। 'पशु पालन विकास '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में गोपाल जी नें विभागीय कार्य को टालने की प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। 'अफ़सर प्रमोशन और उल्लू '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय एक सरकारी अधिकारी की दिनचर्या को आधार बनाकर सरकारी व्यवस्था पर कटाक्ष किया गया है। 'खेल-खेल में प्रशासन' (फाइल पढ़ि पढ़ि) में गोपाल जी नें आज़ादी के समय की भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था का वर्तमान भारतीय प्रशासनिक व्यवस्था से तुलना कर वर्तमान प्रशासनिक व्यवस्था की आलोचना की है। 'एक और मौत' (फाइल पढ़ि पढ़ि) में भारतीय मंत्रालय में कार्य करने वाले अफ़सरों की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। 'पेंशन, पंचायत और प्रशासन' (फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में पत्र को माध्यम बनाकर विभागीय व्यवस्था पर प्रहार करते हैं। वहीं 'लोककला के टीलोरामा और जिंगलपोली '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में ज्ञान चतुर्वेदी जी नें यह दर्शाया है कि किस तरह अफ़सर लोककला और लोकसंस्कृति के नाम पर प्रधानमंत्री एवं सरकार के समक्ष अपनी शेखी

बघारने के लिए अपने क्षेत्र से किसी भी ऐरे-ग़ैरे को लोककला एवं लोकसंस्कृति का वाहक घोषित करते हुए दिल्ली में उनका कार्यक्रम करवाते हैं। वास्तव में ना ही उन कलाकारों एवं ना ही उन अफ़सरों को कला और संस्कृति के बारे में कोई जानकारी नहीं होती। अफ़सरों का एकमात्र उद्देश्य होता है कि वो सरकार की नज़र में खुद को लोकसंस्कृति और लोककला का संरक्षक घोषित कर सकें। ज्ञान चतुर्वेदी जी नें इस अध्याय में इस बात पर ज़ोर दिया है कि कार्यक्रम के नाम पर जितना व्यय किया जा रहा उतने में आदिवासियों की स्थिति में काफ़ी सुधार लाया जा सकता है। 'पशु प्रेम प्रोजेक्ट '(दंगे में मुर्ग़ी) नामक अध्याय में पाठकों को इस बात से अवगत कराने का प्रयास किया गया है कि किस तरह नौकरशाह ऊल-जुलूल प्रोजेक्ट चलाकर सरकार से पैसे ऐंठने और जनता को बेवक़ूफ़ बनाने का कार्य करते हैं। ऐसे प्रोजेक्ट भले ही फ़ालतू क्यों ना हों अथवा उनकी आवश्यकता भले ही ना हो या हो भी तो भले ही उसका परिणाम कुछ ना निकले किंतु अफ़सरों की जेब ज़रूर गर्म हो जाती है। सरकारी-तंत्र में व्याप्त जी-हुजूरी, भ्रष्टाचार एवं उस तंत्र में शामिल लोगों के बेटों के रौब पर केंद्रित करते हुए लिखा गया है। इस अध्याय का नाम 'रेलवे में फादर 'रखते हुए रेलवे में व्याप्त इसी प्रवृत्ति का अंकन किया गया है।किंतु साथ ही इन्होंने "लगभग हर सरकारी-तंत्र" की बात भी की है। किसी भी सरकारी-तंत्र में शामिल व्यक्ति का बेटा भी उस तंत्र में किसी ना किसी तरह शामिल हो ही जाता है, जिसकी वजह से उसका रौब आम आदमियों पर खूब चलता।

क्यूँकि प्रायः यह मान लिया जाता है कि आज नहीं तो कल यह शामिल हो ही जाएगा। 'पुलिया, गरम बोनट और बकरियाँ '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में एक पुरानी सी बस जिसकी स्थिति दयनीय है जिसे सवारी ढोने के काम में जबरदस्ती लगाया गया है के आधार पर व्यंग्यात्मक रूप में सरकार, उसे चलाने वाले एवं अफ़सरशाही पर कटाक्ष किया गया है। बस की स्थिति इतनी ख़स्ताहाल है कि उसे उसके मालिक के अलावा चला पाना किसी के बस की बात नहीं। उसमें ब्रेक नहीं पर पर जाने कैसे कहीं भी टकराने के पूर्व रुक जाती है, इस कारण को उसका मालिक भी नहीं समझ पाता। यहाँ पर बस की तुलना तात्कालिक भारत और उसे चलाने वाली सरकार एवं नौकरशाहों से की गयी है। 'देश, क़ानून एवं किशोरीबाबू' (दंगे में मुर्ग़ा) एक भ्रष्ट रिश्वतखोर स्थानीय मजिस्ट्रेटी के मुंसिफ़ की कहानी है। जो सर्टिफ़िकेट बनाने के लिए रुपयों की माँग करता अन्यथा सरकारी प्रक्रियाओं (जिसके बहुत अधिक समय लगता और कई चक्कर लगवाया जाता) से होते हुए सर्टिफ़िकेट बनाने की बात कहता। इस अध्याय में सरकारी दफ़्तरों में व्याप्त भ्रष्टाचार पर व्यंग्य किया गया है। और अंत में ज्ञान चतुर्वेदी जी ने सभी भारतीयों को सचेत करते हुए लिखा है "मुझे आश्चर्य हुआ। शहर अभी भी जीवित था। देश अभी भी चल रहा था। किशोरी बाबू के होते हुए यह देश जीवित था। परंतु कब तक जीवित रह पाएगा यह देश? अगर किशोरी बाबू जीवित रहे तो बहुत दिनों तक नहीं। हमें तय करना होगा कि देश और किशोरी बाबू में से किसे ज़िंदा रखना है।

जितनी जल्दी तय करें, अच्छा है। मरीज़ की हालत ठीक नहीं।"[31] 'न्याय और रोज़ी रोटी '(गणतंत्र का गणित) अध्याय में रामलुभाया की कोठरी में कोई जबरजसती ताला लगा कर अपना दावा ठोंकता है। रामलुभाया न्याय की फ़रियाद को लेकर दरोग़ा के पास जाता है। इसी विषय को आधार बनाते हुए त्यागी जी नें वर्तमान के पंचायत व्यवस्था, न्याय व्यवस्था एवं पुलिस व्यवस्था पर प्रहार किया है। 'सरकारी काम न करने के क़ायदे' (इतिहास का शव) अध्याय में सरकारी या प्रशासनिक पदों पर कार्यरत उच्च अधिकारियों एवं कर्मचारियों के कार्य न करने के तरीक़े के ऊपर इस अध्याय की रचना की गयी है। इस अध्याय में त्यागी जी ने सात नुस्ख़े बताए है जिनके आधार पर कार्य को टाला जा सकता है या कार्यों को करने से बचा जा सकता है। इसी संदर्भ में वे लिखते हैं कि इन सात नुस्ख़ों के आधार पर "अफसरशाही नौकरी के सातों समंदर पार कर सकते हैं। ये चीज़ें जो हैं वे तो जाति, धर्म, प्रांतीयता, आपके पिता के हैसियत, और आपकी निजी पत्नी के रूप और चरित्र पर निर्भर है।"[32] 'देश की पुलिस सुधर रही है '(चंपाकली) अध्याय में देश के विभिन्न भागों में पुलिस पर एवं पुलिस द्वारा होने वाले हमलों का ज़िक्र करते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। पुलिस द्वारा हत्या, लूट एवं क़ानून का पालन न करने की प्रवृत्ति पर त्यागी जी नें कटाक्ष किया है। 'लेखक आयोग की नियुक्ति: एक ऑफ़िस नोट '(शुक्लपक्ष) नामक

[31] ज्ञान चतुर्वेदी; दंगे में मुर्ग़ा; किताब घर प्रकाशन; नई दिल्ली; १९९८; पृष्ट ९२

[32] रवीन्द्रनाथ त्यागी; इतिहास का शव; राजकमल प्रकाशन; पृष्ट १३

अध्याय एक ऑफ़िस नोट लिखने की शैली में एक काल्पनिक लेखक आयोग की नियुक्ति पर व्यंग्य करता है। 'टाटपट्टी पर उकड़ूँ बैठें...' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में सरकारी स्कूलों की स्थिति, उसके अध्यापकों की स्थिति पर व्यंग्य किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में एक स्कूल का विवरण है जिसका अध्यापक अपने तबादले को रुकवाने के लिए अफ़सरों की जेब गर्म कर के अभी-अभी आया है और स्कूल की टूटी कुर्सी पर इस सुकून के साथ बैठा है कि तबादले की तलवार अभी कुछ दिनों तक उसके ऊपर नहीं चलेगी। बच्चे इस उम्मीद से उसकी तरफ़ देख रहे हैं कि शायद उन्हें बैठने के लिए कम से कम टाटपट्टी मिलेगी। पर अध्यापक को कोई जल्दी नहीं, क्योंकि उसे पता है कि अभी बारिश शुरू होने पर स्कूल की "छत और बिना पल्ले की खिड़कियों के कारण स्कूल की फ़र्श (उसे फ़र्श कहना फ़र्श का अपमान है) बरसात के पानी से गीली हो जाएगी।"[33] जिसकी वजह से स्कूल में छुट्टी हो ही जाएगी। 'आलोच्य वर्ष की उल्लेखनीय रिपोर्ट '(यत्र तत्र सर्वत्र) का केंद्रीय विषय अधिकारियों द्वारा वर्ष के अंत में भेजी जाने वाली रिपोर्ट है। इस रिपोर्ट में अधिकारी किस तरह से अपने-अपने प्रतिवेदनों को उल्लेखनीय बनाने में जुटे रहते हैं। धरातल पर स्थिति चाहे जैसे हो किंतु प्रतिवेदनों में स्थिति को बहुत सुंदर कर दिया जाता है, सिर्फ़ पैसे की कमी को ही एक मात्र बाधा बताया जाता ताकि अगले वर्ष उनके निजी खातों में इज़ाफ़ा हो सके। 'साक्षात्कार: लोकसेवा आयोग का' (कुछ जमीन पर कुछ

[33] शरद जोशी; टाटपट्टी पर उकड़ूँ बैठे...; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट ३०

हवा में) अध्याय में लोकसेवा आयोग में चल रहे साक्षात्कार को केंद्र में रखकर इस अध्याय की रचना की गयी है। 'स्वामी से भी ज़्यादा स्वामिभक्त' (कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में एक मंत्री और एक प्रशासक को आधार बनाकर प्रशासन में व्याप्त लोलुपता पर प्रहार किया गया है। 'फरमाबरदारी, वफादारी और खिदमत '(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) नामक अध्याय में शासकों और प्रशासकों के बीच की आपसी गठबंधन को आधार बनाकर इस प्रशासनिक व्यंग्य की रचना की गयी है।

साहित्यिक व्यंग्य-

इस युग में साहित्य और साहित्यकारों के संदर्भ में अनेक विसंगतियाँ देखने को मिलती हैं। इन्हीं विसंगतियों को ध्यान में रखते हुए अनेक साहित्यिक व्यंग्यों की रचना भी इस युग में की गयी। 'एक और रस-बुद्धि रस' (खम्भों के खेल) में एक कॉफ़ी हाउस में हो रही बातचीत को आधार बनाकर साहित्य एवं साहित्य रस के ऊपर साहित्यिक व्यंग्य किया गया है। 'न पढ़ने के पक्ष में '(खम्भों के खेल) अध्याय एक साहित्यिक व्यंग्य है जिसमें लेखक अन्य लेखकों की रचनाओं को न पढ़ने के महत्व को व्यंग्यात्मक ढंग से बताता है और कटाक्ष करते हुए कहता है कि अन्य लेखकों की रचनाओं को ना पढ़ने से अपनी रचनाओं में मौलिकता बनी रहती है।' साहित्य का इकलौता दलित '(दाँत में फँसी कुर्सी) एक साहित्यिक व्यंग्य है जिसमें सामाजिक विषमता के साथ-साथ मनोवैज्ञानिक विषयों पर भी चुटकी ली गयी है। 'लाल आँख के फ़ायदे '(दाँत में फँसी कुर्सी) एक साहित्यिक व्यंग्य है

जिसमें एक कवि के आँख उठ आने पर वह सबको धमकी के लहजे में लेखक से कहता है कि अब जो कोई मेरी कविता नहीं सुनना चाहेगा उसके सामने काला चश्मा उतार दूँगा और वह स्वयं एक हफ़्ते परेशान रहेगा। 'शोध, सुधार और साहित्यकार '(दाँत में फँसी कुर्सी) नामक अध्याय एक अकादमिक व्यंग्य है जिसमें शोध, शोधकर्ताओं और शोध-निर्देशक पर प्रहार करते हुए शोध के क्षेत्र में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार किया गया है। 'कविता की कूड़ा विधि '(दाँत में फँसी कुर्सी) एक साहित्यिक व्यंग्य है जिसमें कवियों द्वारा स्तर-विहीन कविता लिखने के ऊपर प्रहार किया गया है। 'देशभक्ति के गीत '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में ज्ञान जी नें वर्तमान गीत लेखकों पर प्रहार किया गया है एवं यह कहा गया है कि वे मात्र वैसे ही गीत लिख रहे हैं जैसे गीत लिखकर उन्हें आमदनी हो जाए। अब वे गीतकार नहीं रहे जो देशभक्ति में डूबे हुए गीत लिखते थे और जिनके गीत अमर हो जाते थे। और साथ ही साथ अब सुनने वाले भी नहीं रहे जो देशभक्ति गीत सुने। अब कोई अगर कुछ अवसरों को छोड़कर (स्वतंत्रता दिवस एवं गणतंत्रत दिवस जैसे कुछ अन्य अवसर) देशभक्ति गीत सुनता भी है तो सामने वाले को लगता कि उसका स्वास्थ्य ठीक नहीं है। 'हिंदी में मनहूस रहने की परम्परा '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में हिंदी साहित्य के आधुनिक रचनाकारों की भाव-भंगिमा पर कटाक्ष किया गया है। प्रायः हिंदी के साहित्यकार इतने गम्भीर होते हैं की वे मनहूस लगने लगते हैं। इसी बात को इस व्यंग्य अध्याय का आधार बनाया गया है। गम्भीर होने में वे इतने

मशगूल होते की हँसने को वे पाप समझने लगते हैं और गम्भीर होकर वे खुद को विचारशील साबित करने का प्रयास करते रहते। ऐसे ही साहित्यकारों पर कटाक्ष करते हुए ज्ञान जी नें इस व्यंग्य की रचना की है। 'क्रिकेट के बहाने एक काव्य गोष्ठी '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में ऐसे कवियों पर निशाना साधा है जिनको कविता पाठ के लिए अवसर की निरंतर तलाश रहती है, जिनके लिए कविता पाठ और काव्य गोष्ठी वैसे ही है जैसे शराबी के लिए शराब और मदिरालय। ऐसे कवियों को जब कई दिनों तक कोई अवसर नहीं मिला तो उन्होंने भारत-पाकिस्तान के बीच खेले जा रहे क्रिकेट पर काव्य-गोष्ठी आयोजित करने का फ़ैसला किया। इस अध्याय में ऐसे कवियों की गँवई (ग्रामीण) राजनीति को भी दिखाया गया है, उदाहरण के लिए गोष्ठी का अध्यक्ष नवनीत चौबे को महज़ इस आधार पर चुना गया क्योंकि उनकी छत पर गोष्ठी का आयोजन किया गया था। ठाकुर साहब की वीर रस की कविता महज़ इस लिए सबसे सफल होती है क्यूँकि उनके जेब से तमंचा बाहर झांक रहा होता है। इसी को आधार बना कर इस अध्याय की रचना की गयी है। 'चम्पाकली '(चंपाकली) नामक अध्याय में त्यागी जी नें हिंदी साहित्य में शृंगारपरक रचनाओं एवं नखशिख वर्णनों का उल्लेख करते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'पूरब खिले पलाश '(पूरब खिले पलाश) अध्याय में हिंदी साहित्य के काव्य विधा के ऊपर व्यंग्य किया गया है। हिंदी काव्य में हर दिशा को किसी एक गतिविधि से जोड़ते हुए उसका उल्लेख अक्सर उसी गतिविधि के रूप में

देखने को मिलता है, उदाहरण के लिए 'दक्षिण फूले कास पिया 'एवं दक्षिण से छुट्टी मिलेगी।'हमारे साहित्य में पक्षियों का योगदान '('पूरब खिले पलाश') अध्याय में हिंदी साहित्य की काव्य विधा के अंतर्गत पक्षियों का सहारा लेने की कवियों की प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। हिंदी साहित्य के अधिकतर काव्यों एवं महाकाव्यों में पक्षियों का कोई न कोई ज़िक्र अवश्य देखने को मिलता है चाहे वह प्रथम श्लोक (क्रौंच पक्षी के आधार पर) की बात हो या फिर रामायण के जटायु की। आधुनिक काल में तो किसी भी प्रेम को तब तक पूरा नहीं माना जा सकता जब तक किसी पक्षी का ज़िक्र न हो रहा हो। इसी संदर्भ में जायसी के हीरामन नामक तोते का भी उल्लेख किया जा सकता है। 'हिंदी साहित्य में आलोचना की अंत्येष्टि '('पूरब खिले पलाश') नामक अध्याय में हिंदी साहित्य में आलोचना के स्तर के गिरने पर खेद व्यक्त किया गया है। इसी कड़ी में वे आलोचकों एवं लेखकों के गुटबंदी करने एवं प्रयाग के पंडों से ख़फ़ा होते हुए उन्हें साहित्य आलोचना के गिरते स्तर के लिए पूर्ण रूप से ज़िम्मेदार माना है। 'समानधर्मा '('पूरब खिले पलाश') अध्याय में प्रतिभाहीन साहित्यकारों को आधार बनाते हुए उनके आततायी एवं आतंकवादी बनने के साथ आवारा बनने एवं फिर लोगों पर अपना प्रभाव इस तरह से डालना की उनका मसीहा बन जाने की घटना को आधार बनाकर इस अध्याय की रचना की गयी है। इस अध्याय में त्यागी जी नें 'जो कुछ नहीं करते वे मसीहा या आततायी बन जाते हैं 'उक्ति के आधार पर व्यंग्य करते हैं। 'हिंदी साहित्य सम्मेलन: प्रयाग या इलाहाबाद '

(बादलों का गाँव) अध्याय में सन् १९१० में स्थापित संस्थान हिंदी साहित्य सम्मेलन जो कि वर्तमान प्रयागराज में स्थित है, के ऊपर अध्याय रचना की गयी है। उक्त अध्याय में हिंदी साहित्य के तमाम लेखकों एवं संस्थान से उनके सम्बन्धों, उनके पत्र लेखों आदि का इस अध्याय में विवरण मिलता है। 'लाल-पीले फूल '(लाल-पीले फूल) रवीन्द्र नाथ त्यागी जी का एक साहित्यिक व्यंग्य है। आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी की रचना 'अशोक के फूल 'को ध्यान में रखते हुए अशोक के लाल फूलों से कनेर के पीले फूलों को प्रतीकात्मक रूप से तुलना करते हुए इस व्यंग्य की रचना की गयी है। रवीन्द्रनाथ त्यागी जी कहते हैं की द्विवेदी जी को लाल फूल पसंद थे किंतु मुझे तो पीले फूल पसंद हैं। फिर त्यागी जी लाल और पीले फूलों और रंगो की महत्ता का तुलनात्मक विवरण देते हुए अध्याय में व्यंग्य करते हैं। 'हमारी राजभाषा '(लाल-पीले फूल) अध्याय में त्यागी जी नें भारत में हिंदी भाषा और हिंदी भाषा के प्रचार-प्रसार के लिए गठित आयोग के निकम्मेपन पर प्रहार करते हुए इस अध्याय की रचना करते हैं। त्यागी जी कहते हैं कि राजभाषा आयोग के सदस्य महज़ अपने घूमने-फिरने, सरकारी ख़ज़ाने पर ऐश करने में लिप्त हैं। उनका राजभाषा के प्रसार से कोई वास्ता नहीं है।'पुराने जमाने की नायिका' (शुक्लपक्ष) अध्याय में लेखकों द्वारा नायिकाओं के आदर्श चित्रण को आधार बनाकर व्यंग्य किया गया है। 'कर्मों का बंधन और गीतगोविन्द' (शुक्लपक्ष) नामक अध्याय साहित्यिक व्यंग्य एवं प्रशासनिक व्यंग्य दोनो को आधार बनाकर दफ़्तर में कार्य न करने की

प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। 'पन्त के दो सौ पत्र बच्चन के नाम' अध्याय में पन्त और बच्चन के बीच के मुक़दमे को आधार बनाकर एक साहित्यिक व्यंग्य रचना की गयी है। 'विद्यापति की नायिका' (शुक्लपक्ष) अध्याय में नायक और नायिका के प्रेम चित्रण पर व्यंग्य किया गया है। 'हिंदी साहित्य में शोध: कुछ सुझाव' (शुक्लपक्ष) नामक अध्याय में हिंदी साहित्य पर हो रहे शोध के गिरते हुए स्तर को आधार बनाकर व्यंग्यात्मक ढंग से कुछ सुझाव दिए गए हैं। 'भूमिका-प्रसंग' (शुक्लपक्ष) अध्याय की रचना रचनाओं के प्रारम्भ में लिखी गयी भूमिका को आधार बनाकर की गयी है। इस अध्याय में व्यंग्यात्मक ढंग से भूमिका लिखने की कला पर प्रहार किया गया है। 'एक दिलचस्प काव्य चर्चा' (शुक्लपक्ष) नामक अध्याय में विभिन्न काव्यों को चर्चा का आधार बनाकर एक व्यंग्यात्मक चर्चा की गयी है। 'शरतचंद्र-विनोद' (शुक्लपक्ष) नामक अध्याय में शरतचन्द्र चटर्जी के अफ़ीम खाने की आदत को लेकर व्यंग्य रचना की गयी है। "शरत् जी नें अपने मित्रों से पूछा, 'जेल में अफ़ीम खायी जा सकती है या नहीं?' जब उनके मित्रों नें नकारात्मक उत्तर दिया तो उन्होंने बड़ी गम्भीरता से कहा, 'जान पड़ता है जेलखाना जो है वह शायद भद्र पुरुषों के रहने के लिए बना ही नहीं है।"[34] 'सिंदबाद की अंतिम यात्रा' (शुक्लपक्ष) अध्याय में सिंदबाद की एक काल्पनिक यात्रा को आधार बनाकर साहित्यिक व्यंग्य रचना की गयी है। हिंदुस्तान की धरती पर जहां उसे हर व्यक्ति साहित्यकार मिलता है और

[34] रवीन्द्रनाथ त्यागी; शुक्ल पक्ष; शरतचंद्र-विनोद अध्याय से; कल्पतरु प्रकाशन; दिल्ली; १९९४; पृष्ठ ६२

सभी सिंदबाद को अपनी रचनाओं को सुनाने के लिए अधीर दिखाई देते हैं। इस यात्रा में सिंदबाद अपनी जान बचाकर भागता है और प्रण करता है कि वह फिर इस साहित्यकारों की धरती पर वापस नहीं आएगा। 'रीतिकाव्य में दूध-दही की चर्चा' (शुक्लपक्ष) अध्याय में रीतिकालीन कवियों द्वारा नायिकाओं की तुलना दूध एवं दही से करने की प्रवृत्ति को लेकर इस अध्याय की रचना की गयी है। 'संस्कृत साहित्य में नारी: एक शोध प्रबंध' (शुक्लपक्ष) अध्याय में शोधपरक व्यंग्य की झलक देखने को मिलती है। इस अध्याय में एक शोधार्थी के शोध-प्रबंध निर्माण को आधार बनाते हुए व्यंग्य रचना की गयी है। इस शोध-प्रबंध का विषय संस्कृत साहित्य में नारी के चित्रण को बनाया गया है। उक्त शोध-प्रबंध के माध्यम से त्यागी जी नें शोध क्षेत्र में व्याप्त तमाम विसंगतियों को उजागर करने का प्रयास किया है। 'कवि कालीदास का जन्मस्थान' (शुक्लपक्ष) नामक अध्याय में साहित्य में कालीदास के जन्मस्थान के सम्बंध में व्याप्त विभिन्न मतों के आधार बनाकर इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'हिंदी साहित्य में आलोचना की अंत्येष्ठी' (शुक्लपक्ष) नामक अध्याय में हिंदी साहित्य में आलोचना के गिरते महत्व एवं साहित्यकारों द्वारा आलोचना की विधा को हाशिए पर रखने की प्रवृत्ति के ऊपर प्रहार करते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। 'अच्छी हिंदी' (शुक्लपक्ष) अध्याय में हिंदी भाषा के शब्दों को आधार बनाते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। साथ ही साथ इस अध्याय में हिंदी भाषा में शामिल अन्य भाषाओं के शब्दों के ऊपर भी प्रहार किया गया है।

‘पचास साल बाद-शायद’ (यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में भारत और हिंदी साहित्य के पिछड़ेपन पर व्यंग किया गया है। उन्हीं के शब्दों में “फ़िलहाल जो स्थिति है उसे आप प्रागैतिहासिक क़रार दे सकते हैं। किताबें छपती नहीं, छपती हैं तो बिकती नहीं, बिकती हैं तो पढ़ी नहीं जाती, पढ़ी जाती हैं तो वे पसंद नहीं की जाती, पसंद की जाती हैं तो सस्ती और सतही होती हैं, जिन्हें ना छापा जाए इसकी माँग करनेवालों की बड़ी संख्या है, जो उसे पुस्तक ही नहीं मानते”।[35] इसी तरह शरद जोशी जी नें कहा है की हिंदी साहित्य का लेखक निहायत ख़ाली और निरीह माना जाता है। यही हाल पढ़ने वालों का भी है। शायद पचास साल बाद जब सभी देश किताबों को फेंकने लगेंगे तब जाकर भारत में किताबों का चलन प्रारंभ होगा, कुछ ऐसी आशा के साथ शरद जोशी जी नें इस अध्याय का अंत किया है।‘कवि और कन्याएँ ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में कवियों और उनकी कविताओं के कन्याओं से सम्बंधित होने पर व्यंग किया गया है और बताया गया है कि कन्याएँ इन कवियों को एक भाव प्रदान करती हैं। अगर पत्नी है तो स्थायी भाव और अगर अन्य कोई कन्या है तो अस्थायी भाव प्राप्त होता है जिसके आधार पर इन कवियों की कविताओं का निर्माण होता है। ‘ढ ’ढक्कन का ’ (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में हिंदी वर्णमाला के अक्षर ‘ढ ’को केंद्र में रखते हुए इस व्यंग्य की रचना की गयी है। ‘आलसी की डायरी ’(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक आलसी द्वारा डायरी लिखने पर व्यंग किया

[35] शरद जोशी; पचास साल बाद - शायद; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ठ ९

गया है। जहां लोग अपने दिन प्रतिदिन किए जाने वाले कार्यों का ब्योरा अपनी डायरी में लिखते हैं वही एक आलसी के लिए दिन भर का सबसे बड़ा कार्य डायरी लिखना ही होगा। 'दुबली मोटी किताबें '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में हिंदी साहित्य में मोटे उपन्यासों को लिखने की परम्परा पर शरद जी नें तंज किया है। जब से पॉकेट बुक का दौर आया तब से लम्बे उपन्यासों को या तो काट-पीट कर छोटा किया गया या फिर लम्बी कहानियाँ लिखी गयीं या फिर कहानियों को ही अनावश्यक रूप से लम्बा किया गया। हिंदी साहित्य में आए इसी नए बदलाव पर प्रहार करते हुए शरद जी ने यह अध्याय लिखा है। 'प्रेमचंद के बासी आलोचक '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें ऐसे आलोचकों पर निशाना साधा है जो प्रेमचंद को किसी अन्य साहित्यकार से तुलना करते हुए आलोचना करते हैं या फिर प्रेमचंद से ज़्यादा उनके युग पर चर्चा करते हैं। ऐसे आलोचक सिर्फ़ प्रेमचंद से ही सम्बंधित नहीं हैं वरन् सभी बड़े-बड़े साहित्यकारों से सम्बंधित आलोचकों के संदर्भ में ऐसा कहा जा सकता है। 'साहित्य-गोष्ठी में पुलिसवाला '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में वर्मा जी नाम का एक सब-इन्स्पेक्टर है जिसकी कहानियाँ स्तर-विहीन हैं। किंतु उसे अपनी कहानियों की बेइज़्ज़ती बर्दाश्त नहीं होती और अपने आलोचकों पर बरस पड़ता है। किंतु वासंती चौधरी बिना डरे उसकी कहानियों को कहानी मानने से इनकार कर देती है, ऐसा कई बार हुआ। अंत में समाचार मिला की वर्मा जी और वासंती जी का विवाह हो रहा है। अंततः वर्मा जी को कहानीकार

ना मानने वाले एकमात्र शख़्स नें भी वर्मा जी को अपना लिया। 'साहित्य-प्रसार और मुद्रा या मुद्रा-प्रसार और साहित्य '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारतीय मुद्रा के मूल्य के बढ़ने पर साहित्यिक रचना के माध्यम से व्यंग्य किया है। चूँकि वो साहित्य से जुड़े थे और अर्थशास्त्र की भी समझ रखते थे इसी वजह से मुद्रा-प्रसार पर साहित्यिक रचना की या फिर हम यह भी कह सकते कि मुद्रा से सम्बंधित रचना लिखकर साहित्य-प्रसार किया। समीक्षा करने वाले लोगों में दो तरह के लोग होते हैं एक वे जो कि मौलिक समीक्षा करते हैं तथा दूसरे वे जो समीक्षा से महज़ छेड़ख़ानी करते हैं। उन्हीं लोगों पर व्यंग करते हुए शरद जी नें 'समीक्षा की 'छेड़खानी शैली ' के समर्थन में '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय लिखा है। 'गम्भीर निबंधों के दिन '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारत में वैचारिक रूप से कमजोर हो रही लेखन की परम्परा को उजागर करते हुए व्यंग्यात्मक रूप में वर्तमान लेखों की स्थिति का विवरण मिलता है। किस तरह से लेखक महज़ चंद स्वार्थ के लिए लेख लिखते हैं, अफ़सर विकासात्मक कार्य को ही क्रांति घोषित करते है। ये सब गिरती हुई वैचारिक शाख़ का ही परिणाम है। 'सरकारी पत्रिकाएँ: कुछ जुड़े हुए प्रश्न '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में सरकारी पत्रिकाओं की उपयोगिता पर ही सवाल उठाते हुए शरद जी नें व्यंग्यात्मक लेख लिखा है। ये पत्रिकाएँ न ही अच्छे लेखकों को प्रेरित करती हैं न ही लोक-संस्कृतियों को ही प्रेरित करती हैं। ये तो महज़ नेताओं के भाषण और उनकी फ़ोटो छापने का एक माध्यम मात्र बनकर रह गयी हैं।

'निराधार सूत्रधार '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक नटी और एक नाटक के सूत्रधार की कहानी के आधार पर नाटकों की नटियों के ऊपर कटाक्ष की गया है। एक सूत्रधार जो उन नटियों को इस क्षेत्र में अवसर देता है वह वहीं का वहीं रह जाता है जबकि एक नटी जिसके अंकल या फिर कोई परिचय का समीक्षक उसकी तारीफ़ कर देता है और वो बड़ी स्टार बन जाती है। 'पहली और पूनम '(यत्र तत्र सर्वत्र) एक क्लर्क और एक कवि की कहानी है। कवि पूनम की रात को अपने क्लर्क मित्र से कहता है कि थोड़ा सैर कर के आते हैं, पर वह अपने काम में व्यस्त रहता है और नहीं जाता। ऐसा दो तीन बार होता। एक दिन क्लर्क आकर कवि से कहता की मौसम कितना अच्छा है, चाँद कितना खूबसूरत है चलो टहल कर आते हैं। कवि कहता है आज तो पूनम की रात भी नहीं, तो क्लर्क कहता है आज एक तारीख़ है। हम लोगों के लिए यही पूनम की रात है। 'राजनीतिक कविता और कवियों की राजनीति '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में कवियों द्वारा लिखी गयी कविताओं में बड़े-बड़े राजनीतिक शब्दों के प्रयोग (भले ही उन्हें उन शब्दों का वास्तविक अर्थ न पता हो) और अपने को एक राजनीतिक चिंतक की श्रेणी में रखने के ऊपर केंद्रित है। कवियों द्वारा किए गए इस प्रयास की राजनीति को भी इस अध्याय का विषय बनाया गया है। 'जीवन में गुलगुले पर साहित्य में गुड़ से परहेज़ '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में साहित्य में की गयी मिठाइयों की उपेक्षा पर व्यंग्य किया गया है। मिठाइयाँ सभी को पसंद होती है, यह हर एक भारतीय से जुड़ी वस्तु है किंतु फिर भी

मिठाइयों को साहित्य में केंद्रीय विषय बनाने के ऊपर ध्यान नहीं दिया गया। 'चक्रवर्ती गीतों का अर्थशास्त्र '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में कवियों के एक ही गीत को हर काव्य गोष्ठी में प्रयोग कर आमदनी बढ़ाने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। प्रस्तुत अध्याय में शरद जी के मित्र निरंजन जी का वर्णन है जो पहले शरद जी के साहित्य की गद्य विधा में जाने से असंतोष व्यक्त करते है। अपनी रचना 'सोनचिरैया 'को पिछले दस वर्षों से हर गोष्ठी में प्रस्तुत करते हुए प्रति गोष्ठी दस हज़ार रूपये की आमदनी प्राप्त की है। 'ओ० हेनरी' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में परसाई जी नें अमेरिका के शिकागो शहर के एक बैंक कर्मचारी पर ग़बन का आरोप लगने वाले तथा जेल में सजा काट रहे एक ऐसे व्यक्ति की कहानियों पर अपनी टिप्पणी लिखी है जो जन्मजात लेखक तो नहीं है बल्कि उसके लेखन-कला के कौशल का विकास जेल के वातावरण में हुआ तथा अपना नाम 'ओ० हेनरी' रखा। कुछ चुनिंदा कहानी लिखकर मशहूर कहानी-लेखक हो गया। 'जीवन की भँवर', 'चेयर ओफ फ़िलेन्थ्रोमेटिक्स', 'प्राइड ओफ सिटीज' उपर्युक्त कहानियाँ व्यंग्य और विनोद से पूर्ण होते हुए मानवीय संवेदनाओं से भरी पड़ी हैं। 'हास्य और व्यंग्य '(ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में वर्तमान समय में लेखकों एवं रचनाकारों द्वारा समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को उजागर करने के रूप में व्यंग्य का प्रयोग करने की प्रवृत्ति को आधार बनाया गया है। 'अपने समाज, उनके विभिन्न अंग, राजसत्ता, धर्मसत्ता, साम्राज्यवाद, सामन्तवाद, लोकतंत्र की

विकृतियों 'आदि विसंगतियों को व्यंग्य का आधार तत्व माना है। '१९९२ का साहित्य और कुछ आँसू, कुछ हिचकियाँ '(आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में तत्कालीन समय में हिंदी साहित्य में संख्या के आधार पर आयी साहित्य रचना में कमी को इस अध्याय का विषय बनाया गया है। 'हिंदी इतिहास में एक नया युग '(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) एक साहित्यिक व्यंग्य है जिसमें ऐतिहासिक रूप में साहित्य में आए साहित्यकारों को आधार बनाकर व्यंग्य किया गया है।

आर्थिक व्यंग्य-

इस युग में आर्थिक समस्याओं पर भी अनेक व्यंग्य रचनायें की गयी। उदाहरणस्वरूप-' रेल और गाँव का आदमी '(दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में गरीब ग्रामीणों की रेल के डिब्बों में जगह पाने की जद्दोजहद का मार्मिक विवरण मिलता है। इस जद्दोजहत से ए० सी० एवं रिज़र्व डिब्बों के यात्री कौतूहलवश देखते एवं आश्चर्यचकित होते रहते हैं। 'गरीबी रेखा: एक चिंतन' (दंगे में मुर्ग़ा) नामक अध्याय में गरीबी रेखा किसको माना जाए इस पर व्यंग्य करते हुए ज्ञान चतुर्वेदी जी नें गरीबी रेखा पर चल रही बहस पर कटाक्ष किया है और कहा है "गरीबी रेखा, राजनीति और अफ़सरशाही इन दो बिंदुओं के बीच फैली हुई वस्तु है।... गरीबी रेखा से ही अस्तित्व है इनका (अमीरों का) यह जानते हैं ये बिंदु। इसी रेखा के रहते उनकी क़ीमत है। गरीबी रेखा हटने पर वे मात्र बिंदु हैं। सो हटने नहीं देनी है यह रेखा। उसकी रक्षा करनी है। जितने अधिक लोग उस रेखा के नीचे रहें, ये उतने

ही सुरक्षित हैं। फिर भी नाटक चलता रहता है उस रेखा को हटाने का।"[36] 'एक ज़रूरी बयान '(बादलों का गाँव) अध्याय में त्यागी जी चूहे के ऊपर केंद्रित करते हुए लिखते हैं। भारत में व्याप्त खाद्यान्न की समस्या के लिए चूहे को ज़िम्मेदार मानते हुए चूहे को एक राष्ट्रीय दुश्मन करार देते हुए उसके समूल-नाश के लिए पूरे देश को प्रेरित करते हैं। चूहों की समस्या से निजात पाने के लिए वे केंद्रीय सरकार के अधीन एक 'चूहा-मार महकमा ' स्थापित करने का भी सुझाव देते हैं ताकि देश को इस संकट से उबारा जा सके। इसके अतिरिक्त वह सुझाव देते हैं कि "जो लोग अपने आयकर अधिकारी को दो चूहा मारकर रिटर्न के साथ भेजेंगे, उन्हें कर में विशेष छूट दी जाएगी। इसी प्रकार चूहों को मारते हुए, यदि कोई सम्भ्रांत व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त होता है तो उसकी सम्पत्ति पर मृत्यु-कर नहीं लगेगा।" इन सुझावों को अपनाकर चूहों एवं खाद्यान्न समस्या से निपटा जा सकता है। '१९६८-६९ के वे दिन '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में १९६८ से १९६९ के समय का आर्थिक वर्णन किया गया है। उस समय चीजें कितनी सस्ती हुआ करती थी, यह अध्याय इसी बात पर केंद्रित है। 'स्वर्ण-मृग कितने कैरेट का था?' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में १९६२-६३ की आर्थिक नीतियों एवं सोने के गिरते हुए दाम को आधार बनाकर इस अध्याय की रचना की गयी है। व्यक्ति की क़ीमत उसके पास रखे सोने से आँकना अब सही नहीं होगा क्योंकि "अब सोना तो गया काम से। अब आदमी को परखिए कसौटी

---

[36] ज्ञान चतुर्वेदी; गरीबी रेखा: एक चिंतन; दंगे में मुर्ग़ा; किताब घर प्रकाशन; नई दिल्ली; १९९८; पृष्ट ८८

पर और मोल कीजिए।"[37] 'आर्थिक विकास और झाड़फूंक' (आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में भारत में खुली बाज़ार नीति अपनाने के बाद भारत को उम्मीद थी कि भारत में निवेशकों की संख्या बढ़ेगी, लेकिन ऐसा हुआ नहीं। तथा कहा गया कि इसमें नज़र लग चुकी है और झाड़फूंक की आवश्यकता है।

धार्मिक एवं साम्प्रदायिक व्यंग्य-

इस युग में धर्म और सम्प्रदाय के क्षेत्र में भी अनेक विसंगतियां देखने को मिलती हैं। 'अपने-अपने चमत्कार' (दाँत में फँसी कुर्सी) एक धार्मिक व्यंग्य है जिसमें समाज में व्याप्त धार्मिक कुरीतियों को निशाना बनाया गया है। 'दंगे में मुर्गा '(दंगे में मुर्ग़ा) अध्याय का विषय अत्यंत मार्मिक है। इस अध्याय में एक मुर्ग़े के माध्यम से दंगे के दौरान आम नागरिकों की स्थिति का अत्यन्त मार्मिक वर्णन किया गया है। इस अध्याय में ज्ञान जी ने बताया है कि दंगे के दौरान एक परिवार कितने कठिन दौर से गुजर रहा होता है। उसके सामने उसके बीवी-बच्चों को जला दिया जाता। जाँच के लिए जो टीम आती वो मुख्यतः उन्ही लोगों के बयान ले पाती जो स्वयं दंगे के गुनहगार रहे है। दंगा पीड़ित कोई व्यक्ति अगर ज़्यादा आवाज़ उठाने या इंसाफ़ की माँग करता तो उसकी आवाज़ हमेशा के लिए बंद कर दी जाती। ज्ञान जी नें इतने मार्मिक और हृदय-विदारक घटना का वर्णन अपने व्यंग्य में इतनी

[37] शरद जोशी; स्वर्ण-मृग कितने कैरेट का था?; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट १०१

कुशलता के साथ किया है कि पाठक पर इस घटना का असर कई गुना बढ़ जाता है। 'भारत का मुकुट '(गणतंत्र का गणित) अध्याय में कश्मीर में जलाए गए एक पूरे क़स्बे को व्यंग्य का केंद्रीय विषय बनाते हुए राम लुभाया से चार प्रकार के संवादों के आधार पर इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। इसमें कश्मीरियों द्वारा आतंकवादियों को पनाह देने एवं सैनिकों को दूर भगाने के लिए धरना देने कश्मीर के हिंदुओं के विस्थापन पर राजनेताओं की राजनीति, पाकिस्तान का अपने देश के लोगों के हित को नज़र अंदाज़ करते हुए पूरे कश्मीर का हिमायती बनने आदि पर कटाक्ष किया गया है। 'धर्म-चर्चा' (देश विदेश की कथा) अध्याय में विश्व के विभिन्न धर्मों एवं उनमें मृत्यु के बाद की स्थिति का वर्णन करने के साथ-साथ सभी धर्मों के धार्मिक पुस्तकों का तुलनात्मक वर्णन प्रस्तुत किया गया है। 'मसीहा और विपरीत भक्त' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में पंथ प्रवर्तक, मसीहा, देवदूत तथा गुरु द्वारा बनाए गए मार्ग का उनके अनुयायी किस तरह उसका उलटा या अलग करके उसका दुरुपयोग करते हैं। इन्होंने कहा है कि अब धार्मिक कर्मकाण्ड और पाखण्ड निभाने वाले धर्म-विरोधी कर्म करने लगे हैं। 'धर्म और विज्ञान' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में धर्म को पहला विज्ञान कहा है और कहा है कि जब तक वैज्ञानिक दृष्टिकोण नहीं विकसित हुआ तब तक तो ठीक था लेकिन जब दूसरी व्याख्याएँ आयी तो धर्म इतना हावी हो गया कि धर्म नें विज्ञान को नकारा साबित कर दिया। यही नहीं धर्म नें बूनी और गेलीलियो जैसे वैज्ञानिकों को सजाएँ भी दी है। इन्होंने

'धर्म और विज्ञान' निबंध में मनुष्य के लिए धर्म से अधिक विज्ञान को ज़रूरी बताया है। 'धर्म और सामाजिक परिवर्तन' (ऐसा भी सोचा जाता है) निबंध में धर्म का समाज के लिए योगदान तथा सामाजिक प्रगति और परिवर्तन के लिए कितना सक्षम है इस पर विचार-विमर्श किया गया है। 'आध्यात्मिकता की शक्ति एवं प्रधानमंत्री '(आओ बैठ लें कुछ देर) एक धार्मिक व्यंग्य है जिसमें हिंदू धर्म में पनप रही नवीन कुरीतियों पर प्रहार किया गया है।

सांस्कृतिक व्यंग्य-

सांस्कृतिक व्यंग्यों की अगर बात करें तो 'तरह-तरह के पर्यटन' (खम्भों के खेल) अध्याय में पर्यटन के महत्व एवं पर्यटन के प्रकारों जैसे साहसिक पर्यटन, सामाजिक पर्यटन, धार्मिक पर्यटन एवं सांस्कृतिक पर्यटन आदि को आधार बनाकर व्यंग्य रचना देखने को मिलती है। 'सरकार संस्कृति और पुरस्कार '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में संस्कृति को आधार बनाकर भारतीय व्यवस्था, समाज एवं संस्कृति पर कटाक्ष किया गया है। 'तरह-तरह के ओलम्पिक '(खम्भों के खेल) अध्याय देश में ओलम्पिक खेलो की तत्कालिक स्थिति पर व्यंग्य करता है। 'हमारी संस्कृति और संख्या ' (चंपाकली) अध्याय में संख्या ३, संख्या ४, संख्या ५, संख्या ६, संख्या ७ एवं संख्या १६ का हमारी संस्कृति में महत्व को रेखांकित करते हुए एक व्यंग्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। 'अफ़सर और संस्कृति '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में भारतीय अफ़सरों के भारतीय संस्कृति के प्रति

दृष्टिकोण को व्यंग्य का विषय बनाया गया है। किस प्रकार अफ़सर लोग संस्कृति का उपयोग अपने हित साधने के लिए करते हैं। वे संस्कृति को पकवान में पड़ने वाले नमक की तरह करते हैं, अर्थात् स्वादानुसार। इसी बात को शरद जी नें व्यंग्य के माध्यम से इस अध्याय में बताया है। 'भारत मानव महासागर तीरे' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में परसाई जी नें विचार व्यक्त किया है कि समाज की सभ्यता और संस्कृति किस तरह परिष्कृत और परिमार्जित हुई तथा क्या-क्या उपादान रहे हैं। आर्यों के आगमन से लेकर यूरोपीयों के आगमन नें किस तरह भारतीय-संस्कृति और जीवन-पद्धति को प्रभावित किया। भारतीय संस्कृति समन्वित तथा लोक संस्कृति है। "यहाँ आर्य हैं, यहाँ अनार्य हैं, यहाँ द्रविड़ और चीनी वंश के लोग भी हैं। शक, हूण, पठान और मुग़ल न जाने कितनी जातियों के लोग इस देश में आये और सबके सब एक ही शरीर में समाकर एक हो गये।"[38] 'देवता गरीबी की चपेट में हैं '(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में पहाड़ी इलाक़े कुल्लू की देव-संस्कृति को आधार बनाकर इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। 'एक बेचैन रिश्ता: सत्ता और संस्कृति '(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में सत्ता एवं संस्कृति के बीच खिंचा-तानी एवं संस्कृति की विभिन्न विचारकों द्वारा दी गयी परिभाषा को आधार बनाकर व्यंग्य किया गया है। 'उस महोत्सव के बाद '(कुछ जमीन पर कुछ हवा में)

[38] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ ५२

अध्याय में लखनवी संस्कृति एवं उत्सव की सहिष्णुता एवं सद्भाव के आधार पर विवरण देते हुए व्यंग्य किया गया है।

अन्य मुद्दों पर लिखे गये व्यंग्य-

उपर्युक्त विभाजन के अतिरिक्त अनेक ऐसी भी रचनाएँ की गयीं जिन्हें इन विभाजनों में नहीं रखा जा सकता। इस वर्ग के व्यंग्यों में मनोवैज्ञानिक, शैक्षणिक, व्यक्तिगत आदि व्यंग्यों को रखा जा सकता है। इस तरह के व्यंग्यों की अगर बात करें तो सर्वप्रथम 'सबके अंदर का आदमी ' व्यंग्य-अध्याय को लिया जा सकता है। 'सबके अंदर का आदमी' (दाँत में फँसी कुर्सी) नामक अध्याय एक मनोवैज्ञानिक व्यंग्य है। 'सबके अंदर का आदमी '(दाँत में फँसी कुर्सी) नामक अध्याय एक मनोवैज्ञानिक व्यंग्य है। जिसमें एक बैग को उठाने को लेकर व्यक्ति के मन में चल रही उहा-पोह की स्थिति का वर्णन किया गया है साथ ही साथ राजनीतिक, पुलिस व्यवस्था पर भी कटाक्ष किया गया है। 'फ़्री के फ़ायदे '(दाँत में फँसी कुर्सी) एक मनोवैज्ञानिक है जिसमें लोगों को फ़्री का समान प्राप्त करने की उत्कंठा पर व्यंग्य किया गया है। 'जनसेवक का कुटीर उद्योग '(फाइल पढ़ि पढ़ि) अध्याय में उद्योगों को आधार बनाकर पूँजीवादी तथा समाजवादी विचारधारा पर व्यंग्य किया गया है। 'रिश्तों का रेगिस्तान '(फाइल पढ़ि पढ़ि) नामक अध्याय में प्रशासनिक अफ़सरों के निजी जीवन को माध्यम बनाते हुए व्यंग्य करते है। 'मर्द का बच्चा '(गणतंत्र का गणित) अध्याय में झूठी शान-ए-शौक़त पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि शक्ति का प्रयोग अपने देश की रक्षा के लिए

होना चाहिए न कि अपना देश बेचकर शक्ति प्राप्त करनी चाहिए। 'मैं जेल जाना चाहता हूँ' (इतिहास का शव) अध्याय में व्यंग्यात्मक ढंग से जेल जाने के फ़ायदे और रोमांच को गिनाते हुए जेल जाने की इच्छा ज़ाहिर करते हैं। इसी कड़ी में जेल से भागने के कुछ रोमांचक क़िस्सों जैसे- क़ैदी का जेलर को हिप्नोटाइज करके, जेल के कमरे में से सुरंग बनाकर, जेल में दीवार बनाने वाले क़ैदी के द्वारा दीवार को इतनी ऊँची बनाना की वह भाग सके, ग़ुब्बारे की सहायता से जेल से भागने आदि के आधार पर जेल से भागने की इच्छा जाहिर करते हैं। 'पूरब का ऑक्सफ़ोर्ड' (चंपाकली) अध्याय में इलाहाबाद विश्वविद्यालय जिसे 'पूरब का ऑक्सफ़ोर्ड' कहा जाता है एवं जिस विश्वविद्यालय नें तमाम विश्व विख्यात साहित्यकारों, प्रशासकों, राजनेताओं आदि को पैदा किया, उसकी गिरती प्रतिष्ठा को आधार बनाते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। इसी संदर्भ में त्यागी जी लिखते हैं कि "सीनेट हाल की वह शानदार घड़ी जो कभी ट्रिंग-ट्रिंग का शंखनाद किया करती थी, अब बंद पड़ी है और उसका एक शीशा वर्षों से टूटा पड़ा है। वे शानदार पत्थर की गोल बेंचें, जहाँ हम मित्र लोग प्लेटो और मार्क्स के सिद्धांतों की चर्चा किया करते थे, अब टूटी पड़ी है।"[39] 'बादलों का गाँव ' (बादलों का गाँव) अध्याय में अपनी बीमार एवं वृद्ध माँ की मानसिक अवस्था के ऊपर लिखा गया है। उनकी माँ जो थी वो त्यागी जी की पत्नी से हमेशा ख़फ़ा रहती थी एवं आने-जाने वाले लोगों के सामने उसकी बुराई

[39] रवीन्द्रनाथ त्यागी, चंपाकली, किताबघर प्रकाशन, दिल्ली, १९९२; पृष्ठ ३४३

करते नहीं थकती थी वहीं त्यागी जी की पत्नी उनकी माँ की सेवा में निरंतर लगी रहती थी। अपनी सास के मल-मूत्र लगे कपड़ों को भी साफ़ करती थी और उनकी सेवा भी करती थी। इन्हीं पारिवारिक घटनाओं के ऊपर त्यागी जी नें इस व्यंग्य अध्याय की रचना की है। अपनी अम्मा की इस स्थिति एवं पारिवारिक कलह का त्यागी जी नें बड़ा ही मार्मिक चित्रण प्रस्तुत किया है, जो पाठकों के मन में एक संवेदना और टीस दोनों को साथ में पैदा कर जाते हैं। 'मैं अपने गाँव गया '(बादलों का गाँव) अध्याय में त्यागी जी का अपने गाँव जाने का विवरण प्रस्तुत करते हैं। साथ ही साथ गाँवों में आए बदलाव का तुलनात्मक चित्रण भी करते हैं। 'अंजामे-गुलिस्ताँ क्या होगा? ' (बादलों का गाँव) अध्याय में त्यागी जी 'एक ही उल्लू काफ़ी था, बर्बाद गुलिस्ताँ करने को, हर शाख़ पे उल्लू बैठे हैं अंजामें गुलिस्ताँ क्या होगा ' पंक्तियों के आधार पर तमाम विसंगतियों पर प्रहार करते हुए अध्याय की रचना करते हैं। 'अफ़वाहों की शानदार परम्परा '(बादलों का गाँव) अध्याय में राष्ट्रपति की मृत्यु की अफ़वाह को आधार बनाकर व्यंग्य किया गया है। रवीन्द्रनाथ त्यागी द्वारा इस घटना को आधार बनाते हुए भारतीयों द्वारा बिना सोचे-समझे अफ़वाह फैलाने की प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। 'अवध के कुछ नवाब और उनकी बेगम '(बादलों का गाँव) अध्याय में अवध क्षेत्र के नवाबों के नवाबी का चित्रण किया गया है और साथ ही साथ बेगमों की ख़ूबसूरती के लिए चर्चित नवाबों का भी ज़िक्र किया गया है। अवध क्षेत्र के नवाबों की नवाबी एवं उनकी बीबियों की ख़ूबसूरती की चर्चा हमेशा से

जग-ज़ाहिर रही है। त्यागी जी नें इसी विषय को व्यंग्य का आधार बनाया है। 'भाद्रपद की साँझ '(बादलों का गाँव) अध्याय में भाद्रपद के महीने में शाम की वर्षा को आधार बनाकर इस अध्याय की रचना की गयी है। साथ ही साथ वर्षा की शाम की अनेक घटनाओं का ज़िक्र करते हुए व्यंग्यात्मक ढंग से उसका विवरण देखने को मिलता है। 'मेरी पहाड़ी यात्राएँ '(लाल-पीले फूल) अध्याय में त्यागी जी पहाड़ों पर की गयी अपनी यात्राओं का विवरण देते हुए व्यंग्य रचना करते हैं। इसी कड़ी में वे अपनी कश्मीर की यात्रा, कुल्लू व काँगड़ा की घाटियों की यात्रा, शिमला की यात्रा, मसूरी की यात्रा, लैंसडाउन की यात्रा, कुमाऊँ की यात्रा, नैनीताल एवं रानीखेत की यात्रा, दार्जिलिंग की यात्रा, शिलाड की यात्रा एवं लेह की यात्राओं का विवरण देते हैं। 'प्राप्ते तु षोडशे वर्षे '(लाल-पीले फूल) अध्याय में त्यागी जी सोलह वर्ष की उम्र को आधार बनाते हुए व्यंग्य रचना करते हैं। साहित्यकारों द्वारा सोलह वर्ष की कन्या के यौवन का जो चित्रण किया जाता है इस अध्याय में त्यागी जी उस चित्रण पर चुटकी लेते हैं और साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में युवतियों के बाल विवाह एवं अधेड़ उम्र के लोगों से शादी करने की प्रथा पर भी प्रहार करते हैं। 'विषकन्या' (विषकन्या) अध्याय त्यागी जी इसी अध्याय में एक लड़की के संदर्भ में कहते हैं कि "लड़की क्या थी एक क्लॉकरूम थी। न जाने कितने नवयुवकों के दिल उसके पास सुरक्षित रहते थे।"[40] अस्पतालों के संदर्भ में वे कहते हैं "अस्पताल भी एक दिलचस्प

[40] रवीन्द्रनाथ त्यागी, विषकन्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पेज १३

जगह हो गयी है। नर्स दिल चुराती है और डॉक्टर गुर्दे।"[41] 'मनोरंजन के विभिन्न प्रकार' (विषकन्या) अध्याय में त्यागी जी अपने तमाम सगे सम्बन्धियों एवं मित्रों को आधार बनाकर उनके व्यवहार एवं चरित्र पर व्यंग्य करते हैं। इसी संदर्भ में वे कहते हैं कि "वे प्राकृतिक चिकित्सा एवं योग के क्षेत्र में भगवान रजनीश एवं महेश योगी से भी कहीं ज़्यादा प्रतिभा रखते हैं। एक बार एक हसीन युवती की कुंडलिनी ऐसी उठाई कि उसके पति का जूता खुद ब खुद उठ गया और इनके कमर के निचले हिस्से की सार्वजनिक तौर पर सेवा करने लगा।"[42] 'इस वर्ष मुकुन्दी टॉप करेंगे' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक कॉलेज के सहायक प्राध्यापकों के बीच चल रही चर्चा को अपने व्यंग का आधार बनाया गया है। चर्चा का विषय है कि इस वर्ष एम0 ए0 हिंदी में विश्वविद्यालय में कौन टॉप करेगा? मुकुन्दी नाम का विद्यार्थी (जो कि राज्य के युवा शिक्षामंत्री का छोटा भाई है) तथा सरलाजी जो "स्वर्गीय शिक्षा संचालक की भतीजी हैं, लाड़ली क़िस्म की। लगे-हाथ सुंदर भी हैं। ज्ञान-चर्चा के दो प्रमुख बिंदु यही थे।"[43] 'मार्गदर्शक ' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक ऐसे पात्र का वर्णन किया गया है जो हिंदी के शोध छात्रों से पैसा लेकर उनकी सिनॉप्सिस लिखवाने का कार्य करता है। प्रस्तुत अध्याय में उसके द्वारा लिखवाए गए सिनॉप्सिस और

---

41 रवीन्द्रनाथ त्यागी, विषकन्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पेज १४

42 रवीन्द्रनाथ त्यागी, विषकन्या, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पेज ४५

43 शरद जोशी; इस वर्ष मुकुन्दी टॉप करेंगे; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट ७८

उससे सम्बंधित छात्रों का वर्णन व्यंग्य के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। मौलिकता की चाह '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक कलाकार के लिए मौलिकता की आवश्यकता पर ज़ोर दिया गया है। बिना मौलिकता के किसी भी कलाकार को उसकी स्वयं की पहचान नहीं बन सकती, इसी बात को आधार बनाकर यह व्यंग लिखा गया है। 'पठन-पाठन का रणक्षेत्र '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में छात्रों द्वारा शिक्षकों को पीटे जाने की घटनाओं पर व्यंग किया है। और सुझाव दिया है कि विश्वविद्यालयों को किलों में शिफ़्ट कर देना चाहिए और उनकी क़िलेबंदी कर देनी चाहिए जिससे कि शिक्षा और शिक्षक की सुरक्षा को सुनिश्चित किया जा सके क्योंकि ऐसे माहौल में कक्षाएँ एक रणक्षेत्र से कम नहीं हैं। 'हमारे शहर की हड़ताल ' (यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय छात्रों के आंदोलन पर केंद्रित है। इस अध्याय में छात्र, शिक्षक एवं प्रिंसिपल की आपसी राजनीति का वर्णन किया गया है। इस अध्याय में छात्र अपनी मूलभूत आवश्यकताओं को लेकर आंदोलनरत हैं, प्रिंसिपल के विरोधियों को प्रिंसिपल के विरोध में बयानबाज़ी का अवसर मिल गया है वहीं प्रिंसिपल इस आंदोलन को महज़ अपने विरोधियों की साज़िश बताते हुए दबाने का प्रयास कर रहा है। 'कैक्टस और मैं '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी नें अपने एक सपने का वर्णन किया है जिसमें वो अपने बगीचे में काम हो रहे कैक्टस की संख्या को लेकर चिंतित होते हुए मुख्यमंत्री के सचिवालय से कैक्टस को चुराने की योजना बनाते हैं। वे जैसे ही कैक्टस को चुराकर निकलते हैं वैसे ही उनके पीछे सचिवालय

के सिपाही बंदूक़ लेकर पीछे पड़ जाते हैं। आगे-आगे कैक्टस लिए शरद जी भागते हैं उनके पीछे गोलियाँ चलाते हुए सिपाही। इसी को आधार बनाकर इस अध्याय की रचना की गयी है। 'प्री-मानसिक टेस्ट '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में इस बात पर चर्चा है कि मेडिकल की परीक्षा में जब छात्रों से कुछ सामान्य ज्ञान की जानकारी से सम्बंधित सवाल पूछे गए तो वे उसका उत्तर नहीं दे पाए। ऐसे सवालों में माउंट एवरेस्ट कहाँ है? सांभर झील कहाँ है? मक्का कहाँ है? जैसे आसान सवाल थे। परीक्षार्थियों के इन सवालों से सम्बंधित मज़ेदार जवाबों को केंद्र में रखकर इस अध्याय की रचना की गयी है। 'आषाढ़ का दूसरा दिन '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में शरद जी ने आषाढ़ के दूसरे दिन की अपनी उहापोह की स्थिति का वर्णन किया है। वे समझ नहीं पा रहे कि वे छाता ख़रीदें या नहीं क्योंकि बारिश हो सकती है, किंतु होने को तो बाढ़ भी आ सकती। तो क्या वे नाव भी ख़रीद लें? अपनी इसी उहापोह की स्थिति का वर्णन व्यंग के माध्यम से इस अध्याय में शरद जी नें किया है। 'मुझे एन० आर० आइ० बनाना प्रभु' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एन० आर० आई० के ऊपर व्यंग किया गया है। इस तरह कुछ अन्य विषयों पर भी इस दौर में लिखा गया उदाहरणस्वरूप- '++=-' (यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में गणित के प्रश्नो के ऊपर व्यंग किया है कि किस तरह से सवाल पूछे जाते हैं। 'विश्वविद्यालय और गुरुजन '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में विश्वविद्यालयों एवं उनमें कार्यरत गुरुजनों पर शरद जी नें व्यंग्य करते हुए इस अध्याय की रचना की

है। 'नये दशक का घोषणापत्र '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में अस्सी के दशक के प्रारम्भ होने पर साहित्य के क्षेत्र में व्याप्त कुछ कुरीतियों पर भी प्रहार किया गया है। साहित्य में व्याप्त गुटबंदी, प्रकाशकों का पैसा लेकर पुस्तक छापना, एवं पुरस्कार वितरण में व्याप्त बुराइयों को इस अध्याय का विषय बनाया गया है। 'एक पौरुषेय खेल का यों रसबदल' (यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय में महिलाओं द्वारा क्रिकेट खेलने की ओर रुख़ करने पर व्यंग्य किया गया है और यह उम्मीद व्यक्त की है कि आने वाले कुछ वर्षों में कोई बच्चा गर्व से कहेगा कि "मेरे पिता और माता दोनो क्रिकेटियर थे"[44]।' वह पिछला विश्व कप '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय, १९८३ के विश्व कप को याद करते हुए आगामी विश्वकप में दर्शकों और खिलाड़ियों के ऊपर केंद्रित है। इस अध्याय में दर्शकों के जोश और खिलाड़ियों को अनायास (क्योंकि स्वयं खिलाड़ियों को भी इस जीत की उम्मीद नहीं थी) मिली पिछली जीत का व्यंग्यात्मक विवरण प्रस्तुत किया है। 'आमों का निर्यात: एक दुष्ट इरादा '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में सरकार द्वारा आमों के निर्यात की घोषणा पर व्यंग्यात्मक विरोध प्रस्तुत किया है। 'फर्माइशें '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में व्यक्ति की बढ़ती आकांक्षाओं, परिणाम स्वरूप बढ़ती फ़रमाइशों पर व्यंग्यात्मक लेख लिखा गया है।'मेरे मीत '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय में एक स्मगलर के जेल चले जाने के बाद उसके परिवार वाले और दोस्त किस तरह

---

[44] शरद जोशी; एक पौरुषेय खेल का यों रसबदल; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नई दिल्ली; नौवाँ संस्करण २०१८; पृष्ट २४१

से उसके द्वारा लाए गए विदेशी सामानों को देखकर उसे याद करते हैं और फिर से किसी विदेशी सामान की आवश्यकता पड़ने के पूर्व उसकी रिहायी की कामना करते हैं। 'बिहार पहुँचकर नरभसा गए शरद जोशी '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय बिहार में अंग्रेज़ी के हुए बिहारीकरण पर केंद्रित है। बिहार के लोग हर वाक्य में अंग्रेज़ी शब्दों का प्रयोग करते है और हर शब्द का देशीकरण हो गया है उदाहरण के लिए नर्वस का नरभस, स्कूल का इस्कूल आदि। 'काली लछमी का प्रजातंत्र '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय काले धन को केंद्र में रखकर लिखा गया है। किस तरह से लोग काले धन को इकट्ठा करने में लगे हैं और जिनके ऊपर इस काली कमाई का पता लगाए जाने का ज़िम्मा है उन्हें और भी ज़रूरी कार्य करने हैं। 'हरे चारे पर कुछ देर '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय चारा घोटाले के इल्ज़ाम में फँसे एक नेता जी के पूँछ-ताछ और उस नेता द्वारा दिए गए सवालों के ऊपर लिखा गया है। 'भविष्य में चाँद के इतिहास पर एक पीरियड '(यत्र तत्र सर्वत्र) नामक अध्याय एक कल्पना पर केंद्रित करके लिखा गया है। आज से कई साल बाद जब इंसान चाँद पर रहने लगेंगे और चाँद पर एक नई व्यवस्था और सरकार की स्थापना हो जाएगी तब वहाँ के इतिहास को कैसे पढ़ाया जाएगा। 'फुटपाथ के कलाकार '(यत्र तत्र सर्वत्र) अध्याय चोरों की चोरी करने की कला पर केंद्रित करते हुए लिखा गया है जिसमें शरद जी नें चोरों को एक महान कलाकार की संज्ञा दी है, क्योंकि आपको भनक भी नहीं लगती की कब आपकी जेब कट गयी। 'क्या अतिथि देवता नहीं रहा ? '

(ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में अतिथि को देवता मानने के बदलते पैमाने पर विचार व्यक्त करते हुए प्रिय अतिथि तथा अप्रिय अतिथि पर कटाक्ष करते हुए सुधारवादी दृष्टिकोण अपनाया गया है कि अतिथि देवता के आसन से उतर रहा है तथा अतिथि को देवता मानना मात्र एक भावना है, और यह भावना अब बदल रही है। कोई देवता नहीं है, सभी मनुष्य हैं। वर्तमान परिदृश्य में अतिथि को देवता का रूप अर्थ और परिस्थिति के आधार पर माना जाता है। जिसकी जैसी हैसियत, सुविधा और परिस्थिति उसकी वैसी ख़ातिरदारी। किसी को बुरा नहीं मानना चाहिए। शहरीकरण और नगरीकरण की पद्धति नें अब गावों में भी बची सभ्यता और संस्कृति को निगले जा रहा। गावों में भी अब विरले ही अतिथि को देवता मानकर सेवा सत्कार किया जाता है। 'उदात्त मन की आख़िरी कमजोरी' (ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में व्यक्ति का मनोवैज्ञानिक चिंतन व्यक्त है कि व्यक्ति चाहे जो हो यश-प्राप्ति की इच्छा हर मनुष्य में होती है। बड़े-बड़े ओहदे पर होने के बावजूद तथा रचनात्मक शक्ति न होने के पश्चात भी यश और प्रसिद्धि पाने के लिए कविता लिखते हैं और छपवाने कि लिए बड़े ही दीन भाव से कवियों और सम्पादकों की खुशामद करते हैं। यह प्रवृत्ति नेहरू, इंदिरा गांधी से लेकर इतिहास हो चुके व्यक्तियों में भी पायी जाती है। इसी संदर्भ में उल्लेख करते हैं कि "प्रसिद्धि या नाम या यश उदात्त मन की आख़िरी कमजोरी होती है।"[45] कटाक्ष करते हैं कि "जवाहरलाल नेहरू बहुत

[45] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ ५७

उदात्त मन के थे। पर जब वे प्रधानमंत्री थे, तब 'भारत रत्न' सम्मान ले लिया। वह मुझे अच्छा नहीं लगा। 'भारत रत्न' सरकार देती है। नेहरू सरकार थे। उन्होंने अपने को ही 'भारतरत्न' कर लिया।"[46] 'सदन के कूप में '(ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में परसाई जी नें अंग्रेज़ी का हिंदी में अनुवाद करने के बाद अर्थ में आए अंतर के उजागर करते हुए भारतीय संसद के सदनों में वर्तमान में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों जैसे अंग्रेज़ी भाषा का हिंदी में ग़लत (जस का तस) अनुवाद, एवं सदन की कार्यवाही के दौरान सदस्यों का आपा खो देना और सदन में मारपीट करने की प्रवृत्ति पर प्रहार किया गया है। 'राष्ट्रीय स्वाधीनता दिवस पर '(ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में 'स्वाधीनता 'तथा उसका मूल अर्थ समझाते हुए संकीर्ण राष्ट्रवाद पर व्यंग्य किया गया है। ताल्सताय के अहिंसा तथा आत्मपरिवर्तन के सिद्धांतों को अपनाते हुए महात्मा गांधी जी के द्वारा किए गए प्रयासों का ज़िक्र करते हुए वे लिखते हैं कि किस तरह हम भारतीयों नें अहिंसा के मार्ग पर चलने वाले बुद्ध और महात्मा गांधी को अपने जन-जीवन से निकाल दिया है। आगे वे लिखते हैं कि बदलते समय में सुभाषचंद्र बोस तथा रामप्रसाद बिस्मिल्ल जैसे क्रांतिकारियों नें व्यक्तिगत आंदोलन के स्थान पर जन-आंदोलन को ही महत्व दिया है। ये कहते हैं कि राष्ट्रवाद की उपयोगिता अंतर्राष्ट्रीयता के साथ चलता है, लेकिन अतिराष्ट्रवाद समाज के लोगों के लिए उतना ही घातक होता है जितनी किसी देश की पराधीनता।

[46] हरिशंकर परसाई, ऐसा भी सोचा जाता है, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९३; पृष्ठ ५३

‘स्वाधीनता ’का अर्थ हज़ारी प्रसाद द्विवेदी नें बताया है कि - “इंडिपेंडेस यानी ‘अनाधीनता’... पर संस्कार से हमारा शब्द है- ‘स्वाधीनता ’यानी ‘स्व ’की अधीनता यानी आचरण पर विवेक का नियंत्रण...” इसे समझना और आचरण में लाना बहुत ज़रूरी है। ‘हिंदी और हिंदिंगलिश ’(ऐसा भी सोचा जाता है) अध्याय में उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा प्रदेश में हिंदी को प्रशासनिक भाषा बनाने के निर्णय एवं तत्कालीन मुख्यमंत्री माननीय मुलायम सिंह यादव द्वारा विभिन्न प्रशासनिक परीक्षाओं का अध्ययन हिंदी में करने के समर्थन को आधार बनाते हुए इस अध्याय की रचना की गयी है। साथ ही साथ ऐसे राज्यों पर प्रहार किया गया है जो आज़ादी के बाद से हिंदी को राजभाषा का दर्जा प्रदान करने का विरोध करते रहे हैं। ‘चंन्द ख़तूत-जो हसीनों के नहीं हैं’ (आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में सलमान रस्दी द्वारा लिखित उपन्यास ‘सैटानिक वर्सेज़’ पर हो रहे विरोध पर व्यंग लिखा गया है। ईरान द्वारा सलमान रश्दी को के ख़िलाफ़ फ़तवा जारी करते हुए हत्या करने वाले पर ईनाम की भी घोषणा की गयी है इसी दौरान ‘टाइम्स आफ़ इंडिया’ नें रश्दी को बचाओ नाम से लेख लिखा था जिसके विरोध में कुछ पत्र भी मिले थे। इन्हीं पत्रों के ऊपर मुख्य रूप से यह व्यंग लिखा गया है। इन पत्रों में ईरान द्वारा जारी किए गए फ़तवे को जाहिलियत भरे तर्कों के आधार पर सही ठहराने का प्रयास किया गया है। जिसके जवाब में श्रीलाल शुक्ल जी के० के० शास्त्री का मत पेस करते हैं कि “अधिकांश

बालिग जाहिल होते हैं, समुदाय के रूप में सभी बालिग़ जाहिल होते हैं।"[47] '१९९२ और भारत' (आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में वर्ष १९९२ में भारत के दोनो पहलुओं अर्थात् इंडिया और भारत पर विचार करते हुए अध्याय की रचना की गयी है। १९९२ का वर्ष जहां इंडिया के लिए लाभ का वर्ष रहा क्योंकि विदेशों से इंडिया को ऋण मिलना आसान हो गया (प्राइवेटाइज़ेशन के कारण) वहीं भारत के लिए चुनौती भरा वर्ष रहा है क्योंकि रामजन्मभूमि के विवादित ढाँचे को ढहाने की वजह से कृष्ण जन्मभूमि अर्थात् द्वारकापुरी "पर इतनी बड़ी सेना तैनात कर दी गयी जितनी कंस नें भी वसुदेव-देवकी की जेल पर भी न लगायी होगी। राम और कृष्ण की ऐसी गत हुई कि दो-दो रामस्वामी और एक कृष्णस्वामी तक गर्दिश की चपेट में आ गए।"[48] 'रास्ते की कुतिया' (आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में श्रीलाल शुक्ल नें अपने ही उद्धरण "वर्तमान शिक्षा पद्यति रास्ते में पड़ी हुई कुतिया है जिसे कोई भी लात मार सकता है" के आधार पर मध्य प्रदेश की शिक्षा पद्धति पर व्यंग्य किया गया है। 'फाँसी की कला और शैली: एक विवेचन' (आओ बैठ लें कुछ देर) अध्याय में फाँसी देने की विधि पर विचार किया गया है साथ ही साथ व्यंग्यात्मक ढंग से सार्वजनिक फाँसी देने का समर्थन किया गया है। सार्वजनिक फाँसी के फ़ायदे का व्यंग्यात्मक रूप से प्रस्तुत करते हुए कहते हैं कि खुले चौराहे पर भीड़ के सामने अपराधी

---

[47] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ १६

[48] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ३४

को फाँसी देने से लोगों में रहम पैदा होगा। हो सकता है कि कोई अचानक जल्लाद के पाँव पकड़ ले और कहने लगे कि फाँसी मुझे दी जाए, असली खूनी मैं हूँ। ‘अँधेर नगरी चौपट राजा’ में सार्वजनिक बातों के बहाव में बाबा के चेले की जगह खुद राजा ही सूली पर चढ़ गया। ‘लखनऊ -२ ’(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में लखनऊ शहर के बारे में व्यंग्यात्मक विवरण प्रस्तुत करता है। ’धुँधलके में समाज सेवा ’(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में एक घायल आदमी एवं उसकी मदद को आगे आए एक जज के आधार पर पुलिसिया व्यवस्था पर प्रहार किया गया है। ‘एक वर्ष युवा वर्ग के नाम भी ’अध्याय में युवावर्ग को केंद्र में रखकर व्यंग्य रचना की गयी है। ‘महापुरुषों की याद में ’(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में नेहरू के जन्मदिवस के उपलक्ष्य में उनको केंद्र में रखकर व्यंग्य निर्माण किया गया है। ‘दूरदर्शन का जीवन-दर्शन ’(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) नामक अध्याय में दूरदर्शन पर दिखाए जाने वाले कार्यक्रम जिसमें एक रजनी नाम की पात्र दुनिया की सभी समस्याओं का हल निकलती है उसी को अध्याय का आधार बनाकर रचना की गयी है। ‘किसी मध्यस्थता के बिना ’(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में डॉ० लक्ष्मीनारायण लाल के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। ‘पंडित, ठाकुर, लाला, बाबू, मुंशी आदि ’(कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में नेताओं के नाम के आगे ‘श्री या मिस्टर ’की जगह उपर्युक्त शीर्षकों के होने पर व्यंग्य किया गया है। ‘मेरे व्यंग्य लेखन का ऐतिहासिक क्षण’ (कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय

में लेखक अपने छात्रावास की दुर्व्यवस्था पर व्यंग्य लिखता है, जिसका असर यह होता है कि छात्रावास प्रशासन उस दुर्व्यवस्था को दूर करता है। इसी घटना को व्यंग्यात्मक ढंग से इस अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। 'भूतनाथ की चोरी' (कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में लेखक अपने स्कूल के दिनों में एक सहपाठी से प्राप्त पुस्तक 'भूतनाथ', जो कुछ समय बाद चोरी हो जाती है को आधार बनाकर व्यंग्य करता है। 'धूपछाँह की भूमिका, मेरा गाँव' (कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में ग्रामीण क्षेत्र में व्याप्त विभिन्न विषमताओं को व्यंग्य का आधार बनाया गया है। उदाहरण के लिए ठगों का भूत के नाम पर ठगना, बात-बात पर गाली देना और गप्पें लड़ाना आदि। इसी कड़ी में वे लिखते हैं "इस बाग में भूत लगते हैं। आज से बीस साल पहले ये भूत इस कदर बढ़े थे कि पुलिस तक को बीच में आना पड़ा। दस-पंद्रह भूतों को जेल हुई तब कहीं बाग से आने-जाने का रास्ता खुला।"[49] 'अंतर्राष्ट्रीय संदर्भ और हिंदी' (कुछ जमीन पर कुछ हवा में) अध्याय में हिंदी को संवैधानिक रूप से राजभाषा घोषित करने एवं विश्व के कई देशों जैसे इंग्लैंड में (भारतीय नागरिकों द्वारा प्रयुक्त), पाकिस्तान, त्रिनिदाद, बांग्लादेश, मॉरीशस, सूरीनाम, फ़िजी, थाइलैंड, बर्मा, इंडोनेशिया, नेपाल एवं दक्षिण अफ़्रीका में हिंदी के प्रयोग एवं भारतीय मूल के लोगों द्वारा हिंदी को प्रतिष्ठित करने का विवरण दिया गया है।

[49] श्री लाल शुक्ल, कुछ जमीन पर कुछ हवा में, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पृष्ठ १५९

अध्याय-४

समकालीन व्यंग्य साहित्य: शिल्प

किसी रचना की उत्कृष्टता उसके शिल्प से सीधे तौर पर जुड़ी होती है। शिल्प किसी रचना से पाठक को जोड़ने के साथ-साथ पाठक के समक्ष उसे सुरुचिपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य करती है। समकालीन व्यंग्य साहित्य के शिल्प पर चर्चा के पूर्व समकालीन शब्द के अर्थ को समझना ज़रूरी है जिससे अन्य काल के व्यंग्यों को समकालीन व्यंग्य से पृथक करने में आसानी हो। 'समकालीन' शब्द की उत्पत्ति 'सम' उपसर्ग में 'कालीन' विशेषण को जोड़ने से हुई है। शब्द 'सम' का अर्थ 'समान' एवं 'क़ालीन' का अर्थ किसी विशेष काल का होता है। इन दोनों शब्दों के योग से जो अर्थ निकलता है उसका अर्थ है 'समान काल के' या 'एक ही समय के हों' अर्थात् समकालीन से तात्पर्य उस अवधि और कालखंड की समय सीमा को कहते हैं जो वर्तमान समय के लिए प्रासंगिक हो। हिंदी के समकालीन शब्द का अंग्रेज़ी पर्याय 'कंटेम्परेरी' होता है। 'मानक हिंदी कोश' में समकालीन को निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है-

१) जो उसी काल या समय में जीवित अथवा वर्तमान रहा हो जिसमें कुछ और विशिष्ट लोग भी रहे हैं।

२) एक ही समय में रहने वाले।

३) जो उत्पत्ति, स्थिति आदि के विचार से एक ही समय में हुए हों।[1]

उपर्युक्त परिभाषा के आधार पर ‘समकालीन’ शब्द का अर्थ यहाँ पर यह है कि हम उस समय की बात करने जा रहे हैं जिस समय में या जिस काल-खंड में इस शोध-कार्य को सम्पन्न किया जा रहा है। हिंदी व्यंग्य साहित्य के जिस काल-खंड में वर्तमान समय (सन् २०२२ ई०) आता है, वह काल-खंड आधुनिक काल-खंड है।[2] इस काल खंड की शुरुआत सन् १९९० ई० से आरम्भ हुई है। अर्थात् यहाँ ‘समकालीन’ शब्द जिस आरंभिक समय-सीमा को दर्शाता है वह सन् १९९० है। इस शोध कार्य को सन् १९९० ई० से सन् २००० ई० के व्यंग्य निबंधों को आधार बनाते हुए सम्पन्न किया जा रहा है, जिसकी वजह से इस काल के लिए ‘समकालीन’ शब्द का उपयोग किया गया है।

शिल्प की परिभाषा की अगर बात करें तो आंग्ल भाषा में इसके लिए अनेक समानार्थी शब्द जैसे आर्टीस्ट्री, टेक्निक, कन्स्ट्रक्शन, डिज़ाइन तथा मेकैनिक्स। इन सब समानार्थी शब्दों के अलग-अलग अर्थ एवं मायने भी हैं। जहां टेक्निक शब्द का अर्थ रचनात्मक तकनीक है वहीं मैकेनिक शब्द शिल्प विधि का आभास कराता है। कन्स्ट्रक्शन शब्द बनावट का अर्थ प्रदान करता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि रचना-निर्माण की प्रक्रिया में शिल्प अभिव्यक्ति की पूर्णता का द्योतक है। अर्थात् शिल्प वह

[1] रामचंद्र वर्मा (सं०); मानक हिंदी कोश- खंड ५; हिंदी साहित्य सम्मेलन; प्रयाग; १९६६; पृष्ट २७८

[2] सुभाष चंदर; हिंदी व्यंग्य साहित्य का इतिहास (भूमिका); भावना प्रकाशन; दिल्ली; २०१७; पृष्ट ११

तकनीक है जिसके सहारे विषय-वस्तु अभिव्यक्ति की पूर्णता को प्राप्त करते हुए रचनाकार की कुशलता को प्रदर्शित करती है। अभिव्यक्ति के माध्यम तेज, आवेश, सामाजिक सरोकारिता आदि में परिवर्तन होता रहता है। ऐसे में ज़ाहिर है कि जिस माध्यम से अभिव्यक्ति अपनी पूर्णता प्राप्त करती है उस माध्यम में भी परिवर्तन आ जाता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि शिल्प में परिवर्तन वैसा ही है जैसे अभिव्यक्ति में परिवर्तन। अगर सामान्य शब्दों में कहें तो शिल्प अभिव्यक्ति के तरीक़े अर्थात् किसी बात को कहने के ढंग का द्योतक है। ऐसे में शिल्प रचनाकार की रचनात्मकता को भी रेखांकित करता है।

हिंदी व्यंग्य साहित्य के शिल्प की अगर बात करें तो व्यंग्य शिल्प के अंतर्गत व्यंग्य में प्रयुक्त अतिरंजना एवं अतिशयता, लक्षणात्मक एवं व्यंजनात्मक भाषा, प्रतीक, शैली, छंद-योजना, अलंकार, उद्धरण युक्त मुहावरे तथा आलोचनात्मक एवं तुलनात्मक शैली आदि का अध्ययन किया जाता है। अर्थात् किसी व्यंग्यकार ने व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा-शैली का प्रयोग किया है उसकी विशेषता एवं प्रवृत्ति आदि का अध्ययन व्यंग्य-शिल्प के अध्ययन के अंतर्गत किया जाता है। किसी रचना की शिल्पगत विशेषता को समझने के लिए उस रचना के भाषा-कौशल एवं शैली कौशल को समझना आवश्यक होता है। जहाँ भाषा कौशल को शब्द-योजना, युग्म-शब्द प्रयोग, स्थायी भाषा के शब्दों का प्रयोग, मुहावरों का प्रयोग, कहावतें एवं सूक्तियाँ, उपमान, रूपक, बिम्ब, शब्द-शक्ति आदि के

प्रयोग के आधार पर समझा जा सकता है। वहीं अगर शैली कौशल की बात करे तो शैली कौशल को वर्णनात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, समास शैली, व्यास शैली, प्रश्न शैली, पत्र शैली, प्रतीक शैली, संवाद शैली एवं नाटकीय शैली एवं काव्यगत शैली आदि के आधार पर समझा जा सकता है।

व्यंग्य-साहित्य, साहित्य की ऐसी विधा है जिसमें अभिव्यक्ति को सीधे तौर पर अभिव्यक्त न करके व्यंग्यकार उसे इस तरह से अभिव्यक्त करता है कि पाठक रचनाकार द्वारा लक्षित विसंगति के बारे में रुचि लेते हुए पढ़े एवं उसके मन में एक टीस सी उठे। अर्थात् सीधे तौर पर विसंगतियों को उजागर करने से जहां पाठक को नीरसता का अनुभव होता है वहीं व्यंग्य के माध्यम से उन विसंगतियों को उजागर करने से पाठक रुचि लेते हुए उन विसंगतियों को ध्यान देता है। व्यंग्य की इसी विशेषता के कारण व्यंग्य की सिर्फ़ वस्तु ही नहीं वरन् शिल्प भी महत्वपूर्ण हो जाता है। जहां साहित्य की अन्य विधाओं में भावनागत शिल्प के आधार पर उनका मूल्यांकन किया जाता है, वहीं व्यंग्य में भावना का स्थान गौण होता है। व्यंग्य में व्यंग्यकार की बुद्धि का मूल्यांकन होता है। अर्थात् व्यंग्यकार बुद्धि का प्रयोग करते हुए व्यंग्य को एक निश्चित दिशा में लक्षित करते हुए उसे पाठक तक किसी अन्य मार्ग से पहुँचाना होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो जहां साहित्य की अन्य विधाएँ उस तीर के समान है जिसे साहित्यकार सीधे लक्षित करते हुए उसे उसके भेद्य तक पहुँचाता है, वहीं व्यंग्यकार को ऐसा नहीं करना होता।

व्यंग्यकार को महाभारत के बर्बरीक की भूमिका निभानी होती है। व्यंग्यकार का मात्र एक लक्ष्य नहीं होता उसे अनेक लक्ष्यों को भेदना होता है एवं साथ ही साथ अवांछित लक्ष्यों को भेदने से बचना भी होता है।

व्यंग्य-साहित्य में प्रयुक्त शिल्प, साहित्य की अन्य विधाओं के शिल्प से अलग होता है। व्यंग्य साहित्य में कटुता का प्रयोग, फूहड़ता का परिचायक न होकर बल्कि व्यंग्य साहित्य के लिए गहना होता है। 'अतिरंजना' एवं 'अतिशयता' व्यंग्य साहित्य में जिस तरह सुशोभित होता है वहीं अन्य विधा में इसका प्रयोग करने पर वह विधा दोषपूर्ण लगने लगती है। व्यंग्य साहित्य में प्रायः लक्षणात्मक और व्यंजनात्मक शब्द शक्ति का ही प्रयोग होता है। इसके प्रयोग से ही साहित्य की वास्तविक मनोवृत्ति का पता चलता है अर्थात् वह व्यंग्य साहित्य का प्रभाव पाठक और समाज को उतना ही विचलित करता है। व्यंग्य शिल्प में गुण के तीनों रूपों (माधुर्य, ओज एवं प्रसाद) का आस्वादन एक साथ किया जा सकता है जो अन्यत्र विधा में विरले ही मिलता है। यही कारण है की व्यंग्य साहित्य में अनेक ऐसे तत्व मौजूद होते हैं जो उसे अन्य विधा से अनूठी और मौलिक बनाती है। व्यंग्य साहित्य में ज्ञानमूलक मनोवृत्ति एवं सूक्ष्मदृष्टि, तिक्त-परिहास, अदम्य-साहस, आलोचना एवं ताड़ना, बुद्धि-वैचित्र्य एवं कल्पना-वैचित्र्य, चरित्र-चित्रांकन, अवनति तथा विशिष्ट-सौंदयार्नुभूति एवं सत्यान्वेषक-दृष्टि को अलंकृत एवं पठनीय ढंग से इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे

पाठक खुद को रचना से दूर न रख पाएं। यही प्रवृत्ति एक व्यंग्य-साहित्य को साहित्य की अन्य विधाओं से पृथक करती है।

प्रत्येक साहित्यकार की अपनी भाषा-शैली होती है, जो उसके साहित्य और उसकी लेखन शैली को अलग पहचान और विशिष्ट स्थान प्रदान करती है। शैली शब्द से अभिप्राय रीति या पद्धति से है अर्थात् किसी कार्य को करने के लिए जो तरीक़ा या ढंग अपनाया जाय वह उस साहित्य की शैली कहलाती है। भाषाई शैली की अगर बात करें तो भाषा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक होता है। भाषा कई संस्कृतियों का निर्विकार मेल है। लेखक के पास भाषा के अलावा अन्य कोई माध्यम नहीं होता है। समकालीन व्यंग्यों के भाषाई विशेषता की बात करें तो व्यंग्य संग्रह 'ऐसा भी सोंचा जाता है' में तर्कपूर्ण भाषा देखने को मिलती है। इस व्यंग्य संग्रह में बड़े ही सहज भाव से विसंगतियों पर चुटकी लेते हुए उनपर प्रहार किया गया है। इस व्यंग्य संग्रह की भाषा में यदा-कदा गाली-गलौज और समाज में उपेक्षित शब्दावली का बड़ा ही सहज भाव से प्रयोग देखने को मिलता है। इन शब्दावलियों का प्रयोग इतनी कुशलता से किया गया है कि पाठक तनिक भी असहज नहीं होता। उदाहरणार्थ-

> "जनेऊ टूट गयी पर पहनने वाला ब्राह्मण ही रहा। जनेऊ ब्राह्मणत्व नहीं है, पहचान है।.........मेरे शहर में एक रेवरेंड तिवारी थे। ये चमार होना चाहते तो नहीं हो सकते थे। चमार ही इन्हें स्वीकार नहीं करते।"[3]

[3] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ६६

इस व्यंग्य संग्रह की भाषागत शैली सहज तथा सरल प्रकृति के हैं। 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों को पढ़कर ऐसा लगता है कि इनकी रचना जनता के बीच रहकर उनके दुख-दर्द को मात्र समझते हुए ही नहीं लिखा गया है वरन् उस वातावरण में जीवन जीते हुए, उस सुख-दुःख को महसूस करते हुए उनकी रचना की गयी हो। शायद यही कारण है कि सामान्यतः इस व्यंग्य-साहित्य में बोलचाल और संवाद के साथ विवरणात्मक पद्धति अपनायी है। 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य-संग्रह नें भाषा के माध्यम से मानवीय व्यवहारों का जो स्वरूप हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है वह हमें समकालीन प्रश्नों से मुठभेड़ करने के लिए सचेत करती है। 'ऐसा भी सोंचा जाता है' के व्यंग्यों में भाषा की ताज़गी बरकरार रहती है। उनके शब्द चयन बेचैनी पैदा करने वाले होते हैं। इनके कहने का लहजा जितना सहज होता है सुनने वाला उतना ही असहज होता है। उदाहरणस्वरूप 'क्या अतिथि देवता नहीं रहा' और 'विदेशी धन के साथ और क्या आयेगा' अध्याय में लिखा है - "सरकार से तो ठहरने और खाने का पैसा लेंगे, मगर मुफ़्त में किसी के यहाँ ठहर जायेंगे और उसका मुफ़्त भोजन कर लेंगे? यह सम्भव नहीं हो सका तो कह रहे हैं-लोग कितने पतित हो गए हैं? और खुद आप?"[4] शब्दों के माध्यम से 'ऐसा भी सोचा जाता है ' व्यंग्य-संग्रह के व्यंग्य पहले तो अन्य लोगों पर प्रहार करते हुए पाठक को यह बात समझाते हैं कि लोग कितने पतित हो गए हैं, उसके तुरंत बाद

[4] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ४६

पाठक को स्व-निरीक्षण के लिए भी प्रेरित करते हैं। यहाँ व्यंग्य मनोवैज्ञानिकता का भी सहारा लेते हैं, जिसके अनुसार किसी व्यक्ति को अगर सीधे उसकी गलती बताई जाए तो वह विरोध में आकर उस गलती को गलती नहीं मानता किंतु यदि किसी अन्य की गलती को उजागर करते हुए अप्रत्यक्ष रूप से यही कार्य किया जाए तो वह अपनी गलती स्वीकार करने के लिए बाध्य होता है। व्यंग्य में मनोविज्ञान के प्रयोग का एक अन्य उदाहरण 'विदेशी धन के साथ और क्या आएगा' में देखने को मिलता है। इसमें मनोवैज्ञानिकता का उपयोग करते हुए लिखा है- "उद्योग-व्यापार विज्ञापन कर-करके उपभोक्ता पैदा करता है। उनका नीति वाक्य है- 'एडवरटाइज आर पेरिश।' विज्ञापन करो वरना नष्ट हो जाओ। इन विज्ञापनों को लगातार नज़र के सामने लाने से आदमी ग़ैर-ज़रूरी को ज़रूरी चीज समझने लगेगा। बिल्कुल वेश्या की तरह फँसाया जाता है, लुभा-लुभाकर आदमी इसी चक्कर में रहेगा कि यह ले लूँ और वह ले लूँ। बीवी और बच्चे बाप को धिक्कारेंगे कि तुम नाकारा हो। पड़ोसियों के घर में वे चीजें आ गईं। तुमने कुछ नहीं किया।"[5] यहाँ पर मनोविज्ञान के सहारे बढ़ रहे पूँजीवाद पर प्रहार करते हुए उसकी तुलना वेश्या से की गयी है। व्यंग्य में भाषा की अगर बात करें तो भाषा हमारी सोच और समझ का परिणाम होती है।

[5] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट २२

'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह में मुहावरेदार उक्तियों, सूत्रों और कहावतों वाले कथनों का प्रयोग भी बड़े ही निर्विवाद रूप से किया है। अविधा, लक्षणा और व्यंजना शब्द-शक्ति की संस्कृति भी बड़े ही गूढ़ अर्थ में समन्वित है जो अभिव्यक्ति की क्षमता को बढ़ाती है। इस व्यंग्य की भाषा अभिजात्य वर्ग से सर्वथा मुक्त ही रही है। उदाहरण के लिए "बाज न आना, बरकाकर निकलना, रोम न दुखाना, राम को रोना, लंगोटी तक उतारकर देना, पूरा न पड़ना आदि ऐसे मुहावरे हैं।"[6] 'ऐसा भी सोचा जाता है 'व्यंग्य संग्रह के प्रायः सभी व्यंग्यों में नये-नये मुहावरों का प्रयोग किया है तथा प्रत्येक मुहावरों में व्यंग्य बड़े ही कलात्मक ढंग से छुपा होता है। उदाहरणस्वरूप कुछ मुहावरे इस प्रकार हैं-

"ज़िंदगी के रोग का और मोह का कोई इलाज नहीं।"[7]

"अपने केंकड़े महासागर के मगर से अच्छे हैं"[8]

"पाप के हाथ में हमेशा पुण्य की पताका लहराती है।"[9]

"जिसकी जितनी मुश्किल से शादी होती है, वह बेचारी उतनी ही बड़ी मांग भरती है।"[10]

"हाथी अपने को केंचुआ मानने में गर्व करने लगा था।"[11]

---

[6] सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन; पृष्ठ 153-154

[7] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट १२

[8] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट १६

[9] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट २२

[10] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ७५

[11] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट १६

“हमारा समाज सदियों से यह वर्ण-व्यवस्था और जातिवाद की दाद पाले है।”[12]

“ज्ञानियों में स्वाभाविक सम्बंध यह है-पण्डित पण्डित को देखकर कुत्ते की तरह गुरगुराता है।”[13]

“महात्मा गांधी का सिंदूर कभी पुँछता है और कभी लगता है।”[14]

उक्त पंक्तियाँ मुहावरों के कुशल एवं कलात्मक प्रयोग का वर्णन करती हैं। उक्त पंक्तियों में ‘उपमा-अलंकार’ का प्रयोग अपने व्यंग्य के तापीय-प्रवाह एवं लक्षित आवेश को बढ़ाने के लिए इतने बखूबी ढंग से किया गया है कि पाठक सहर्ष मुस्कुरा उठता है।

काव्य अपनी बात को प्रभावी, संतुलित एवं मनोहारी ढंग से कहने का माध्यम होता है।‘ ऐसा भी सोंचा जाता है’ में ग़ालिब के शेर के साथ रवीन्द्रनाथ ठाकुर एवं कबीर की छुटमुट पंक्तियों को बड़े ही संजीदगी से बक़ौल किसी भेदभाव के पेश किया गया है। उदाहरणार्थ-

“फ़रिश्ते से बेहतर है इंसान होना,
मगर उसमें लगती है मेहनत जियादा।”[15]

“कहाँ मयखाने का दरवाजा कहाँ वाइज़ ,

---

[12] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट २९

[13] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ३५

[14] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ३८

[15] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ६६

बस इतना जानते हैं कल वो जाता था कि हम निकले”[16] - ग़ालिब

“उत्तम के अस बस मन माहीं
सपनेहुँ आन पुरुष जाग नाहीं”[17]

“सच कह दूँ ऐ विरहमन ग़र तू बुरा न माने
तेरे सनमकदों के बुत हो गए पुराने
अपनों से बैर करना तूने बुतों से सीखा
जंगे-जदल सिखाया वाइज़ को भी खुदा ने
आ ग़ैरियत के परदे इक बार फिर उठा दे
बिछुड़ों को फिर मिला दें नक़्शे कई मिटा दें
सूनी पड़ी हुई हुई है मुद्दत से दिल की बस्ती
आ इक नया शिवालय इस देश में बना दे।” डॉ० इक़बाल

“जो राउर अनुशासन पावौं,
कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं।”[18]

काव्य अपनी बात को प्रभावी, संतुलित एवं मनोहारी ढंग से कहने का माध्यम होता है। काव्य की इन्हीं विशेषताओं में अगर व्यंग्यात्मक अंदाज़

[16] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ११७

[17] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट ४७

[18] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट १५१

का योग हो जाए तो कहने ही क्या। ऐसे में व्यंग्य के प्रभाव में बढ़ोत्तरी एवं व्यंग्यात्मक तत्वों से पूर्णता देखने को मिलती है। ‘ऐसा भी सोंचा जाता है’ व्यंग्य-संग्रह में काव्यगत शैली का प्रयोग करते हुए इसी पूर्णता को प्रदर्शित किया गया है। परसाई जी की काव्यगत शैली में कुछ स्थानों पर तुकबंदी देखने को मिलती है तो कुछ स्थान ऐसे भी हैं जहां तुकबंदी का अभाव होता है। उदाहरणार्थ -

“फ़रिश्ते से बेहतर है इंसान होना,
मगर उसमें लगती है मेहनत जियादा।”[19]

उक्त उदाहरणों में ‘ऐसा भी सोचा जाता है’ व्यंग्य संग्रह के काव्यगत शैली का परिचय देखने को मिलता है। उक्त पंक्तियों में तुकबंदी का अभाव देखने को मिलता है किंतु ये पंक्तियाँ एकदम सटीक ढंग से एक बेहतरीन व्यंग्यात्मक शैली को अभिव्यक्त करती हैं। वहीं अगर तुकबंदी वाले उद्धरण की बात करें तो निम्न पंक्तियों के माध्यम से इस व्यंग्य संग्रह के तुकबंदी वाली शैली को भी समझा जा सकता है-

“उत्तम के अस बस मन माहीं
सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं”[20]

---

[19] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ६६

[20] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ४७

“जो राउर अनुशासन पावौं,

कंदुक इव ब्रह्मांड ऊठावौं।”[21]

उक्त पंक्तियाँ इस व्यंग्य संग्रह के तुकबंदी युक्त काव्यगत शैली को प्रदर्शित करती हैं। परसाई जी के व्यंग्यात्मक अभिव्यक्ति की पूर्णता के साथ मिलकर उक्त पंक्तियाँ अपने सर्वोच्च शिखर पर पहुँच जाती हैं।

इस व्यंग्य-संग्रह में व्यंग्य को और प्रभावी करने के लिए सूक्तियों एवं कहावतों का भी सहारा लिया है। इन सूक्तियों एवं मुहावरों का विषय आधुनिक समस्याओं से लबरेज तो होता ही है साथ ही कहने का तरीक़ा अत्यंत सटीक होता है। कई जगह सूक्तियों एवं कहावतों को अध्याय के केंद्रीय विषय के साथ जोड़ते हुए व्यंग्य किया गया है एवं बाद में उनकी विस्तृत विवेचना की गयी है। उदाहरणार्थ-

“प्रिय अतिथि भी होता है, अप्रिय अतिथि भी"[22]

“प्रार्थनाएँ दो तरह की होती हैं- सार्वजनिक प्रार्थना और हृदय की गुप्त प्रार्थना।”[23]

विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए अतिशयता एवं फेंटेसी का प्रयोग भी इस व्यंग्य संग्रह में बखूबी देखने को मिलता है। मुक्तिबोध ने

[21] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ १५१

[22] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ४७

[23] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ १००

अपनी पुस्तक 'एक साहित्यिक की डायरी' में परसाई जी के इस मत का उल्लेख किया है कि परसाई जी यह मानते थे कि-

"फेंटेसी मुझसे सधती है। मेरा बहुत कुछ सोचना फेंटेसी में होता है। मैं अब कोशिश कर रहा हूँ की कोई लम्बी फेंटेसी लिखूँ जैसी डान क्विकजोट है।"[24]

परसाई जी नें फेंटेसी के माध्यम से व्यवहार में व्याप्त नंगी एवं बेशर्म विसंगति से युक्त यथार्थ पर प्रहार करने का कार्य करते हुए 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह में उसको शामिल किया है।

प्रतीक, व्यंग्य के पैनेपन को एवं व्यंग्य की कटाक्षता की धार को और बढ़ाने का कार्य करता है। व्यंग्यकार विसंगतियों की तुलना समाज में ऐसी चीजों, बातों, घटनाओं, कहानियों एवं ऐसी विसमताओं से करता है जो जनमानस में पहले से ही विसंगति के रूप में विख्यात हैं। कुछ स्थानों पर प्रतीकों को अतिशयता के साथ मिलाकर व्यंग्य की तीक्ष्णता को और बढ़ाया जाता है जिससे पाठक का हृदय कराह उठे। 'ऐसा भी सोंचा जाता है' में परसाई जी नें प्रतीकों का प्रयोग बड़ी कुशलता के साथ किया है। उदाहरण स्वरूप-

---

[24] डॉ० सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन; शब्द संसार प्रकाशन दिल्ली; २००९; पृष्ठ १५६

"उसके चरण अपने हाथ से धोकर ऐसी सेवा करते थे जैसे घर में भगवान आ गए हों।"

जब कोई रचनाकार अपनी कल्पना को मूर्त रूप देता है तो बिम्ब की सृष्टि होती है। "बिम्ब विधान कला का क्रियाशील पक्ष है जो कि कल्पना से उत्पन्न होता है, कल्पना में बिम्ब का आविर्भाव होता है और बिंबों से प्रतीक का।"[25]

इस प्रकार बिम्ब, कल्पना और प्रतीक का ऐसा रिश्ता है जो व्यंग्य को परिमार्जित एवं तीक्ष्ण धारयुक्त बनाती है। इनके अनूठे समागम से विषय अत्यंत मनोहारी एवं ज्वलंत हो उठता है। व्यंग्य संग्रह 'ऐसा भी सोचा जाता है' में जगह-जगह ऐतिहासिक घटनाओं को आधार बनाकर भी व्यंग्य रचना की गयी है। व्यंग को ऐतिहासिकता के साथ जोड़ने की यह कला अनूठी है। परसाई जी इस कला में सिद्धहस्त प्रतीत होते हैं। मलयाली लेखक तकषि शिवशंकर पिल्लै की एक घटना को याद करते हुए इस व्यंग्य संग्रह में लिखा गया है कि "ताशकन्द में एफ़्रो-एशियाई लेखक सम्मेलन में भाग लेने भारतीय लेखकों का मंडल गया था....... मैंने (तकषि जी) पाकिस्तान और बांग्लादेश के प्रतिनिधि मंडलों के नेताओं के साथ बैठकर यह प्रस्तावित किया कि हम तीनों एक संयुक्त वक्तव्य जारी करे। जिसमें बताएँ कि हम तीनों देशों कि एक ही संस्कृति है। तीनों की साहित्य परम्परा

[25] डॉ० सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन; शब्द संसार प्रकाशन दिल्ली; २००९; पृष्ठ १५९

भी एक है। तीनों का एक ही इतिहास है। यह सुनकर पाकिस्तानी नेता नें कहा यह हरगिज़ नहीं होगा। पाकिस्तान की संस्कृति, साहित्य-परम्परा और इतिहास अलग है। मैंने कहा- यह आप क्या कहते हैं? हमारे एक ही महादेश से अलग होकर १९४७ में पाकिस्तान बना। हदें बन गयीं हैं, पर संस्कृति हमारी वही है जो १९४७ तक थी। इस पर पाकिस्तानी लेखक बोले- १९४७ नहीं, पाकिस्तान का इतिहास हज़ारों साल पुराना है। हमारी हज़ारों साल पुरानी संस्कृति है। भारत की संस्कृति से उसका कोई सम्बन्ध या समानता नहीं है।"[26] इस व्यंग्य-संग्रह में उपमाओं का प्रयोग व्यंग्य में विचारों की अभिव्यक्ति के लिए किया गया है। उपमाओं के प्रयोग से व्यंग्य में तीक्ष्णता एवं प्रहारात्मकता में वृद्धि होती है।

भाषा की ऐसी ही विशेषता 'यत्र तत्र सर्वत्र' में भी देखने को मिलती है। 'यत्र तत्र सर्वत्र' व्यंग्य संग्रह में भाषा-शैली पर विशेष ध्यान दिया है। जहां पर जैसी भाषा-शैली की आवश्यकता रही है एवं जैसे वाक्य विन्यास की आवश्यकता पड़ी है शरद जी नें वहाँ उसी रूप में उसका प्रयोग किया है। भाषा अपने भावों को अभिव्यक्त करने का माध्यम होती है। अतः भाषा वैसी ही होनी चाहिए जिससे रचनाकार पाठक के मन में वही भाव उतार सके जिस भाव की अभिव्यक्ति वह अपनी रचना में कर रहा है। इस व्यंग्य संग्रह में युग परिवर्तन के अनुसार भाषा की प्रवृत्ति में परिवर्तन को स्वीकार करते हुए भाषा की नवीनता को बरकरार रखा गया है। भाषा की इसी

[26] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ९०

नवीनता के कारण व्यंग्य अभिव्यक्ति में पूर्ण रूप से सफल होती है। भाषा के प्रवाह को और प्रभावी करने के 'यात्रा तत्र सर्वत्र' में मुहावरों एवं कहावतों का बखूबी प्रयोग भी देखने को मिलता है।

मुहावरों के प्रयोग से भाषा प्रवाह को और भाषा के सौंदर्य को सँवारने का कार्य किया गया है। 'यत्र तत्र सर्वत्र' में आम-बोलचाल की भाषा को व्यंग्य का आधार बनाया गया है, जिससे कि आम आदमी अपने आप को इन व्यंग्यों से जोड़ सके। 'यत्र तत्र सर्वत्र' में सीधी भाषा को अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए चुना गया है। आम बोलचाल की भाषा को अपने व्यंग्य का माध्यम बनाने के लिए कई स्थानो पर अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। अंग्रेज़ी के ये शब्द आम जनमानस में प्रचलित शब्द होते हैं। उदाहरण के लिए - एडजस्टमेंट, फ़ाइल, पिक्चर, आफकोर्स, लंच, ट्रक, स्टेशन, रेडियो, लिफ़्ट, पोलिटिक्स, स्टाफ़, किचन, वेटर, प्रोजेक्ट, आफ़िसर आदि शब्द इनके व्यंग्य में बहुतायत देखने को मिलते हैं। ये शब्द इनके व्यंग्य के विषय एवं व्यंग्य भाषा में रोचकता की वृद्धि करते हैं तथा इनके प्रयोग से व्यंग्य के प्रभाव में भी वृद्धि देखने को मिलती है।

'यत्र तत्र सर्वत्र' में व्यंग्य के प्रभाव की वृद्धि के लिए अंग्रेज़ी के शब्दों का प्रयोग देसी अंदाज़ में भी देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में अंग्रेज़ी के शब्दों का किस प्रकार देशीकरण हो जाता है उसका विवरण हमें 'यत्र तत्र सर्वत्र' के अनेक व्यंग्य अध्यायों में देखने को मिलता है-

"लगता है चेन पुलिंग हुआ है?

हाँ चेन पुलिंग हुआ है।

आसपास कोई भिलेज भी नहीं है। एकदम फारेस्ट में आकर चेन पुलिंग करने का का मतलब?

फ़िज़ूल पेसिंजरों का भेस्ट आफ टाइम करते हैं ये लोग।

ऐही से तो ट्रेन लेट होती है।

इस तरह चेन पुलिंग होने लगा तो गार्डउ ससुर का करेगा।

रेल्वई का अथारिटी ही खतम हो गया है भाई।"[27]

अंग्रेज़ी शब्दों के अतिरिक्त आम बोलचाल में प्रयुक्त होने वाले अरबी-फ़ारसी शब्दों का प्रयोग भी 'यत्र तत्र सर्वत्र' के अनेक अध्यायों में देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए- बेवफ़ाई, बेवक़ूफ़, बदबू, खुराक, शौक़, जाहिल, इबारत, इज्जत, हुक्म, उस्ताद, तलाशी, मुल्क, शैतान, मददगार, माशूक़, बहस, औलाद, वक्त, मरीज़, मुवायना, इनकार, क़मीज़, इंतज़ार आदि को लिया जा सकता है। कुछ स्थानो पर अभिजात्य एवं सांस्कृतिक शब्दों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। व्यंग्यों में अभिजात्य एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दों के प्रयोग से व्यंग्य रचना में उत्कृष्टता का बोध होता है। रचना में उत्कृष्टता के बोध से व्यंग्य आम जनमानस से अलग ना हो जाए इसके लिए कई जगह उसे आम जनमानस के सामान्य बोलचाल से जोड़ने का प्रयास भी किया गया है। इस प्रयास के लिए कई स्थानों पर अपशब्दों

[27] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ठ २८७

का भी प्रयोग देखने को मिलता है। ये अपशब्द आम जनमानस द्वारा प्रयुक्त शब्द होते हैं। जैसे-

"क्यों बे, आजकल बहुत बड़ा आदमी हो गया है।"[28]

साहित्यकार एक सुसंगठित शैली के प्रयोग से अपनी रचना को आकर्षक बनाता है। रचना में आकर्षण होने से पाठक रचना से चिपका रहता है। अतः शैली एक रचनाकार की सफलता का महत्वपूर्ण तत्व है। 'यत्र तत्र सर्वत्र' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में इसी उत्कृष्टता का बोध होता है। इसके व्यंग्यों में "प्रसाद, ओज और माधुर्य के परंपरानुमोदित गुण विद्यमान हैं, और वे व्यंग्यकार के अभिप्रेत्य लक्ष्य संधान का अनिवार्य साधन है। जोशी जी की सजीव शैली और सशक्त गद्य शैली उनके शिल्प प्रधान और कला की देन से कम महत्वपूर्ण नहीं है वह भावना और विचार से परिपूर्ण है। जोशी जी की भाषा शैली में सजीवता दृष्टव्य है।"[29] शैली की प्रवाहता एवं परिपूर्णता, रसानुभूति के लिए एक महत्वपूर्ण कारक है। व्यंग्य में रसानुभूति की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस व्यंग्य संग्रह में प्रवाह की पूर्णता के लिए शैली एवं भाषा की सजीवता का इस प्रकार से प्रयोग किया गया है कि व्यंग्य से अनायास ही रसानुभूति हो सके। इस व्यंग्य-संग्रह में प्रयुक्त सरस शैली, अलंकारिक भाषा एवं माधुर्य से परिपूर्ण भाषा का प्रयोग इसके

---

[28] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ठ १११

[29] डॉ० सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन; शब्द संसार प्रकाशन दिल्ली; २००९; पृष्ठ २३५

व्यंग्यों में भावुकता एवं मार्मिकता का स्तर बढ़ा देती है। इन व्यंग्यों में शैली भावों की मधुरता के अनुसार कोमलता ग्रहण करती है। भावों की व्यंजना में अगर उग्रता है तो शैली में ओज भी देखने को मिलता है। शैली की यह विशेषता अर्थात् रूप ग्रहण करना, भाव अभिव्यक्ति के आधार पर वेश धारण करना, लक्षित व्यंग्य के तेज के आधार पर रस निस्पादन आदि विशेषता इस व्यंग्य-संग्रह के सम्पूर्ण व्यंग्य में देखने को मिलता है। ये सभी विशेषताएँ इन व्यंग्यों की चित्रात्मकता को बढ़ाती हैं। 'यत्र तत्र सर्वत्र' के व्यंग्यों में रहन-सहन, वेश-भूषा, वातावरण एवं परिवेश का ऐसा सूक्ष्म चित्रण देखने को मिलता है कि पाठक के हृदय-पटल पर सम्पूर्ण सजीव चित्र अंकित हो जाता है।

'यत्र तत्र सर्वत्र' व्यंग्य संग्रह में चुनाव में खड़ा आदमी, इंदौर के स्वर में, आषाढ़ का एक दिन, आकाश देखते हुए, वह पिछला विश्व कप आदि अध्याय विवरणात्मक शैली में लिखे गये हैं। शरद जोशी जी के विवरणात्मक शैली के अंतर्गत लिखे गए व्यंग्यो से सजीवता का अनुभव होता है। उदाहरणार्थ-

> "चुनाव के इन दिनों में उनके दांत होंठो की क़ैद से बाहर आये। सूरज की किरण में चमके। उनकी मुस्कुराहट मानो कोई कम्पनी बोनस बाँट रही हो, दिल और आत्मा पर असर कर रही है। आज उन्हें

जनता नें मुस्कुराते हुए देखा। एक फ़ोटोग्राफ़र ने उन्हें हँसते देखा और कैमरा सामने ला अपने कर्तव्य का शटर दबा दिया।"[30]

"पूरे शहर में विवाह के बगूले उठ रहे हैं। फूहड़ प्रदर्शन की आँधी चल रही है। हर व्यक्ति या तो खुद विवाह कर रहा या किसी की बारात में जा रहा है। जगह-जगह मेहमानों की प्रतीक्षा है। आइए और मण्डप की शोभा बढ़ाइए। चाशनी से मिठाइयाँ उभरीं और काग़ज़ की प्लेटों से होती हुई लोगों के पेटों में समा गयीं।"[31]

इस व्यंग्य संग्रह के कई व्यंग्य-अध्यायों की रचना काल्पनिक शैली का सहारा लेते हुए भी की गयी है। काल्पनिक शैली का प्रयोग करते हुए शरद जी नें विसंगति के मूल से लेकर सम्पूर्ण विसंगति पर अपनी व्यंग्यात्मक कला के माध्यम से प्रहार किया है।

"ईश्वर नें आगे बढ़कर उससे बातचीत की और पूजा-कार्य की ओर युवक की रुचि बढ़ाने का कार्य किया। युवक नें एक बात कही 'पगार' क्या होगी?- ईश्वर ने कहा- चढ़ोतरी में से पूजन-सामग्री का खर्च काटकर बाक़ी सब तुम रख लेना।

उँह....पक्की बात कहिए की प्रतिमाह यह मिलेगा। फिर साल में कितनी रक़म बढ़ेगी। बोनस क्या मिलेगा। छुट्टी कितनी रहेगी, महँगाई क्या होगी, पेंशन कितने साल बाद मिलेगी?"

---

[30] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ठ ११

[31] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ठ ६५

संवाद शैली का प्रयोग रचना में जीवंतता एवं चित्रात्मकता को बढ़ाने के लिए किया किया गया है। ‘यत्र तत्र सर्वत्र' के व्यंग्यों में संवाद शैली का उदाहरण प्रस्तुत है-

“क्यों री, ये कौन था?

कौन?- बसंती ने पूछा।

अरे जो अभी पानी पीकर गया।

बराबर तो नहीं पता, रामलाल या रामप्रसाद ऐसा ही कुछ नाम है। पीछे के बाड़े में रहता है।

तू कैसे जानती है उसे।

मैं नहीं जानती। वहाँ नल पर पानी भरने आता है सो जानता है मुझे। कहने लगा, बाई पानी पिला दो, तो मैंने पिला दिया।

हूँ, मैंने पिला दिया......! अरी ये सब तेरी जवानी देख मँडराते हैं। तैने ज़रा आँख ढीली की और इनका काम बना। -सत्तो ने कहा।”[32]

अभिव्यक्ति की कुशलता एवं भावों की सहजता के साथ व्यंग्य को प्राणवान एवं जीवंत बनाने की प्रवृत्ति हमें ‘पूरब खिले पलाश’ व्यंग्य संग्रह में स्पष्ट रूप से देखने को मिलती है। ‘पूरब खिले पलाश ’व्यंग्य संग्रह में

---

[32] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; दिल्ली; पृष्ठ १८९

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक, चारित्रिक, साहित्यिक एवं मनोवैज्ञानिक आदि कई क्षेत्रों व्याप्त विषमता को आधार बनाया गया है। विषय विविधता के कारण 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह में किसी बात को कहने का जो ढंग है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है। 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य-अध्याय पाठक को जकड़े रहती हैं और इतनी रुचिपूर्ण हैं कि पाठक एक बार पढ़ना शुरू करता है तो अंत तक रचना से जुड़ा रह जाता है। किसी व्यंग्यकार के लिए पाठक को अपने से जोड़े रखना एक अनूठी प्रतिभा होती है जो त्यागी जी में कूट-कूट कर देखने को मिलती है। यही वजह है कि रवीन्द्रनाथ त्यागी जी को श्रेष्ठ व्यंग्यकारों की श्रेणी में गिना जाता है। विषय-विविधता के कारण 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में भाषाई विविधता भी देखने को मिलती है। इसका कारण यह है कि विषय की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा की या जिस भाषा के शब्दों की आवश्यकता पड़ी त्यागी जी नें उसे ही अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया है। इन व्यंग्यों में संस्कृत, उर्दू, अंग्रेज़ी एवं लोकभाषा के शब्द विषय एवं पर्यावरण के अनुसार देखने को मिलते हैं। रवीन्द्रनाथ त्यागी जी नें कई स्थानो पर विशुद्ध साहित्यिक भाषा का प्रयोग भी किया है। उदाहरणस्वरूप -

> "हे लाड़ली तू उत्तर दिशा को अकेले कभी नहीं जाना। वहाँ गंधर्व किन्नर रहते हैं, चाँदनी की मोहित खोहों में दर्पण से सरोवर है जिनके द्वारों पर मुहासों के झीने पर्दे पड़े हैं और शची जो है वे रक्त

पद्म से हृदय पात्र में स्वर्णिम मधु उड़ेलकर इस भाँति पिलाती है कि इंद्रियों की नींद उचर जाती है। इस कारण ओ आवरी, तू वहाँ अपना यह देहमान लेकर कभी अकेले नहीं जाना।"[33]

प्रसंग को ध्यान में रखते हुए संस्कृतनिष्ठ शब्दों जैसे- चर्मचशु, प्रगल्भ, ज्ञानचक्षु, शलज्ज, लौह-पथ गामिनियाँ, कृष्णपट्ट, चर्मपादुका, शरीरांग, पंचविशंति, मत्स्योदन-भक्षी, गमनागमनसूचकयंत्र, द्युति आदि का प्रयोग भी किया गया है। जगह-जगह पर प्रसंग के अनुसार सांस्कृतिक श्लोकों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए-

सा ससाध्वससानन्दं गोविंदे लोल-लोचना।
सिंजाना मंजुमंजीरं प्रविवेश निवेशनम्।।[34]

अभिनवमदलीला लालसं सुन्दरिणां,
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा।[35]

एकोपि जीयते हंत कालिदासो न केनचित्।
श्रिंगारे ललितोद्गारे कालिदासत्रयी किमु।।[36]

---

[33] डॉ० सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन; शब्द संसार प्रकाशन दिल्ली; २००९; पृष्ठ २७७

[34] रवीन्द्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ५६

[35] रवीन्द्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ५९

[36] रवीन्द्रनाथ त्यागी; इतिहास का शव; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ४५

उक्त श्लोकों के अतिरिक्त संस्कृत के श्लोकों में हिंदी व देशज शब्द शामिल करते हुए व्यंग्य में हास्य रस को बढ़ाने का कार्य किया गया है। उदाहारण के लिए -

"सिद्धि श्री झाँसी लिखी, राम राम प्रिय भ्रात
अत्र कुशलं तत्रास्तु, कक्का मरि गए रात।"[37]

प्रसंगों के अनुसार संस्कृत शब्दों एवं श्लोकों के प्रयोग में त्यागी जी के व्यंग्यों में एक अनूठी रोचकता का समावेश हुआ है।

'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में संस्कृत के अतिरिक्त अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का प्रयोग भी देखने के लिए मिलता है। इनके प्रयोग से मात्र विनोद में ही नहीं वरन् कटाक्षता में भी वृद्धि हुई है। मोनोपाली, स्पेशलिस्ट, वेटिंगरूम, सेक्रेटरी, रायल्टी, मनीऑर्डर, अकाउंटंट, प्रोजेक्ट, कान्स्टबल, पोस्टमास्टर, डिसमिस, ऐग्रिकल्चर, डेलीगेशन, ब्यूरोक्रेट, शिफ़्ट, परफ़ैक्ट, इंडियन, रेटलिस्ट, डायरिंग, डायरेक्टर, इंडिफेरेंट, सर्विस, अटैंड, यूनिफार्म, मॉडल, इंटेलेक्चुअल, रोमांटिक, सेक्सी, प्रैक्टीकल, क्लासिकल आदि। पात्रानुकूल भाषा के प्रयोग में उपर्युक्त शब्दों के अतिरिक्त अंग्रेज़ी के वाक्यों का भी प्रयोग किया है।

[37] रवीन्द्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ३५६

दी रैंजम ऑफ दी रेड चीफ, लौंग लीव दी किंग,

पोइट्री इज ग्रेट वर प्रोज इज डिवाइन, दि क्वीन

ऑफ शैवा, दी वर्ल्ड वाई नाईट, दी न्यू रिलीवन,

दी पेंटेड बील, सर, यू हैड ए च्वाइस आई हैड नन,

ही कैन टॉक फार हावर्स विदआउट सेचिंग एनीथिंग।[38]

उक्त वाक्यों को प्रयोग से पात्रों की सजीवता का बोध होता है। एवं पाठक के हृदय पटल पर पात्र की वही छवि प्रस्तुत होती है जो व्यंग्यकार का लक्ष्य होता है।

अंग्रेज़ी के अतिरिक्त उर्दू भाषा प्रयोग भी 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह में किया गया है। 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में उर्दू के शब्द जैसे मग़रीब, मज़ाक़, मशारिक, रूमाल, इंतिहाँ, फ़क्त, गफ़लत, कफ़न, पैरहन, बिस्मिल्लाह, अलबत्ता, शहनाई, ख़ुशमिज़ाजी, सलूक, क़सूर, नफ़रत, मुसम्मता, आबदार, हर्गिज, आमीन, अफ़सोस, ज़बरदस्त, हासिदों, इत्तला, दस्तख़त, दयानदारी, खतोकिताब, रूखसत, लानतें, मोहलत, सबब, अदद, तमीज़दार आदि का प्रयोग देखने को मिलता है। उर्दू के ये शब्द आम जनमानस में ख़ासा प्रचलित रहे हैं। इन शब्दों का प्रयोग त्यागी जी नें इनके प्रचलन के आधार पर किया है ताकि व्यंग्य में जीवंतता एवं व्यंग्य के प्रभाव को और बढ़ाया जा सके।

---

[38] रवीन्द्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ५१

मुहावरों एवं कहावतों का प्रयोग 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह में बखूबी किया गया है। मुहावरों का प्रयोग करते वक्त भी त्यागी जी नें उन मुहावरों के प्रचलन को विशेष रूप से ध्यान दिया है। 'पूरब खिले पलाश ' व्यंग्य संग्रह में उन्हीं मुहावरों एवं कहावतों को स्थान मिला है जो आम बोलचाल की भाषा में बहुतायत प्रयोग किए जाते थे। सूक्तियाँ केवल अनुभव एवं कल्पना का ही योग नहीं होती वरन इसमें लेखक के विचारों, चिंतन एवं सामाजिक समस्याओं के प्रति नज़रिया भी जुड़ा रहता है। इसका परिणाम यह होता है कि रचनाकार की शैली में रोचकता एवं उसके लेखों के प्रभाव में अभिवृद्धि देखने को मिलती है। 'पूरब खिले पलाश 'व्यंग्य संग्रह में शामिल व्यंग्यों में सूक्तियों का प्रयोग इसी उद्देश्य की प्राप्ति के लिए किया है और वे उसमें पूर्ण रूप से सफल भी रहे हैं।

'इतिहास का शव', 'भाद्रपद की साँझ', 'देश विदेश की कथा', 'पूरब खिले पलाश', 'शुक्लपक्ष', 'विषकन्या', 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' एवं 'चंपाकाली' व्यंग्य संग्रहों में पर्याप्त शिल्पगत समानता देखने को मिलती है। 'पूरब खिले पलाश' व्यंग्य संग्रह में कई अध्याय तो ऐसे हैं जो अन्य किसी रचना में भी संकलित किए गए हैं। यही वजह है कि इन सभी रचनाओं में लोकगीतों में एवं कविताओं का प्रयोग देखने को मिलता है।

"श्रद्धा का तिकड़म से नाता
जय हे भिक्षुक, जय हे दाता
पियो संत हुगली का पानी

पैसा सच है दुनिया फ़ानी”[39]

“कल के अख़बार में ज़ोरदार लेख था
लेखक का कहना था- नेहरू डिक्टेटर है
आज तो महीने की आख़िरी तारीख़ है
आटा कनस्तर में काल ही से ख़त्म है।”[40]
"प्रीत के रोगी सबकुछ बूझे, सब कुछ जाने होते हैं
इन लोगों के ईंट न मारो, कहाँ दीवाने होते हैं
इंशा जी छब्बीस बरस के ऐसी बातें करते हो
इंशा जी इस उम्र के लोग तो बड़े सयाने होते हैं”[41]

“कुछ गोरियाँ, कुछ भोरियाँ
लालाजी ज़ेवर बना दो
ख़ाली करो तिजोरियाँ
काँगड़े की छोरियाँ”[42]

“द्वारे राम साला है, पिछारै बन माला है
हवेली परी आला है, अकेली मोहीं रहने

[39] रविंद्रनाथ त्यागी; इतिहास का शव; राजकमल प्रकाशन; १९९३; पृष्ठ ६१

[40] रविंद्रनाथ त्यागी; भाद्रपद की साँझ; राजकमल प्रकाशन; १९९६; पृष्ठ ३०

[41] रविंद्रनाथ त्यागी; देश विदेश की कथा; किताबघर प्रकाशन; १९९४; पृष्ठ ८३

[42] रविंद्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ; १९९८; पृष्ठ १५१

कहति हौं पुनि सास ननद झुके न मोपे
आओगे हो जाओगे न भरी दुपहरी में"[43]

कई स्थानों पर अपनी कही हुई बातों को प्रमाणित करने के लिए कवियों/शायरों की पंक्तियों का सहारा लिया है और कई स्थानों पर व्यंग्य में हास्य की मात्रा बढ़ाने के लिए भी कवियों/शायरों की पंक्तियों का प्रयोग देखने को मिलता है। अकबर, ग़ालिब, इक़बाल जैसे शायरों के कलाम इनकी रचनाओं की शोभा बढ़ाते हैं और साथ ही साथ इन्होंने कुछ मौलिक शायरियों को भी आधार बनाया गया है।-

"एक तस्वीर को देखा जो कमाले फ़न थी
भैंस के जिस्म पे एक ऊँट सि गर्दन थी
एक तस्वीर जो देखी तो सूरत यह थी
जिसको समझे थे अनानास वो औरत निकली।"[44] -
(रवीन्द्रनाथ त्यागी)

"उन्हीं के मतलब की कह रहा हूँ, ज़बान मेरी है बात उनकी
उन्हीं की महफ़िल सँवारता हूँ, चिराग़ मेरा है रात उनकी

---

[43] रविंद्रनाथ त्यागी; शुक्लपक्ष; कल्पतरु प्रकाशन; १९९४; पृष्ठ ८०

[44] रवीन्द्रनाथ त्यागी रचनावली - ४; पृष्ठ ४६

फ़क़त मेरा हाथ चल रहा है, उन्ही का मतलब निकल रहा है

उन्हीं का मजमू, उन्ही का काग़ज़, कलम उन्हीं की दवात उन्हीं की।”[45] (अकबर)

“इंतिहाँ भी इसकी है, आख़िर ख़रीदें कब तक

छतरियाँ, रूमाल, मफ़लर, पैरहन जापान से

अपनी गफ़लत की यही हालत अगर क़ायम रही

आएँगे कफ़न क़बूल से, कफ़न जापान से।”[46]

(इक़बाल)

उक्त पंक्तियों के प्रयोग से व्यंग्यों में पाठक को असीम आनंद की प्राप्ति होती है। इसके अतिरिक्त विभिन्न साहित्यकारों द्वारा व्यंग्यात्मक ढंग से लिखी गयी भूमिका को भी व्यंग्य की प्रभावत्मकता में वृद्धि के लिए भी प्रस्तुत किया गया है। उदाहरण के लिए-

“जिस तरह कहानी न लिख पाने पर मैंने भूमिका लिखी, उसी तरह कुछ और न लिख पाने पर मैंने ये कहानियाँ लिखीं। की बार ऐसा होता है कि मै कविता लिखने बैठता हूँ पर लिख पाता हूँ

---

[45] रविंद्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ; १९९८; पृष्ठ ३६४

[46] रविंद्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ; १९९८; पृष्ठ ३३१

> कहानी। और कविता में इसलिए लिख रहा था क्योंकि मैं कोई नाटक नहीं लिख पा रहा।" (रघुवीर सहाय)

अगर शैली की बात करें तो इन रचनाओं में विविध शैलियों का प्रयोग देखने को मिलता है। इनमें से कुछ प्रमुख शैलियां-उपदेशात्मक शैली, विवेचन शैली, संस्मरण शैली, विचारात्मक शैली एवं सूत्रात्मक शैली आदि हैं। इन शैलियों के प्रयोग ने त्यागी जी नें रचनाओं को और प्रभावी एवं आकर्षक बनाया है। उपदेशात्मक शैली की अगर बात करें तो इस शैली में विभिन्न विसंगतियों/समस्याओं आदि को उजागर करते हुए एवं विवेचन करते हुए उन विसंगतियों/समस्याओं को दूर करने के कुछ सुझाव दिए हैं। ये सुझाव उपदेश देने के तरीक़े पर आधारित होते हैं। जिसकी वजह से इन्हें उपदेशात्मक शैली के रूप में वर्गीकृत किया गया है। 'पूरब खिले पलाश' में इस शैली को देखा जा सकता है-

> "मेरी राय में लेखकों को इस प्रकार का कमीशन तुरंत संगठित किया जाना चाहिए। मेरे विचार से तीन व्यक्तियों का आयोग पर्याप्त होगा। आयोग का एक सदस्य उत्तरी भारत का होगा और वह मेजर जनरल होगा। दूसरा सदस्य मध्य भारत का होगा और वह इण्डियन सिविल सर्विस का सदस्य होगा। आयोग का तीसरा सदस्य

दक्षिण भारत का होना चाहिए और वह कोई अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश होगा। आयोग की सदारता उसी के हाथ में होगी।"[47]

विवेचनात्मक शैली की अगर बात करें तो इस शैली के अंतर्गत किसी वर्तमान स्थिति को उजागर करने का कार्य किया गया है। विवेचनात्मक शैली के प्रयोग के आधार पर व्यंग्य-अध्याय कालीदास का जन्म स्थान, अच्छी हिंदी जैसे व्यंग्य लेखों को लिखा गया है। अगर संस्मरण शैली की बात करें तो संस्मरण शैली वह शैली है जिसमें रचनाकार अपने अतीत की कुछ स्मृतियों को याद करते हुए अपनी कलम चलाता है। 'देश विदेश की कथा' व्यंग्य-संग्रह में संस्मरण शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। अनेक स्थानों पर वे कई घटनाओं का ज़िक्र करते हुए ये व्यंग्य रचना करते हैं।' देश विदेश की कथा 'व्यंग्य-संग्रह में त्यागी जी अपने जीवन से जुड़ी हुई तमाम घटनाओं का ज़िक्र इस शैली के माध्यम से करते हैं।

"सन् बासठ में मैं पटना में नियुक्त था। गणतंत्र दिवस की शाम को राज-भवन में होने वाली चाय-पार्टी का निमंत्रण मिला और मैं सपत्नीक वहाँ गया। राज्यपाल थे डॉ० ज़ाकिर हुसैन जिन्होंने बड़े तपाक से हाथ मिलाया। पार्टी में एक पुराना दोस्त मिल गया जो प्रयाग के झा-हॉस्टल में मेरे साथ रहता था।"[48]

---

[47] रविंद्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ; १९९८; पृष्ठ ६०

[48] रवीन्द्रनाथ त्यागी, देश-विदेश की कथा, किताब घर प्रकाशन, दिल्ली, १९९४; पृष्ठ ३४

एक व्यंग्यकार अपने ही विचारों को मूल रूप से प्रस्तुत करता है क्योंकि बिना मौलिक विचारों एवं मौलिक भाषा-शैली के व्यंग्य-लेखन सम्भव नहीं है। व्यंग्यकार वैचारिक रूप से इतना सिद्धहस्त हो जाता है कि वह बारीक से बारीक विसंगतियों पर भी ध्यान देता है। और उससे सम्बंधित विचार को प्रस्तुत करता है। ऐसे में हर व्यंग्यकार की विचारात्मक शैली उसके व्यंग्य को अनूठा बनाती है। 'पूरब खिले पलाश' व्यंग्य संग्रह में किसी विषमता पर प्रहार करने के लिए फेंटेसी को भी माध्यम बनाया गया हैं। फेंटेसी के प्रयोग में अधिकतर किसी कथा, ईश्वर या फिर किसी ऐतिहासिक घटना को आधार बनाते हुए, उसे वर्तमान विषमताओं से जोड़ते हुए फेंटेसी निर्माण किया है।

> "यह शहर बड़ा अजीब था। और कुछ अजीब मुक़ाम मैंने पहले भी देखे थे पर वे इसके सामने कुछ नहीं थे। यहाँ के लोग सिर्फ़ लिखने-पढ़ने का धंधा करते थे जिनमें पढ़ना कम और लिखना ज़्यादा होता था। शहर का हर एक आदमी कुछ-न-कुछ लिखता था- कोई कविता करता था तो कोई नाटक लिखता था। लिखने के अलावा जो वक्त इनके पास बचता था उसमें ये लिखी हुई चीजें एक-दूसरे को सुनाते थे।"[49]

[49] रविंद्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ; १९९८; पृष्ठ ९५

इन सभी व्यंग्य संग्रहों में संवाद शैली का प्रयोग कहीं न कहीं अवश्य देखने को मिलता है। संवाद शैली का उदाहरण प्रस्तुत है-

"राजा: अबे, ओ विदूषक के बच्चे!

विदूषक: जी, सरकार!

राजा: अबे, वह बाँकी छोकरी कहाँ गयी?

विदूषक: बाँस की टोकरी, सरकार?

राजा: अबे, सरकार के बच्चे, बाँस की टोकरी नहीं, बाँकी छोकरी!

विदूषक: जी, सरकार, मैं भी वही कह रहा हूँ। बाँके की छोकरी कहाँ गयी? मेरे ख़याल से सरकार वह छोकरी बाँके के साथ कहीं चली गयी।"[50]

'इतिहास का शव', 'भाद्रपद की साँझ', 'देश विदेश की कथा', 'पूरब खिले पलाश', 'शुक्लपक्ष', 'विषकन्या', 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा 'एवं 'चंपाकाली 'व्यंग्य संग्रहों में प्रतीक एवं बिम्ब का अनूठा समावेश देखने को मिलता है। त्यागी जी के उपमाओं नें उनके व्यंग्यों में प्रहारात्मकता एवं तीक्ष्णता को बढ़ावा दिया है।

[50] रविंद्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ; १९९८; पृष्ठ ९६

'खम्भों का खेल', 'दांत में फँसी कुर्सी 'एवं 'गंगा से गटर तक 'व्यंग्य संग्रह में में भी पर्याप्त समानता देखने को मिलती है। एक व्यंग्यकार को किसी विषमता पर प्रहार करने के लिए अनेक शैलियों का सहारा लेना पड़ता है। एक सच्चा व्यंग्यकार वही है जिसके व्यंग्यों में विषय वैविध्यता के साथ-साथ शैली में भी विविधता देखने को मिलती है। 'खम्भों के खेल' व्यंग्य संग्रह में इसी विविधता का परिचय देखने को मिलता है। इस व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, साक्षात्कार शैली, विवरणात्मक शैली, आलोचनात्मक शैली, पत्रात्मक शैली, स्वप्न शैली, मिथकीय शैली, रेखाचित्र आदि लेखन शैली का प्रयोग देखने को मिलता है।

वर्णनात्मक शैली की बात करें तो इस शैली के अंतर्गत 'खम्भों का खेल', 'दांत में फँसी कुर्सी' एवं 'गंगा से गटर तक' व्यंग्य संग्रह में इस शैली का प्रभाव देखने को मिलता है। खम्भों का खेल व्यंग्य संग्रह की भूमिका में कमलेश नें लिखा है कि "वर्णन परक गद्य में ही व्यंग्य लेखन की रीति जन्म लेती है और विकसित होती है तथा व्यंग्य का मूल कटुता में निहित होता है। यदि कटुता की समाप्ति हो जाए तो समझ लो व्यंग्य की भी समाप्ति हो जाती है।"[51] वर्णनात्मक शैली की अगर बात करें तो गोपाल चतुर्वेदी जी इस शैली में सरल एवं सहज भाषा का प्रयोग करते हैं। खम्भों का खेल व्यंग्य संग्रह में अनेक व्यंग्यों में वर्णनात्मक शैली में इतनी कुशलता से लिखे गए

[51] गोपाल चतुर्वेदी, खंभों के खेल, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; (भूमिका)

हैं कि ये व्यंग्य-अध्याय वास्तविकता का अनुभव कराते हैं। दांत में फँसी कुर्सी, गंगा से गटर तक आदि व्यंग्य निबंधों में भी वर्णनात्मक शैली की इसी विशेषता को देखा जा सकता है।

'खम्भों का खेल', 'दांत में फँसी कुर्सी 'एवं 'गंगा से गटर तक' इन तीनो व्यंग्य संग्रहों में संवाद शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। संवाद शैली की विशेषता यह है कि वह व्यंग्य से मिलकर व्यंग्य की चित्रात्मकता बढ़ा देती है। इस अनूठे अनूठे संयोग से व्यंग्य के तापीय प्रवाह को संयमित किया जा सकता है। व्यंग्य में संवाद शैली के द्वारा एक पात्र सामान्य वक्तव्य देता है तथा दूसरा ओजपूर्ण या तापीय वक्तव्य देने वाला होता है। इससे व्यंग्य के ताप को संयत रखा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि पाठक अपने व्यक्तित्व के अनुसार खुद को किसी एक पात्र का प्रतिरूप महसूस करने लगता है और उस व्यंग्य रचना से आत्मीय रूप से जुड़ जाता है।

"कमीशन राज सबको सूट करता है।

'वह कैसे? हमने जानना चाहा।'

'जो जितना चंदा देता है, वह उतना ही धंधा करता है।'

'पर सप्लाई घटिया और माल महँगा होगा।'

'इसमें भी देश को फ़ायदा है.....'

'यह नहीं हो सकता।' हमने इनकार में सर हिलाया। उन्होंने फ़ायदा समझाया-

'घटिया सामान से देश की आबादी घटती है। देश का धन जाया हो पर अपनों की जेब भरती है'।[52]

इन व्यंग्य संग्रहों के व्यंग्य-अध्याय 'दुम की वापसी', 'लाल आँख के फ़ायदे', 'हमारे राष्ट्रीय शोक', 'छोटे नेता और नाक', 'फ्री के फ़ायदे' आदि में संवाद शैली के पुट देखने को मिलते हैं। इसके अतिरिक्त बिल का सदाचार, दहेज की दरकार जैसे व्यंग्य लेख पूर्ण रूप से संवाद शैली में ही लिखे गए हैं।

अक्सर देखा गया है कि साक्षात्कार शैली वर्णनात्मक शैली या फिर संवाद शैली के रूप में वर्गीकृत किया जाता है, किंतु अगर ध्यान से देखे तो वास्तव में इन दोनो शैलियों के अंशों का साक्षात्कार शैली में मिलने के बावजूद साक्षात्कार शैली का अपना स्वयं का अस्तित्व है। साक्षात्कार शैली में दो पात्रों के बीच या पात्रों के समूह के बीच विषय का प्रस्तुतीकरण किया जाता है। हालाँकि ऐसी रचनाओं में दो ही पात्रों का चित्रण होता है, किंतु इसमें एक पूरा समूह दूसरे पात्र से सवाल करते हुए दिखाया जाता है। दूसरा पात्र उन सवालों के जवाब देता है। गोपाल चतुर्वेदी नें अपने कई व्यंग्य लेखों को साक्षात्कार शैली के आधार पर लिखा है। उदाहरण-

---

[52] गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढि पढि, सार्थक प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९१; पृष्ठ १७५

"आपको मीठा पसंद है कि नमकीन?

तुम्हें तो सब पता है। अब महंगाई में मिठाई नहीं मिलती तो नमकीन खा-खा कर गुज़ारा करना पड़ता है।

गर्म चीज़ अच्छी लगती है कि ठंडी?

क्यों बेकार की बातें कर रही हो! अच्छे-बुरे का सवाल ही कहाँ है! सुबह ठंडी डबल-रोटी खाकर जाते हैं। दिन में सूखी चपाती चबाते हैं और शाम को दिन में बनी दाल-रोटी

सर्दी-गर्मी के मौसम में कौन सा बेहतर है?

हम जीवन में संतुलन के हिमायती हैं। ने बेसुरी लू बहे न पछुवा। मौसम में सम रहे। बिजली का खर्चा भी बचता है। पर अपने चाहने से होता क्या है!

पानी भाता है कि चाय?

सच पूछो तो अपनी रुचि न पानी में है न चाय में। मई-जून में खूब शीतल पेय मिल जाए तो क्या कहना। कभी-कभार साहब सरकारी खर्चे पर हमें भी पिलवा देते हैं। इसी तरह जाड़ों में शानदार कॉफ़ी का जवाब नहीं है।"[53]

व्यंग्यकार किसी बात को सीधे तौर पर न कहकर किसी विसंगति पर चोट करने के लिए अप्रत्यक्ष मार्गों का सहारा लेता है। अप्रत्यक्ष मार्गों

[53] गोपाल चतुर्वेदी, खंभों के खेल, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पृष्ठ ११६-११७

का प्रयोग करने के लिए व्यंग्यकार अन्योक्ति शैली का सहारा लेता है। अन्योक्ति शैली में व्यंग्यकार विसंगतियों पर अन्य पात्रों के (जानवरों, पक्षियों पर लागू करके) माध्यम से प्रहार करता है। कभी-कभी विषय के अनुसार व्यंग्यकार पौराणिक कथाओं या फिर किस्से कहानियों के माध्यम से विसंगतियों पर प्रहार करता है। इन तीनों व्यंग्य-संग्रहों के अनेक व्यंग्य-अध्यायों में यह शैली स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। किसी व्यक्ति की व्यंग्यात्मक जीवनी प्रस्तुत करने के लिए व्यंग्यकार रेखाचित्र शैली का प्रयोग करता है। इस शैली के अंतर्गत व्यंग्यकार पात्र के जीवन संबंधी विवरण को प्रस्तुत करते हुए पाठक के समक्ष उसका व्यंग्यात्मक चित्र प्रस्तुत करता है। 'कब होंगे कामयाब' व्यंग्य लेख इसी शैली के तहत लिखा गया है। जब मिथकों का सहारा लेते हुए व्यंग्यकार व्यंग्य रचना करता है तो उसे मिथकीय शैली कहते हैं। इस शैली के अंतर्गत व्यंग्यकार मिथक से जुड़े हुए पात्र, घटनाओं, कहानियों आदि के आधार पर सीधे तौर पर या फिर उनको वर्तमान पात्रों से तुलना करते हुए व्यंग्य रचना करता है। मिथक समाज की परम्परागत मान्यताओं पर आधारित होते है एवं मिथक समाज के मूल्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं एवं निर्माण भी करते हैं। समाज में व्याप्त कुछ मूल्य एक व्यंग्यकार की नज़र में विसंगति के रूप में प्रदर्शित होते हैं। एक निष्पक्ष व्यंग्यकार के लिए यह आवश्यक होता है कि वह समाज के लिए लाभदायक मूल्यों एवं विसंगतियों के मूल में परिवर्तित मूल्यों का निरीक्षण करते हुए उनके आधार पर व्यंग्य रचना करता है। 'खम्भों के खेल' व्यंग्य संग्रह के

व्यंग्यों में इसी निष्पक्षता का परिचय देते हुए मिथकीय शैली का प्रयोग किया है।

> “हमने मुह-हाथ धोते वक्त शीशे के सामने खड़े होकर अपने दुबले-पतले शरीर का मुआयना किया। हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि छोटू हमें पापा कहे या पिताश्री, हम रावण हो ही नहीं सकते। मूँछदार महाबली रावण का हमारे ऐसे मरियल व्यक्ति से क्या मुक़ाबला ! वह साहसी था। सीता को उठा ले गया। यहाँ इधर-उधर ताक-झांक करते दार लगता है। ऐसे भी हर ऐरा-गैरा कैसे रावण बन सकता है ! नत्थू-खैरों की नेता बनने में चीं बोल जाती है, फिर क्या खाकर रावण बनेंगे!"[54]

‘खम्भों का खेल’, ‘दांत में फँसी कुर्सी ’एवं ‘गंगा से गटर तक ’इन तीनो व्यंग्य संग्रहों में व्यंग्यों की अभिव्यक्ति विषय की माँग के अनुसार पत्र-शैली में भी की गयी है। पत्र शैली में लिखे गए व्यंग्य-अध्यायों में ‘देश के लिए दौड़’, ‘काग़ज़ और चूहा’, ‘प्रशासन के उसूल: अंग्रेज़ी पत्राचार का सारांश’, ‘सरकार और समोसा’ आदि व्यंग्य-अध्यायों को शामिल किया जा सकता है। उदाहरणार्थ-

“श्रीयुत अ० स्वामीनाथन,
राज्यमंत्री (कार्मिक) भूतपूर्व

---

[54] गोपाल चतुर्वेदी, खंभों के खेल, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९०; पृष्ठ १८

नयी दिल्ली।

प्रिय श्री गणेशम,

अपनी बेहतरीन पुस्तक के लिए मेरी बधाई स्वीकार करें। मैं आपके हर एक निष्कर्ष से सहमत हूँ। यह तो आपकी विद्वता ही है कि आपने हमारे प्रशासनिक सुधारों के सतत प्रयासों को उसूलों में ढाल दिया है। हमने सरकार में रहकर आपके सारे प्रशासनिक सिद्धांतों का अनजाने पालन किया। यही उनकी सार्वजनिक उपयोगिता और मान्यता का अकाट्य प्रमाण है।

मैं आपकी क्षेत्रीयता और अपनों को प्रमुख पदों पर लगाने की 'थिसिस' से बेहद प्रभावित हूँ। हम अपने अगले चुनावी घोषणा-पत्र में आपके उसूलों को शामिल कर स्वच्छ प्रशासन का फिर से वादा करेंगे।

फिर से बधाई के साथ

आपका

अ० स्वामीनाथन "[55]

'खम्भों का खेल', 'दांत में फँसी कुर्सी 'एवं 'गंगा से गटर तक 'इन तीनो व्यंग्य संग्रहों में अनेक स्थानो पर स्वप्न शैली का प्रयोग देखने को मिलता है। 'अपने-अपने चमत्कार' व्यंग्य अध्याय इस शैली का सर्वाधिक उपयुक्त उदाहरण प्रस्तुत करता है

[55] गोपाल चतुर्वेदी, फाइल पढि पढि, सार्थक प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९१; १७४

"क्या स्वप्न था! हम हुसैन की तर्ज़ में तूलिका लिए थे। हमारे आसपास घोड़े हिनहिना रहे थे। सामने भारतीय नारी की सुंदरता की प्रतिनिधि छवि अलग-अलग पोशाकों में कूल्हे मटका रही थीं। बीच-बीच में वह विश्व सुंदरी हमसे पूछती जाती-

'यह चलेगा?'

हम दाढ़ी सहलाते तूलिका के इशारे से उसे 'पोज' करने का निर्देश देते

....

इतने में एक घोड़े या घोड़ी नें हिनहिनाते हुए हमपर हमला कर दिया। उसपर हमारी पत्नी से मिलती-जुलती शक्लवाली सवार महिला झाड़ू की तलवार लिए हमारा निशाना साधकर हवा में लहरा रही थी।"[56]

कई बार लेखक तमाम सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक बंधनों से बंधा हुआ महसूस करता है। ऐसे में वह तमाम विसंगतियों पर सीधे तौर पर प्रहार नहीं कर पाता। वह फेंटेसी का सहारा लेते हुए एक ऐसी दुनिया की कल्पना करता है जो अवास्तविक, आश्चर्यजनक एवं विस्मयपूर्ण लगती है। किंतु उस दुनिया की समस्याओं से व्यावहारिक समस्याओं से साम्यता स्थापित करते हुए व्यंग्यकार अपने व्यंग्य की रचना करता है। व्यंग्यकार

[56] गोपाल चतुर्वेदी, दांत में फंसी कुर्सी, प्रभात प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९६; पृष्ठ ११०

द्वारा विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए प्रयुक्त इस शैली को फेंटेसी शैली कहते हैं। सिर्फ़ बंधनों में बंधे होने के कारण ही नहीं वरन् कई बार व्यंग्यकार फेंटेसी शैली में विसंगतियों पर ज़्यादा सरल एवं सहज तरीक़े से प्रहार करने में समर्थ होता है। इसका कारण यह है कि उसके द्वारा बनायी गयी काल्पनिक दुनिया में वह उस विसंगति की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति के लिए एवं विसंगति को दूर करने के लिए आवश्यक मार्गों एवं उस विसंगति से जुड़े सभी पक्षों के लिए उपयुक्त वातावरण का निर्माण कर लेता है। गोपाल चतुर्वेदी स्वयं भारतीय पुलिस सेवा में कार्यरत होने की वजह से प्रशासनिक बंधनों को समझते थे, ऐसे में उन्होंने अपने व्यंग्य की अभिव्यक्ति के लिए फेंटेसी शैली का प्रयोग भी किया है।

'दंगे में मुर्ग़ा' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में शैली की बात करें तो इन्होंने वर्णनात्मक शैली, संवाद शैली, अन्योक्ति शैली आदि शैलियों के माध्यम से व्यंग्य रचना की है। वर्णनात्मक शैली की अगर बात करें तो इनके व्यंग्य-अध्याय 'किसान एक परिचय' एवं 'सर्दी के दिन' में यह शैली देखने को मिलती है।

> "भारतीय किसान एक दोपाया जानवर है, जो प्रथम दृष्टि से देखने पर इंसानों से मिलता-जुलता दिखायी पड़ता है। इसी कारण से की नासमझ लोग किसानों को भी इंसान मां लेते हैं तथा चाहते हैं कि इनके साथ आदमियों जैसा व्यवहार किया जाए, परंतु मात्र दो

पैरों पर चल लेने से कोई इंसान नहीं बन जाता है। कुत्ते भी उचित ट्रेनिंग लेने अपर दो पैरों पर चल लेते हैं, जैसा कि श्रीमान ने देखा ही होगा। अतः मेरी विनम्र राय में भारतीय किसान भी कुत्ता, भेड़, बकरी, गाय, भैंस आदि की भाँति गाँवों में पाया जाने वाला एक जानवर है।”[57]

‘दंगे में मुर्ग़ा’ व्यंग्य-संग्रह में संवाद शैली का भी प्रयोग करते हुए भी व्यंग्य रचना की गयी है। इस व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य-अध्याय ‘चरखे की खोज’, ‘कर्फ़्यू में राम गोपाल’, ‘पुलिया, गरम बोनट और बकरियाँ' आदि व्यंग्य लेखों की रचना संवाद शैली के आधार पर की गयी है।

“ढाई टिकिट देना कंडक्टर साब।

आधी सवारी कौन-सी?

इस बच्चे की।

बड़ी-बड़ी मूँछें आ गई हैं इसकी। बच्चा तो मत कहो इसे।

हमारे लिए तो बच्चा ही है।

पूरी टिकिट लगेगी इसकी।

मूँछ निकल आयी तो क्या पूरी टिकिट काटोगे?

और नहीं तो क्या?

[57] ज्ञान चतुर्वेदी, दंगे में मुर्गा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९८; पृष्ठ १०

मूँछ पर न जाओ खान साहब। वो तो यह बच्चा लहसुन ज़्यादा खाता है, सो कुछ जल्दी आ गयी हैं। वैसे यह पाँच साल का है।

सोलह साल के लौंडे को पाँच साल का बताते शर्म नहीं आती तुमको?”[58]

‘दंगे में मुर्ग़ा’ व्यंग्य संग्रह में प्रतीकात्मक शैली का प्रयोग पर्याप्त मात्रा में किया गया है। इस व्यंग्य संग्रह के ‘राजनीति, कुत्ते चुनाव और मुख्यमंत्री जी’ एवं ‘दंगे में मुर्ग़ा’ जैसे व्यंग्य लेखों में इन्होंने इसी शैली का प्रयोग किया है। ‘दंगे में मुर्ग़ा’ अध्याय में एक मुर्ग़े को एक आदमी से तुलना करते हुए इस व्यंग्य अध्याय की रचना की गयी है। इस अध्याय में मुर्ग़े की आप बीती के आधार पर दंगे में पीड़ित परिवार की आप बीती सुनाई गयी है। ऐसा करने में गोपाल चतुर्वेदी जी ने एक उच्च कोटि की संवेदना का परिचय दिया है।

प्रश्नात्मक शैली में एक प्रश्न किया जाता है और उसके जवाब के आधार पर पूरा लेख लिखा जाता है । कई जगह एक से अधिक प्रश्न भी हो सकते है जिनका जवाब देते हुए पूरे लेख की रचना की जाती है । ‘दंगे में मुर्ग़ा’ व्यंग्य संग्रह के कई व्यंग्य लेखों में प्रश्नात्मक शैली देखी जा सकती है जिसमें एक सवाल का जवाब देते हुए अनेक विसंगतियों पर कटाक्ष किया

[58] ज्ञान चतुर्वेदी, दंगे में मुर्गा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९८; पृष्ठ १३३

गया है। उदाहरण के लिए ‘किसान: एक परिचय’ एवं ‘प्रेम प्रकटन निर्देशिका’ व्यंग्य लेखों की रचना इसी शैली में की गयी है। ‘दंगे में मुर्ग़ा’ व्यंग्य संग्रह के व्यंग्यों में एक अनूठे प्रकार की शैली देखने को मिलती है। इस शैली के अंतर्गत उन्होंने एक वाक्य लिखा फिर उस वाक्य का विवरण प्रस्तुत करते हुए पूरे व्यंग्य की रचना की गयी है। उदाहरण के लिए - रेल और गाँव का आदमी

‘दंगे में मुर्ग़ा’ व्यंग्य संग्रह में सूक्तियों एवं मुहावरों का प्रयोग करते हुए व्यंग्य लेखों के प्रभाव एवं प्रहारात्मकता में वृद्धि की गयी है। उदाहरण के लिए- “तंत्र के काटे का कोई मंत्र नहीं।”[59]

‘दंगे में मुर्ग़ा ’व्यंग्य संग्रह में काव्य रचनाओं का प्रयोग करते हुए व्यंग्य रचनाओं में संजीवता एवं परिवेश के अनुसार प्रहारात्मकता में वृद्धि का प्रयास किया गया है। उदाहरण के लिए-

“जसौदा, कहा कहों मैं बात?
तुम्हारे सुत के करतब पिच पे, क़हत कहे नहीं जात
आउट भये, फ़ोरि दई क़िस्मत, मुफ़्त में माखन खात
जो बरजों कि अच्छों खेलो, तो मारत मोको लात
राधा के संग रात बिताएँ, पिच पे पुनि ऊँघियात

[59] ज्ञान चतुर्वेदी, दंगे में मुर्गा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९८; पृष्ठ ६७

गयो विश्व-कप, गिल्ला को जी, सोच-सोच सकुचात।"[60]

'कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में' (१९९०), 'आओ बैठ लें कुछ देर (१९९५) , 'अगली शताब्दी का शहर' (१९९६) व्यंग्य संग्रह में जीवन के विविध आयामों को केंद्र में रखते हुए, इन आयामों में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को व्यंग्य का आधार बनाया गया है। इन तीनों रचनाओं की शिल्पगत विशेषता एक जैसी है, जिसके कारण इन तीनों की विशेषता को एक साथ प्रस्तुत किया जा रहा है।इन रचनाओं के भाषा-कौशल को समझने के लिए भाषा कौशल के विविध मानक़ो को समझते हैं। इन रचनाओं में सम्मिलित व्यंग्यों को धारदार बनाने के लिए अंग्रेज़ी शब्द, अंग्रेज़ी वाक्य, तत्सम शब्द एवं उर्दू फ़ारसी शब्दों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। अंग्रेज़ी शब्दों की अगर बात करें तो उदाहरण के रूप में अंग्रेज़ी शब्द-कल्ट, होटल, ड्राइवर, मैनेजर, पुलिस, कॉलेज, फ़ैशन, मॉडर्न, सूपरवाइज़र, स्कूल, डेन्सिटी, रिलेटिव, पोएटिक, पॉलिटिक्स, कैरेक्टर, डायरेक्टर, प्रिन्सिपल, पर्सनालिटी आदि को लिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त इन व्यंग्यों में तत्सम शब्दों का प्रयोग बखूबी किया है। उदाहरण के लिए- अलक्षित, साक्षरता, परमात्मा, अनुभूति, ऋचा, पशु, विनम्र, अकर्मण्यता, नैतिकता, निरक्षरता, क्षितिज, बलात्कार, ग्राम्य आदि। इन व्यंग्यों में प्रयुक्त

[60] ज्ञान चतुर्वेदी, दंगे में मुर्गा, किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९८; पृष्ठ ९९

उर्दू-फ़ारसी शब्दों की अगर बात करें तो नक़ल, मिसिल, चश्मदीद, गवाही, बयान, फ़ैसला, बरामद, गवाह, इजलास, मुक़दमा, नक़लनकस, नामूमकिन, नफ़ीस, दरख्वास्त, हैसियत, पेशकार आदि को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है। कई वाक्यों में तीनों भाषाओं के शब्दों का उपयोग करते हुए व्यंग्य के तेज, तापीय प्रवाह और लक्षित आवेश में वृद्धि का कार्य किया गया है। उदाहरण के लिए -

"धर्म तो राजनीति के सीवेज फार्म में दफ़न हो गया।"[61]

उक्त वाक्य में तत्सम शब्द, अंग्रेज़ी शब्द एवं उर्दू-फ़ारसी शब्दों के अनूठे प्रयोग को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

इन तीनों व्यंग्य संग्रहों ('कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में', 'आओ बैठ लें कुछ देर', 'अगली शताब्दी का शहर') में सम्मिलित व्यंग्यों की छटा को अनूठे ढंग से प्रस्तुत करने के लिए व्यंग्य में कही गयी बात को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए, पात्रों या व्यंग्य की चारित्रिक विशेषता को रेखांकित करने के लिए, विसंगतियों से उपेक्षा भाव दिखाने के लिए अनेक स्थानो पर युग्म शब्दों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के रूप में अलग-अलग, बड़े-बड़े, नयी-नयी, छोटी-छोटी, अंग-अंग, गाते-गाते, भोले-भले, लूट-खसूत, धन-दौलत आदि।

---

[61] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ११०

इन व्यंग्यों में परिवेश एवं स्थानीय विशेषताओं को शामिल करने के लिए स्थानीय भाषा के शब्दों का प्रयोग भी बखूबी किया गया है। स्थानीय भाषा के शब्दों के प्रयोग से इन व्यंग्यों का जुड़ाव स्थानीय विसंगतियों से हो जाता है। उदाहरण के लिए करमुई, डोंगा, डिबिया, खिचड़ी, खिड़की, पगड़ी, अंटा, चसक, चिड़िया, जूता, ठेठ, ठुमरी, तेंदुआ, फुनगी, कलाई आदि। देशज शब्दों के अतिरिक्त इन व्यंग्यों में देशज वाक्यों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए-

"कारमुही आय, जनै वाली की कोख जरै, रेकवारन के घर की बिटेवा, यू असुगुन जनमि के पसरी है! भरौ मु माँ मदार!"[62]

अनेक स्थानों पर कविताओं के प्रयोग से व्यंग्य की प्रहारात्मकता वृद्धि, पाठक से उसके जुड़ाव एवं विषय को रुचिपूर्ण बनाए रखने का कार्य किया गया है। ये काव्य स्वयं हास्य प्रदर्शित करते हैं। इनमें हास्य प्रदर्शन से व्यंग्यों में दोहरी मारकता का अनुभव होता है। उदाहरण के लिए-

देश का नेता कैसा हो?
गूँगा, बहरा जैसा हो
खाने में बस भैंसा हो
ऐसा हो या वैसा हो

[62] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ८२

सिर्फ़ गाँठ में पैसा हो।[63]

"भाई रे, यह कैसी बस्ती
आटा महँगा, चाँदी सस्ती"[64]

इन तीनों व्यंग्य संग्रहों ('कुछ ज़मीन पर कुछ हवा में', 'आओ बैठ लें कुछ देर', 'अगली शताब्दी का शहर') की शैली की अगर बात करें तो इन व्यंग्यों में हमें संवाद शैली, विवेचनात्मक शैली, उदाहरण-परक शैली एवं प्रश्नात्मक शैली देखने को मिलती है। संवाद शैली की बात करें तो निम्न उदाहरण से इनके संवाद शैली को समझा जा सकता है-

"श्रीलाल शुक्ल: प्रधानमंत्रीजी, अयोध्या-विवाद के समाधान की कैसी आशा है?

आप: आशा ही नहीं, मुझे पूरा विश्वास है। यह इसलिए कि हमारा देश अनेकता में एकता को माननेवाला है। सदियों से ......।

श्री० शु०: (उत्साहित होकर) यह आपने एकदम मौलिक बात कही। पहली बार सुना है। अनेकता में एकता! अब क्या कृपया बताने का कष्ट करने की कृपा करने का कष्ट करेंगे कि अनेकता में एकता किसे कहते हैं?

[63] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ८१

[64] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ६९

आप: इसे एक उदाहरण देकर समझाना चाहूँगा। अभी पिछले सप्ताह मैं पोर्ट ब्लेयर गया था..... ।"[65]

इन व्यंग्य-संग्रहों के व्यंग्यों में आलोचनात्मक शैली भी देखने को मिलती है। उदाहरण के लिए निराला की 'कुकुरमुत्ता' रचना का उल्लेख करते हुए लिखते है-

"निराला ने कुकुरमुत्ता को जिस किसी का भी प्रतीक माना हो, वे सोच भी नहीं सके कि कुछ ही सालों बाद कुकुरमुत्ते यानी मशरूम की खेती भारत में एक बड़ा लाभकारी व्यवसाय बन जाएगी। उसके व्यवसायी आज साहित्य में संस्थान, प्रतिष्ठान, फंड, ट्रस्ट, अकादमी आदि का भेष बनाकर साहित्यकार को अपने हम्बक में लपेट सकते हैं।"[66]

उदाहरण शैली किसी कही गयी बात को और स्पष्ट करने के लिए बहुत अधिक लाभकारी होती है। इसी शैली का प्रदर्शन करते हुए इन तीनो व्यंग्य संग्रहों में अनेक स्थानो पर श्रीलाल शुक्ल जी नें व्यंग्य को और अधिक प्रभावी बनाने का कार्य किया है।

---

[65] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ४२

[66] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ ५४

"उदाहरण के लिए स्टेट बैंक ऑफ इंडिया, लखनऊ को ही लें। मैं एक पुराना पेंशनभोगी सरकारी हाकिम हूँ। मेरा एक पेंशन का बिल सरकारी कोषागार से पास हुआ और मेरे बैंक ने भुगतान के लिए उसे स्टेट बैंक के स्थानीय शाखा में भेंजा। स्टेट बैंक नें उसपर दो ऐतराज लगाए। पहला ऐतराज तो ग़नीमत था; दूसरे ऐतराज के अनुसार मुझे घोषित करना था कि यह पारिवारिक पेंशन लेते हुए (जबकि यह पारिवारिक पेंशन नहीं थी) मैंने- यानी मेरी बीवी नें- दूसरि शादी नहीं कर ली है।"[67]

'गणतंत्र का गणित' व्यंग्य-संग्रह के अधिकतर व्यंग्य लेखों में रामलुभाया नामक एक काल्पनिक पात्र के आधार पर समाज में व्याप्त तमाम विषमताओं पर प्रहार किया गया है। 'किसे जगाऊँ' एक आध्यात्मिक रचना मालूम पड़ती है। इन व्यंग्यों की भाषायी विशेषता की अगर बात करें तो इन व्यंग्यों में आवश्यकतानुसार एवं आम-बोलचाल में प्रचलित अंग्रेज़ी के शब्दों का बहुधा उपयोग किया है। इन व्यंग्यों में प्रयुक्त अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों की अगर बात करें तो ब्रेक, सैक्यूलर, सैक्यूलरिज़्म, ब्यूटी-पार्लर, अंकल, ब्राइड, ब्राइडल मेक-अप, ब्यूटिशियन, इंडियन, इंडियननेस, आयडेंटिटी, टीचर, ट्रेनिंग, स्टेशन, पीस, कर्फ़्यू, हॉस्पिटल, इंटेलिजेंट, टेररिस्ट, लाइट आदि का उल्लेख किया जा सकता है। इन अंग्रेज़ी शब्दों के

[67] श्री लाल शुक्ल, आओ बैठ लें कुछ देर, राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९५; पृष्ठ १०९

अतिरिक्त इनके व्यंग्यों में अंग्रेज़ी वाक्य भी देखने को मिलते हैं। उदाहरण के लिए-

"आयम नॉट अ पंक्चुअल शॉर्ट।"[68]

इन व्यंग्यों में की स्थानो पर शुद्ध-साहित्यिक भाषा एवं तत्सम प्रधान शब्दों की प्रधानता देखने को मिलती है। अक्सर इनकी भाषा सम्भ्रांत हो जाती है, जिससे कई स्थानो पर अरुचि पैदा हो जाती है। उदाहरण के लिए-

"आध्यात्मिक चेतना यह मानती है कि हमें अपनी इंद्रियों से जिस संसार का अनुभव हो रहा है, वह सत्य नहीं है, उसके सुख वास्तविक सुख नहीं हैं, और सांसारिक सफलता-मानव की वास्तविक सफलता नहीं है। इसीलिए आध्यात्मिक रूप से विकसित आत्माएँ सांसारिक रूप से सदा असफल ही नहीं, अनुकरणीय भी रही हैं।"[69]

अपनी बात को स्पष्ट एवं प्रभावी ढंग से कहने के लिए अनेक स्थानों पर कबीर के दोहों का प्रयोग भी देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए-

"मोर तोर की जेबरी बटि बाँधा संसार।
दास कबीर क्यों बँधे, जाको राम आधार।।[70]

---

[68] नरेंद्र कोहली, गणतंत्र का गणित, वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली, १९९७; पृष्ठ १४४

[69] नरेन्द्र कोहली; किसे जगाऊँ; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६; पृष्ठ ५९

[70] नरेन्द्र कोहली; किसे जगाऊँ; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६; पृष्ठ ५९

“लाली मेरे लाल की, जित देखो, तित लाल।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गयी लाल।।”[71]

‘गणतंत्र का गणित’ और ‘किसे जगाऊँ’ में प्रयुक्त शैली को देखें तो इनकी रचना ‘गणतंत्र का गणित’ में मुख्यतः प्रश्न शैली एवं संवाद शैली देखने को मिलती है। वहीं ‘किसे जगाऊँ’ में मुख्यतः तर्क-प्रधान एवं आलोचनात्मक शैली की प्रधानता देखने को मिलती है। संवाद शैली की अगर बात करें तो निम्न उद्धरणों के माध्यम से इस शैली को समझा जा सकता है-

“हमारे घर में शुद्ध दूध पीने की आदत है।’ भोलराम बोला, ‘हम तुम्हारे समान मदर डेरी की उस लोहे की भैंस का दूध नहीं पी सकते, इसलिए हमें तो भैंस रखनी ही पड़ेगी।’

‘रखो, पर तुम उस गली में नहीं बाँध सकती।’

‘गली तुम्हारे बाप की है।’ भोलाराम गुर्राया, ‘मैं भी इसी गली में रहता हूँ। गली पर मेरा भी उतना ही अधिकार है, जितना तुम्हारा है। देखता हूँ, कौन मुझे गली में भैंस बाँधने से रोकता है।’

‘पर खुर्ली तो तुमने मेरी दीवार के साथ बनाई है।’ पड़ोसी नें कहा, ‘उससे मेरी दीवार खरब हो रही है।”[72]

---

[71] नरेन्द्र कोहली; किसे जगाऊँ; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६; पृष्ठ ६४

[72] नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७; पृष्ठ ८१

संवाद शैली के अतिरिक्त इनके प्रश्न शैली की अगर बात करें तो 'गणतंत्र का गणित' व्यंग्य संग्रह में रामभुलाया नाम के काल्पनिक पात्र के माध्यम से इस शैली का भी प्रयोग किया है। कोहली जी कि इस शैली में एक पात्र सवाल करता है और दूसरा पात्र उन सवालों के जवाब देता है। प्रस्तुत है कोहली जी की प्रश्न शैली-

"हमारी सरकार इतनी परेशान क्यों है?'

'परेशानी की तो बात ही है। कश्मीर में एक पूरा कस्बा जल गया है।'

'कस्बे में क्या आग लग गई?'

'और नहीं तो क्या! ईर्ष्या से तो कस्बे के मकान जलते नहीं!'

'जलने को तो ईर्ष्या से पूरा-का-पूरा देश भी जला है। राष्ट्रों के भाग्य तक जले हैं। पर छोड़ो.....कस्बे में आग कैसे लगी?'

'कुछ पाकिस्तानी आतंकवादी वहाँ रह रहे थे। उन्होंने आग लगा दी।"[73]

'किसे जगाऊँ 'में प्रयुक्त तर्क-प्रधान आलोचनात्मक शैली की अगर बात करें तो इसे निम्न उद्धरण के माध्यम से समझा जा सकता है-

"ईश्वर रुष्ट होकर मनुष्य को सुख देता है, तथा प्रसन्न होकर कष्ट देता है? दोनों बातें कैसे सम्भव हैं? वस्तुतः सम्भव तो हैं, किंतु हम उन्हें ठीक-ठीक समझ नहीं पाते! ठीक-ठीक देख नहीं पाते।

---

[73] नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७; पृष्ठ ७०

क्योंकि माया ने हमें मोहित कर रखा है। जिसे हम सुख मानते हैं, वह सुख नहीं है; जिसे हम दुःख मानते हैं, वह दुःख नहीं है। यह तो बुद्धि का फेर है। पलंग पर बैठ, गरिष्ठ भोजन करता हुआ व्यक्ति स्वयं को परम सुखी मान रहा है; जबकि वह सीधे-सीधे रोग के राज्य में प्रवेश कर रहा है। अखाड़े, खेल के मैदान अथवा खेत-खलिहान में श्रम कर, पसीना बहाते व्यक्ति को, वह कष्ट सहन करता हुआ दुखी व्यक्ति मान रहा है, जबकि वह निःरुग्णता और पुष्टता की ओर अग्रसर हो रहा है।"[74]

उक्त पंक्तियों में आलोचनात्मक शैली का प्रयोग करते हुए उपदेश-परक शैली की तरफ अग्रसर होने की प्रवृत्ति भी देखने को मिलती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सन् १९९०-२००० ई० के बीच के व्यंग्यकारों की व्यंग्यात्मक शिल्प में क्या-क्या प्रयोग किए गए। हर व्यंग्यकार की स्वयं की एक भाषा-शैली रही है साथ ही उसका स्वयं का एक नज़रिया रहा है। इसी के आधार पर अपने आस-पास व्याप्त तमाम विषमताओं पर प्रहार किया है। विषयों की अगर बात करें तो अधिकतर विषय तो समान ही देखने को मिलते हैं किंतु उनकी शैली में पर्याप्त अंतर देखने को मिलता है।

[74] नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७; पृष्ठ ३४

अध्याय ५

समकालीन संवेदना के विकास में व्यंग्य साहित्य की भूमिका

प्रकृति नें मनुष्य में भावनाएँ एवं उन भावनाओं को अभिव्यक्त करने का माध्यम दिया और मनुष्य नें उन भावनाओं को शब्दों के रूप में पिरोना सीखा। मनुष्य के विकास एवं उसकी अभिव्यक्ति के लिए भाषा का प्रयोग उसे अन्य जीवों से पृथक करता है। विकास की इसी प्रक्रिया में मनुष्य नें भाषा एवं उसकी अभिव्यक्ति के अनेक माध्यमों का विकास किया। साहित्य विकास के इसी प्रक्रिया का परिणाम है। साहित्य में संवेदना की बात करने के पूर्व संवेदना के अर्थ को समझना आवश्यक है। संवेदना को मनोविज्ञान में हृदय एवं मानसिक मनोभावों के रूप में समझा जाता है। वहीं अगर साहित्य में संवेदना की अगर बात करें तो साहित्य में इसका प्रयोग विस्तृत अर्थ में किया जाता है। सामान्य तौर पर यह कहा जाता है कि बिना संवेदना के साहित्य का निर्माण नहीं होता और साहित्य संवेदना का निर्माण करता है। ऐसे में दोनो एक दूसरे के पूरक हैं। साहित्य का निर्माण साहित्यकार अपने अनुभवों को देशकाल एवं परिस्थितियों के साथ जोड़ते हुए करता है। यह अनुभव उसे ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त होता है। मनुष्य के अंतःस्थल में छिपी करुणा, दया एवं सहानुभूति की प्रवृत्तियाँ रचना में संवेदना के रूप में

प्रदर्शित होती हैं। रचनाओं में संवेदना स्वानुभूति एवं सहानुभूति की अभिव्यक्ति के रूप में प्रदर्शित होती हैं।

'संवेदना' शब्द संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ 'सुख-दुःख का महसूस होना' होता है। 'संवेदना' शब्द का निर्माण 'वेदना' में 'सम्' उपसर्ग लगाने से हुआ है। 'सम्' का अर्थ सम्यक् रूप से, प्रत्यक्ष रूप से एवं समान रूप से होता है। इस प्रकार अगर 'संवेदना' की बात करें तो इस शब्द का अर्थ सम्यक्, प्रत्यक्ष या समान रूप से महसूस की जाने वाली वेदना होता है। अर्थात् दुःख, पीड़ा, कष्ट आदि को महसूस करना या उसके बारे में ज्ञान होना संवेदना कहलाती है। संवेदना के लिए किसी उत्तेजक का होना आवश्यक है। यही उत्तेजक व्यक्ति के अंदर संवेदना जागृत करने का कार्य करती है। 'संवेदना' के अर्थ को पूर्ण रूप से समझने के लिए प्रमुख साहित्यकारों द्वारा संवेदना की परिभाषा को समझना आवश्यक है। संवेदना की परिभाषा देते हुए डॉ० नगेंद्र लिखते हैं कि-

"मूलतः संवेदना का अर्थ है- ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त अनुभव अथवा ज्ञान। किंतु आजकल सामान्यतः इस शब्द का प्रयोग सहानुभूति के अर्थ में होने लगा है। मनोविज्ञान में अब भी इस शब्द का प्रयोग इसके मूल अर्थ में ही किया जाता है और उस अर्थ में यह किसी बाह्य उत्तेजना के प्रति शरीर तंत्र की सर्वप्रथम सचेतन प्रतिक्रिया होती है...साहित्य में इसका प्रयोग स्नायुविक संवेदनाओं की अपेक्षा मनोगत संवेदनाओं के लिए अधिक होती

है। इस प्रकार साहित्यिक संदर्भ में संवेदनशीलता मन की प्रतिक्रिया की शक्ति ही है जिसके द्वारा संवेदनशील व्यक्ति दूसरे किसी व्यक्ति के सुख-दुःख को समझ कर उससे अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है।"[1]

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी संवेदना को परिभाषित करते हुए लिखते हैं- "संवेदना का अर्थ सुख दु:ख की अनुभूति ही है, उसमें भी दु:खानुभूति से इसका गहरा संबंध है... संवेदना शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दुःख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दुःख का अनुभव करना ही संवेदना है।"[2]

अज्ञेय नें अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य: एक परिदृश्य' में संवेदना की परिभाषा देते हुए लिखा है "संवेदना वह यंत्र है जिसके सहारे जीव-दृष्टि अपने से इतर सब कुछ के साथ सम्बन्ध जोड़ती है - वह सम्बन्ध एक साथ ही एकता का भी है और भिन्नता का भी क्योंकि उसके सहारे जहाँ जीव-दृष्टि अपने से इतर जगत को पहचानती है वहाँ उससे अपने को अलग भी करती है।"[3]

---

[1] डॉ० नागेंद्र; मानविकी पारिभाषिक कोश; साहित्य-खंड; राजकमल प्रकाशन; दिल्ली; पृष्ठ २३२

[2] आचार्य रामचंद्र शुक्ल; हिंदी साहित्य का इतिहास; नागरी प्रचारिणी सभा; काशी; पृष्ठ ६९२

[3] सच्चिदानन्द वत्सायन; हिंदी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य; राधाकृष्ण प्रकाशन; दिल्ली; १९६७ पृष्ठ-१७

मुक्तिबोध 'संवेदना' को परिभाषित करते हुए लिखते हैं कि व्यक्ति की "मानसिक प्रतिक्रिया में संवेदना अन्तर्भूत है, किन्तु उसमें दृष्टि या दृष्टिकोण भी अन्तर्भूत है।"[4]

रामस्वरूप चतुर्वेदी जी नें शुक्ल जी की परिभाषा के आधार पर 'संवेदना' के बारे में अपना मत देते हुए कहा है कि" आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास के आमुख में 'जनता की चित्तवृत्ति 'के परिवर्तन की बात कही थी। आज की भाषा में चित्तवृत्तियों के संश्लेषण को संवेदना कहा जाएगा।[5]"

साहित्य के साथ संवेदना का क्या सम्बंध रहा है और कैसा सम्बंध दोनो को स्थापित करना चाहिए इस विषय पर अपना मत प्रकट करते हुए डॉ० ऋतुपर्ण कहते हैं कि" संवेदनशीलता का आधिक्य साहित्यकार को एक सामान्य जन से अलगाता है। साहित्य अपेक्षाकृत अधिक संवेदनशील होता है। बाह्य जगत् के साक्षात्कार से उत्पन्न विभिन्न प्रकार के विचारों को साहित्यकार विभिन्न प्रकार की संवेदनाओं में परिणत कर लेता है और फिर उन्हीं संवेदनाओं के चित्र बनाकर वह उन्हें अपने साहित्य में प्रस्तुत कर देता है।"

---

[4] गजानन माधव 'मुक्तिबोध'; एक साहित्यिक की डायरी; भारतीय ज्ञानपीठ; वाराणसी; १९६४; पृष्ठ १३६

[5] रामस्वरूप चतुर्वेदी; हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन; दिल्ली; २०१०; भूमिका

डॉ. शलभ के अनुसार-''साधारण संवेदना सृष्टि नहीं रचती है क्योंकि वह संवेग मात्रा होती है, सच्ची संवेदना है जो कलानुभूति बन जाती है, वस्तु के वास्तविक कर्म को उद्घाटित करती है, अत: उसका असर भी पुरजोर होता है।"[6]

हंसराज भाटिया 'संवेदना' को शारीरिक और मानसिक वृत्तियों का परिणाम मानते हैं। शारीरिक और मानसिक अवस्था के योगदान को स्पष्ट करते हुए वे लिखते हैं "संवेदना ऐसी सरलतम मानसिक प्रक्रिया है जो विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों से अर्विभूत होती है। ये संवेदनाएँ शारीरिक और मानसिक दोनों हैं, संवेदना ज्ञानात्मक संबंध का सर्वप्रथम और सरलतम रूप है।"[7]

संवेदना में दुःख और कष्ट के महत्व की बात करते हुए आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी नें लिखा है कि "संवेदन शब्द अपने वास्तविक या अवास्तविक दु:ख पर कष्टानुभव के अर्थ में आया है। मतलब यह है कि अपनी किसी स्थिति को लेकर दु:ख का अनुभव करना संवेदना है।"

'संवेदना' का मानव मन से सम्बंध स्थापित करते हुए डॉ० आनंद प्रकाश दीक्षित लिखते हैं कि "संवेदना उत्तेजना के संबंध में देह रचना की

---

[6] डॉ० शलभ; संवेदना और सौंदर्य बोध; राजकमल प्रकाशन; दिल्ली; पृष्ठ १६७

[7] हंसराज भाटिया; सामान्य मनोविज्ञान; ऑक्सफ़ोर्ड एवं आई० बी० एच० प्रकाशन; पृष्ठ २५४

सर्वप्रथम सचेतन प्रक्रिया है, जिससे हमें वातावरण की ज्ञानोपलब्धि होती है।"[8]

उपर्युक्त परिभाषाओं के दृष्टिगत संवेदना के अर्थ की बात करें तो संवेदना ज्ञानेंद्रियों से प्राप्त अनुभव एवं उत्तेज्य का परिणाम होती है। एक रचनाकार अपनी रचनाओं में इसी उत्तेज्य को माध्यम बनाते हुए समाज के प्रति अपनी संवेदना अभिव्यक्त करता है। संवेदना महज़ दुःख या पीड़ा की अनुभूति नहीं वरन जीवन के मर्म को समझने के रूप में परिभाषित किया गया है। साहित्य जब व्यक्ति के जीवन से जुड़े हुए मर्म को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाता है तो वह साहित्य स्वतः संवेदना से सराबोर हो जाता है। संवेदना के तत्व की अगर बात करें तो इसमें शब्द, स्पर्श, रस, रूप एवं गंध संवेदना के उत्तेज्य के रूप में कार्य करते हैं। इन उत्तेज्यों में से कोई एक या फिर कई के संयोग से संवेदना की उत्पत्ति होती है। शब्द भाषायी अभिव्यक्ति का एक माध्यम होता है। जब बोलकर, लिखकर, पढ़कर या फिर सुनकर किसी व्यक्ति में संवेदना जागृत होती है। ऐसे में शब्द संवेदना के उत्तेज्य के रूप में कार्य कर रहे होते हैं। जब किसी चीज़ को स्पर्श करके व्यक्ति को प्राप्त आत्मानुभूति जब संवेदना के रूप में परिवर्तित होती है। ऐसी अवस्था में स्पर्श संवेदना के उत्तेज्य के रूप में कार्य कर रहा होता है।

---

[8] आनंद प्रकाश दीक्षित, हिंदी साहित्य कोश (भाग-1); राजकमल प्रकाशन; दिल्ली; १९६६

प्रायः लोग संवेदना और सहानुभूति को एक दूसरे का पर्याय समझ लेते हैं। अगर ध्यान से समझें तो दोनो में पर्याप्त अंतर है। 'सहानुभूति' को मानक हिंदी कोश में निम्न प्रकार से परिभाषित किया गया है-

"१) ऐसी अनुभूति जो साथ-साथ दो या अधिक व्यक्तियों की हो।

२) वह अवस्था जिसमें मनुष्य दूसरे की अनुभूति (विशेषतः कष्टपूर्ण अनुभूति) का नौभाव शुद्ध हृदय से करता है और उससे उसी प्रकार प्रभावित होता है जिस प्रकार दूसरा व्यक्ति हो रहा हो।

३) अनुकम्पा अथवा दया।"[9]

इस प्रकार सहानुभूति शब्द की अगर बात करें तो इसके लिए दो या दो से अधिक व्यक्तियों के हृदय में समान मनोभावों की उत्पत्ति होना आवश्यक है। सहानुभूति के अंतर्गत पीड़ित व्यक्ति को स्वयं कष्ट महसूस करना आवश्यक है। उस पीड़ित व्यक्ति के कष्टों को देखते हुए दूसरे व्यक्ति के हृदय में समान अनुभूति ही सहानुभूति है। वहीं अगर संवेदना की बात करें तो संवेदना किसी एक व्यक्ति के हृदय में भी जागृत हो सकती है। संवेदना किसी व्यक्ति के हृदय की पीड़ा को देखकर भी जागृत हो सकती है, या मूल रूप से भी किसी व्यक्ति के हृदय में भी जागृत हो सकती है। संवेदना निम्न अवस्थाओं में जागृत हो सकती है-

[9] रामचंद्र वर्मा (सं०); मानक हिंदी कोश (पाँचवा खंड); हिंदी साहित्य सम्मेलन; प्रयाग; १९६६; पृष्ठ ३२१

१) जब व्यक्ति किसी अन्य व्यक्ति के हृदय की पीड़ा को समझता है और उस पीड़ा की अनुभूति स्वयं उसके हृदय में होती है।

२) जब व्यक्ति किसी ऐसी विसंगति को देखता है जो पूरे समाज के लिए विसंगति है, किंतु उस समाज में उस विसंगति से प्रभावित लोग अभी भी उसे विसंगति नहीं मानते।

३) जब व्यक्ति किसी ऐसी विसंगति को देखता है जिसका प्रभाव पूरे समाज पर है, समाज नें उसे विसंगति माना भी है किंतु उस विसंगति से किसी व्यक्ति के हृदय में व्यक्तिगत रूप से पीड़ा या कष्ट नहीं देखा जा सकता है।

उपर्युक्त अवस्थाओं में से प्रथम अवस्था सहानुभूति की अवस्था भी हो सकती है, किंतु अन्य दो अवस्थाएँ मुख्यतः संवेदना को प्रदर्शित करती हैं।

संवेदना के तत्व की अगर बात करें तो राजमल बोरा नें तनाव, संत्रास, ऊब, अलगाव, उपेक्षा, भूलना, हँसना, अभिरुचि, परिवर्तन, भक्ति, शील, आश्चर्य, क्षमा, शांति आदि को संवेदना के तत्व के रूप में परिभाषित करते हैं।[10]

[10] राजमल बोरा; संवेदना के स्तर; नमिता प्रकाशन; औरंगाबाद; १९७५; पृष्ठ १०३-१०५

राजमल बोरा अपनी पुस्तक 'भाव, उद्वेग और संवेदना' में संवेदना को भावों एवं उद्वेगों का परिणाम मानते हैं। भाव अपनी चरम पर पहुँचकर उद्वेग की स्थिति पैदा करते हैं। उद्वेगों की अभिव्यक्ति दो माध्यम से हो सकती है-क्रोधित होकर या फिर कुढ़कर। क्रोध संवेदना को जन्म नहीं देती क्योंकि व्यक्ति अपने मनोभावों को क्रोध के रूप में प्रदर्शित कर रहा होता है। क्रोध स्वयं तक सीमित होता है अर्थात् क्रोध, क्रोधित होने वाले व्यक्ति को ही प्रभावित करता है। किसी अन्य व्यक्ति को प्रभावित करता है तो महज़ नकारात्मक रूप में। वहीं उद्वेगों की अभिव्यक्ति जब क्रोध के अतिरिक्त अन्य माध्यमों जैसे तनाव, संत्रास, ऊब, अलगाव, उपेक्षा, हँसना, अभिरुचि, परिवर्तन, भक्तिशील, आश्चर्य, क्षमा एवं शांति के रूप में हो तो इससे संवेदना का जन्म होता है। यह संवेदना उद्वेगित व्यक्ति तक ही सीमित नहीं होती वरन उसका प्रभाव उसके आसपास के लोगों पर भी पड़ता है। संवेदना दो प्रकार की होती है-बाह्य संवेदना एवं आंतरिक संवेदना। बाह्य संवेदना में दृष्टि संवेदना, ध्वनि संवेदना, गंध संवेदना, स्पर्श संवेदना एवं स्वाद संवेदना को शामिल किया जाता है वहीं आंतरिक संवेदना में मांसपेशीय संवेदना एवं शारीरिक संवेदना को शामिल किया जाता है। व्यंग्य के उत्प्रेरक तत्वों पर अगर दृष्टि डालें तो ये प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से संवेदना के तत्वों से विशिष्ट रूप से जुड़े होते हैं। संवेदना के तत्व ज्ञानमूलक मनोवृत्ति, तिक्त परिहास, अदम्य-साहस, आलोचना एवं ताड़ना, बुद्धि-वैचित्र्य एवं कल्पना-वैचित्र्य, चरित्र चित्रांकन, अतिशयता, अवनति तथा

विशिष्ट सौंदर्यानुभूति एवं सत्यान्वेषक दृष्टि आदि संवेदना से एक विशिष्ट संबंध रखते हैं। ऐसे में यह स्पष्ट होता है कि व्यंग्य का संवेदना से घनिष्ठ संबंध होता है। एक व्यंग्यकार विभिन्न विसंगतियों के मर्म को समझते हुए एवं उन विसंगतियों से संवेदना प्रकट करते हुए उनमें सुधार की बात करता है। साथ ही वह उन विसंगतियों को पाठक के समक्ष प्रस्तुत करते हुए पाठक के मन में भी उन विसंगतियों के लिए संवेदना जागृत करने का प्रयास करता है। व्यंग्य साहित्य वर्तमान समाज की मांग है जब तक सामान्य मनुष्य के हृदय में छल, कपट, द्वेष, घृणा, ईर्ष्या और स्वार्थ की भावना बनी रहेगी तब तक समाज में अव्यवस्था और अराजकता की स्थिति बनी रहेगी। व्यंग्य रचनाकार के हृदय से प्रस्फुटित होकर आस्वादक के हृदय को फलीभूत करता है।

एक व्यंग्य, व्यंग्यकार के विचारों का परिणाम होती है। विचारों के रूप में व्यंग्य को सुरेश कांत जी नें तीन श्रेणियों में विभक्त किया है-

१) संवेदना सहित विचारधारा।

२) संवेदना रहित विचारधारा

३) विचारधारा रहित संवेदना

उपर्युक्त श्रेणियों में से उन्होंने मात्र संवेदना सहित विचारधारा को ही व्यंग्य के अभिव्यक्ति के रूप में स्वीकार किया है। क्योंकि बिना संवेदना

के विचार महज़ कोरे शब्द बनकर रह जाएँगे। जबकि संवेदना के मिल जाने के बाद विचार साहित्य के उद्देश्य (अर्थात् समाज के हित के लिए प्रयासरत) को पूरा करेंगे। व्यंग्य की विचारधारा में संवेदना के महत्व को स्वीकार करते हुए वे कहते हैं कि "बिना संवेदना के कोरी विचारधारा के बल पर किसी कलात्मक रचना की कल्पना निरर्थक है। जो लोग विचारधारा की अभिव्यक्ति के लिए रचना के कलात्मक मूल्यों का बलिदान करने को तत्पर रहते हैं, वे रचना के बुनियादी स्वरूप का ही विरोध करते हैं क्योंकि रचनाकार जब तक अपनी विचारधारा को कलात्मक रूप प्रदान नहीं करता, तब तक अपनी रचना का अपेक्षित प्रभाव जनता पर डालने की आशा नहीं रख सकता।"[11]

समकालीन हिंदी व्यंग्य साहित्य (सन् १९९०-२००० ई० तक) में अगर संवेदना की बात करें तो इस अवधि में व्यंग्य साहित्य में संवेदना के विविध आयाम देखने को मिलते हैं। इन आयामों के माध्यम से ही इस अवधि के व्यंग्यों में छुपी संवेदना को समझा जा सकता है। जैसा कि पूर्व के अध्याय में कहा जा चुका है कि इस अवधि में राजनीतिक अस्थिरता, धार्मिक दंगे, आर्थिक संकट आदि का पर्याप्त प्रभाव था। इन प्रभावों नें देश में सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षणिक, प्रशासनिक एवं सांस्कृतिक व्यवस्था को झकझोर कर रख दिया। इन्हीं अव्यवस्थाओं नें इस युग के व्यंग्यकारों को

---

[11] सुरेशकांत; नरेंद्र कोहली-विचार और व्यंग्य; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; २००२; पृष्ठ २९

व्यंग्य-लेखन के लिए पर्याप्त सामग्री प्रदान किया। व्यंग्य में संवेदना किसी व्यक्ति, शोषित वर्ग के खिलाफ हो रहे जुर्म तक ही सीमित नहीं है। व्यंग्य का विषय केवल कुछ लोगों या लोगों के समूह को प्रभावित करने वाला नहीं होता बल्कि कई बार यह पूरे देश को प्रभावित करता है। ऐसे में व्यंग्य में संवेदना को दिखाने के लिए संवेदना की विस्तृत परिभाषा के आधार पर संवेदना को सामाजिक संवेदना, व्यक्तिगत संवेदना, राजनैतिक संवेदना, आर्थिक संवेदना, सांस्कृतिक संवेदना एवं साहित्यिक संवेदना के रूप में विभाजित किया जा सकता है।

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, समाज में रहने के कारण व्यक्ति को समाज की विभिन्न मान्यताओं, कुरीतियों, परम्पराओं, रूढ़ियों आदि से रूबरू होना पड़ता है। समाज के बिना व्यक्ति के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं की जा सकती। ऐसे में समाज में घटित होने वाली हर घटना व्यक्ति को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभावित करती है। समाज में अनेक विसंगतियाँ भी विद्यमान होती हैं, इन्हीं विसंगतियों पर मुखर रूप से जब साहित्यकार अपनी लेखनी चलाता है तो उसकी लेखनी में सामाजिक संवेदना परिलक्षित होती है। व्यंग्यकार समाज में व्याप्त अनेक बुराइयों, कुरीतियों एवं जन-मानस की समस्याओं के प्रति पाठकों के हृदय में संवेदना को जागृत करने का कार्य करता है। जिसके कारण उसकी पैनी दृष्टि व्यंग्य विधा में अधिक मुखरता के साथ प्रतीत होता है।यही कारण रहा है कि व्यंग्य के

माध्यम से पाठकों के हृदय में सामाजिक संवेदना को जागृत करने का कार्य इस युग के व्यंग्यकारों नें बड़ी कुशलता के साथ किया है। उदाहरणस्वरूप 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह में समाज में व्याप्त अनेक विषमताओं को उजागर करते हुए परसाई जी नें कटाक्ष के साथ ही साथ इन विषमताओं के प्रति संवेदनशील रुख़ अपनाते हुए पाठक समुदाय के भीतर संवेदना जागृत करने का प्रयास करते हैं। देश में बढ़ रहे विघटन एवं अलगाववाद के प्रति संवेदना प्रकट करते हुए इस व्यंग्य संग्रह में परसाई जी ने लिखा है -

"विघटन, अलगाववाद बढ़ रहा है। अपने-अपने रक्षित क्षेत्र (सेंक्चुअरी) में रहने की प्रवृत्ति बढ़ रही है। रवीन्द्रनाथ नें 'जनगणमन' की एकता की बात की है। जनगणमन की भावना ही घट रही है। संघ भावना (फ़ेडरल स्पिरिट) कम होती जा रही है। जनगण एक दूसरे से भिड़ रहे हैं। सब टूट रहा है। किस भारत भाग्य विधाता को पुकारें?"[12]

उक्त पंक्तियों के माध्यम से देश में बढ़ रहे अलगाववाद (जाति, धर्म, एवं क्षेत्र के आधार पर) पर संवेदना व्यक्त करते हुए लेखक नें यह प्रयास किया है कि पाठक एवं समाज के हृदय में भी संवेदना जागृत हो सके। भारत में छुआछूत, दलितों को अपने से नीचा समझने की प्रवृत्ति आदि प्रथाएँ समाज में व्याप्त थी। भेद-भाव कम नहीं हुआ। दलित-कल्याण हेतु जितनी

---

[12] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ १८

योजनाएँ सरकार द्वारा चलायी जाती हैं वो व्यवस्था में शामिल भ्रष्ट लोगों के कल्याण में उपयोग होती हैं। दलितों के प्रति हो रहे इस भेद-भाव के प्रति इस व्यंग्य संग्रह में अनेक स्थानो पर उनका प्रयास रहा है कि वे पाठकों के हृदय में भी दलितों के प्रति संवेदना प्रकट कर सकें। इसी संदर्भ में उन्होंने 'दलित-कल्याण के ठेकेदार' एवं 'ब्राह्मण से शूद्र तक' जैसे व्यंग्य-लेखों से पाठकगण एवं सम्पूर्ण समाज के मन में दलितों के प्रति संवेदना जागृत किया है। उदाहरणस्वरूप-

"नीची जातियों के धंधे भी ऊँची जातियों ने छीन लिए। ब्राह्मण और वैश्य जब जूते बनवाएँगे और बेचेंगे, तो चमार का धंधा गया। शास्त्रों, स्मृतियों, पुराणों को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में नहीं समझने से भूलें होती हैं, ग़लत निष्कर्ष निकलते हैं।.....उन्हें जैसा का तैसा आज लागू करना सम्पूर्ण जाति के आत्मघात का प्रयास है। कब लिखा, किसने लिखा, किसके हित के लिए लिखा, उत्पादन के साधन क्या थे, वे किनके हाथों में थे- इन सब बातों को समझे बिना शास्त्रों और स्मृतियों के उद्धरण देकर समाज के एक हिस्से को उसके मानवीय अधिकारों से वंचित करना अज्ञात तो है ही, कुछ लोगों की स्वार्थपरता भी है।"[13] उक्त पंक्तियों के माध्यम से परसाई जी द्वारा दलित-संवेदना को पाठकों के हृदय में जागृत करने की कला को समझा जा सकता है। परसाई जी नें मार्क्सवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए दलितों की

[13] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट १११

वर्तमान स्थिति को उजागर किया है एवं उसके बाद उस स्थिति के आधार पर पाठक के हृदय में दलितों के प्रति संवेदना जागृत करने का प्रयास किया है। परसाई जी सामाजिक व्यवस्था को खोखला कर रही भ्रष्टाचार व्यवस्था और उसके परिणामों पर भी अपनी लेखनी चलाते हैं। अनेक स्थानों पर परसाई जी भ्रष्टाचार के ख़िलाफ़ मुहिम छेड़ते दिखते हैं। भ्रष्टाचार से होने वाले दुष्परिणामों का प्रभाव आम-आदमी, गरीब मज़दूर आदि पर देखने को मिलता है। सरकार द्वारा इनके कल्याण के लिए चलाई जा रही योजनाएँ इन तक पहुँच ही नहीं पाती। सरकार द्वारा चलाई जा रही इन योजनाओं से इनके जीवन में काफ़ी सुधार हो सकता था किंतु भ्रष्टाचार की वजह से स्थिति जस का तस है। परसाई जी उदारीकरण और भ्रष्टाचार दोनो पर साथ-साथ प्रहार करते हुए लिखते हैं-

> "अस्सी फ़ीसदी गरीब हमारे देश में हैं। हम आरम्भ से इनके कल्याण की योजनाएँ बनाते रहे हैं, जिन्हें नेतावर्ग और अफ़सरशाही नें निगल लिया। उनका उत्थान होना चाहिए। गरीबी मिटनी चाहिए। मगर ये जो पश्चिम का पैसा लेकर आएँगे इनका सिद्धांत है कि देश को सम्पन्न करने के लिए ग़रीबों की चिंता मत करो। सम्पन्नता को ग़रीबों में मत लुटाओ। सम्पन्नता जिस वर्ग की होती है वो नीचे के वर्ग को लूट कर होती है।"[14]

[14] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट २३

उक्त पंक्तियों में परसाई जी ने उदारीकरण और भ्रष्टाचार दोनो पर साथ-साथ प्रहार किया है। देश में महिलाओं की स्थिति परसाई जी ने देखी। इनका पूरा जीवन परतंत्रता में बीत जाता है। सिर्फ़ शारीरिक रूप से ही नहीं वरन् अनेक कुरीतियों के माध्यम से उनको मानसिक रूप से ग़ुलाम बना दिया गया है। स्त्रियों की इसी दशा के प्रति परसाई जी ने पाठकों के हृदय में संवेदना जागृत करने का कार्य किया है। दहेज जैसी कुरीतियों की वजह से विवाह के पूर्व एवं विवाह के बाद भी महिलाएँ आत्महत्या करने को मजबूर हो जाती हैं। इसी समस्या का वर्णन करते हुए परसाई जी लिखते हैं-

"इस देश की हालत अब यह हो गयी है कि घर में लड़की का जन्म एक अपराध, एक पाप हो गया है। एक आदमी मुझे बता रहा था- मेरी शादी को बारह साल हो गए। पिछले हफ़्ते मेरी पत्नी ने लड़की को जन्म दिया। हम दोनो ख़ुश थे कि संतान हुई। पर अमुक सज्जन घर आये तो इस तरह जैसे मातमपुर्सी करने आए हों। उदास होकर बोले- भैया, भाग्य में जो होता है, वही होता है।"[15]

'ऐसा भी सोचा जाता है' (हरिशंकर परसाई) के अतिरिक्त अन्य व्यंग्य रचनाओं में भी सामाजिक व्यवस्था पर प्रहार करते हुए संवेदना को अभिव्यक्त करती हैं। लोकतंत्र में भी अपनी आवाज़ न उठा पाने वाले गरीब-

[15] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ट १५८

मज़लूम की आवाज़ को व्यंग्य साहित्य के माध्यम से पाठकों के समक्ष प्रस्तुत करने का कार्य किया गया है। (नरेंद्र कोहली) 'गणतंत्र का गणित' व्यंग्य संग्रह में बड़े ही मार्मिक ढंग से गणतंत्र में भी शोषण का शिकार हो रहे लोगों की समस्याओं को उजागर किया गया है। समाज में विभिन्न प्रकार के शोषण विद्यमान हैं। कहीं पुलिस प्रशासन द्वारा लोगों का शोषण किया जा रहा, कहीं दबंग व्यक्तियों द्वारा कमज़ोरों का शोषण किया जा रहा तो कहीं सरकार और सरकार में शामिल नेता एवं राजनेता द्वारा लोगों का शोषण किया जा रहा है। व्यंग्य साहित्य में इसी शोषण को अपने व्यंग्य का आधार बनाया गया है। शोषण के अतिरिक्त समाज में व्याप्त विभिन्न बुराइयों, भ्रष्टाचार, जैसी तमाम विसंगतियों के प्रति पाठकों को सचेत करने का कार्य किया है। शोषण की अगर बात करें तो 'न्याय और रोज़ी रोटी' (गणतंत्र का गणित), 'साख की बात' (गणतंत्र का गणित), 'ऋण और राजनीति' (गणतंत्र का गणित), 'अवैध क़ब्ज़े का औचित्य' (गणतंत्र का गणित) आदि व्यंग्य लेखों के माध्यम से इन्होनें समाज में कमजोर वर्ग के शोषण को उजागर किया है। 'न्याय और रोज़ी रोटी' में एक कमजोर व्यक्ति के मकान पर किसी और नें ताला लगा दिया है। पीड़ित व्यक्ति अपनी फ़रियाद थानेदार के पास ले जाता किंतु थानेदार उसे ही अतातायी घोषित करने लगता है। प्रस्तुत है इस लेख के कुछ अंश-

“मेरी कोठरी पर उन्होंने अपना ताला जड़ दिया है।’ रामलुभाया ने थानेदार से गुहार की।

‘तो क्या चाहते हैं आप? थानेदार नें पूछा।

‘उसका ताला तोड़कर, मेरी कोठरी का क़ब्ज़ा मुझे दिला दिया जाए।’

थानेदार की मुद्रा बदल गयी, ‘बाप का राज समझ रखा है! किसी का ताला तोड़ना इतना आसान है?

‘उसने भी तो मेरा ताला तोड़ा है।’

‘तोड़ा होगा। तब पुलिस वहाँ नहीं थी। अब पुलिस नें देख लिया है कि ताला उसका है।’

‘ठीक है, ताला उसका है।’ रामलुभाया बोला ‘पर कोठरी तो मेरी है।’

‘कोठरी तुम्हारी कैसे हो गयी।’ थानेदार नें रोष जताया, ‘वह विवादास्पद स्थान है।’[16]

उक्त पंक्तियों के माध्यम से एक ऐसे शोषित व्यक्ति की आवाज़ को प्रस्तुत किया है जो स्वयं पीड़ित है किंतु एक थानेदार उसको ही जेल में

[16] नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७; पृष्ठ ३२

डालने की बात करता है। एक अन्य लेख 'साख की रक्षा' (गणतंत्र का गणित) में भी कुछ इसी तरह किसी और के मकान पर क़ब्ज़ा करने की बात का ज़िक्र किया गया है-

"रामलुभाया छुट्टियाँ बिताकर घर लौटा तो पाया कि उसके फ़्लैट का ताला टूट चुका है और उस पर किसी और का क़ब्ज़ा हो गया है। घंटी बजायी तो भीतर से जो व्यक्ति बाहर आया, उसे वह अच्छी तरह से पहचानता था; वह भूरा था। शहर का बहुत बड़ा आदमी। बड़े आदमी से अभिप्राय था: बहुत पैसे वाला, राजनीतिक नेताओं के साथ उठने-बैठने वाला, थानेदार को शराब पिलाने वाला और पुलिस कमिश्नर के साथ बैठकर पीने वाला।"[17]

इसी तरह एक अन्य लेख 'अवैध क़ब्ज़े का औचित्य' (गणतंत्र का गणित) में भी क़ब्ज़े द्वारा किसी का शोषण करने वाली बात को आधार बनाया गया है-

> "भोलराम अपने गाँव से एक भैंस ले आया था। घर में तो भैंस बांधने का कोई स्थान था नहीं, इसलिए पिछवाड़े की गली में खूँटा गाड़कर भैंस बांध दी। भैंस वहाँ बांधी तो कटरा भी वहीं बँधना था। इसलिए बाध्य होकर एक खूँटा उसके लिए भी गाड़ना पड़ा। दिन भर भैंस और उसका कटरा धूप में जलते रहे और उन्हें

---

[17] नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७; पृष्ठ ३४

कष्ट में देख-देखकर भोलाराम का मान फुँकता रहा। अंधेरा होते ही उसने चुपके से चार बल्लियाँ गाड़कर उन पर टीन की छत डाल दी। उसने देखा कि दूर-दूर से लोग चाहे आँखे तरेरते रहे; किंतु किसी ने निकट आकर बल्लियाँ उखाड़ फेंकने का साहस नहीं किया। भोलाराम का साहस बढ़ गया। उसने पड़ोसी के मकान की दीवार के साथ एक खुर्ली भी बना ली और उसमें भैंस के लिए सानी कर दी।"[18]

सामाजिक समस्याओं को व्यंग्यों के माध्यम से सिर्फ़ उजागर ही नहीं किया गया है बल्कि इन समस्याओं के प्रति संवेदना भी व्यक्त की गयी है। व्यंग्य साहित्य में सामाजिक संवेदना के अतिरिक्त इनका केंद्रीय विषय राजनीतिक समस्या भी रही है। व्यंग्य के माध्यम से किसानों, ग़रीबों, ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों, ग्रामीण व्यक्तियों की रेल में यात्रा, कर्फ़्यू के दौरान एक आम आदमी और पुलिस वालों की समस्या, दंगे के दौरान आम आदमी की समस्याओं आदि का बड़ा ही मार्मिक वर्णन किया गया है। ये वर्णन इतनी कुशलता से किए गए हैं कि पाठक को अपने हृदय में रसानुभूति के साथ-साथ संवेदना भी महसूस होती है। किसानों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए 'दंगे में मुर्ग़ा' (ज्ञान चतुर्वेदी) में कहा गया है-

[18] नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७; पृष्ठ ८१

“खेत में फसल, खाद, खर-पतवार तथा डोर-डंगर के अलावा जो पाया जाता है, वही किसान है। ...देश आज़ाद क्या हुआ है कि किसान नंगा नहीं घूमना माँगता। किसान आजकल पूरा पेट भरना चाहता है। परंतु प्रशासन सतर्क है। प्रशासन जानता है कि भरे पेट बदमाशी सूझती है। जब ख़ाली पेट ही किसान इस कदर बदमाशी कर रहा है, तो पेट भर जाने पर तो न जाने क्या ही करेगा।”[19]

उक्त पंक्तियों में किसानों की मार्मिक स्थिति का वर्णन किया गया है। देश में किसान आज भी दयनीय अवस्था में जी रहे हैं। उनकी स्थिति में कोई सुधार नहीं हो रहा है। इसी कड़ी में ग्रामीण क्षेत्र के विद्यालयों की ख़स्ताहाल हालत पर भी व्यंग्य करते हुए उसकी स्थिति के बारे में पाठकों को परिचित करवाते हुए ‘दंगे में मुर्ग़ा’ में लिखा गया है-

“आज भी रोज़ की तरह, स्कूल में भारी चहल-पहल है। अभी कोई भी मास्साब नहीं पहुँचे हैं, सो बच्चों की मौज चल रही है। चपरासी ने आकर घंटा बजा दिया है। लड़कों के झुंड टाटपट्टियाँ लेकर यहाँ-वहाँ बैठ गए हैं। उनके बीच टाटपट्टियों की खींचतान मची हुई है। टाटपट्टियाँ कम हैं। जो हैं, वे भी कटी-फटी हैं। बच्चे एक-दूसरे के नीचे से खींचकर भाग रहे हैं टाटपट्टी के चीथड़े। जो सीधे-सादे बच्चे है, वे टाटपट्टी की आशा छोड़कर ज़मीन पर

[19] ज्ञान चतुर्वेदी; दंगे में मुर्गा; किताबघर प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ९-१०

ही बैठ गए हैं, घास का टुकड़ा तलाश करके। खिंचातानी में टाटपट्टियों के और टुकड़े हुए जा रहे हैं।”[20]

विद्यालय हमारे देश के भविष्य का निर्माण करता है। वहीं पर कल के भारत के खेवनहार को भविष्य के लिए सजग किया जाता है। ऐसे प्रमुख स्थान की ऐसी व्यवस्था होना बहुत ही दुःखदायी है। इसी व्यवस्था की समस्या का चित्रण करते हुए इस व्यंग्य लेख की रचना की गयी है। ‘कफ़्र्यू में रामगोपाल’ (दंगे में मुर्ग़ा) नामक व्यंग्य लेख में कफ़्र्यू के दौरान एक सिपाही की मानसिक अवस्था का बड़ा ही मार्मिक चित्रण किया गया है। इस लेख में एक सिपाही की बेटी बीमार रहती है वह उससे मिलनें नहीं जा पाता। सामान्यतः कफ़्र्यू में जनता को होने वाली समस्याओं का ही वर्णन देखने को मिलता है किंतु पुलिसवालों को होने वाली समस्याओं से भी पाठक को रूबरू कराया जाता है तथा दंगे के दौरान होने वाली तमाम समस्याओं का मार्मिक वर्णन देखने को मिलता है।

“पीछे फ़ैयाज़ मियाँ का घर धू-धू करके जल रहा था। लपटें आसमान में। गली में दंगाइयों की चित्कारती भीड़। पागल ख़ुशी और लपटों की आँच से दमकते दंगाइयों के चेहरे। दोनो सिपाही वहीं खड़े मज़ा लेते, उत्साहित करते दंगाइयों को। फ़ैयाज़ मियाँ के परिवार ने बाहर आने की कोशिश की, तो भीड़ ने लपटों में फेंक दिया। सबसे छोटे बेटे को तो स्वयं सिपाही नें आग

[20] ज्ञान चतुर्वेदी; दंगे में मुर्गा; किताबघर प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ४०

में उछाल दिया। हाय! यह क्या हो रहा था? कहाँ है राजा का न्याय और कहाँ है शांति के लिए लम्बी पदयात्राएँ करने वाले लोग? क्या हो गया है आदमी को?"[21]

'दंगे में मुर्ग़ा' व्यंग्य लेख में ग्रामीण क्षेत्रों की यातायात व्यवस्था की ख़स्ताहाल हालत से भी पाठकों को रूबरू कराया गया है। इसी अध्याय के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में यातायात के उपयोग में लायी जाने वाली एकमात्र बस के संदर्भ में उल्लेख किया गया है-

"तमाम सीमाओं तथा बाधाओं के बावजूद यह कनस्तर न होकर यदि बस है, तो इसके पीछे हफ़ीज़ मियाँ के धैर्य, परिश्रम तथा दुस्साहस का हाथ है। यहाँ-वहाँ से उखड़ने-छीजते गल गए टिन के पतरों, हिलते, कटे-फटे टायरों, चकनाचूर से काँचों और बाढ़ में किनारे लगे मुरदों की आँतों की भाँति बाहर झाँक रही सीटों की स्प्रिंगों को यदि अजर आत्मा की भाँति बस के मृतप्राय शरीर में किसी ने उखड़ते नट बोल्टों से कहीं अधिक अपने अमर आत्मविश्वास द्वारा बाँध रखा है, तो वे हैं जनाब हफ़ीज़ मियाँ रंग्रेज, उरई वाले।"[22]

'दाँत में फँसी कुर्सी' (गोपाल चतुर्वेदी) व्यंग्य संग्रह में भी सामाजिक संवेदना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। 'दादा का अहिंसा उसूल', 'अपनी

---

[21] ज्ञान चतुर्वेदी; दंगे में मुर्गा; किताबघर प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ ९१

[22] ज्ञान चतुर्वेदी; दंगे में मुर्गा; किताबघर प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ठ १२९

अंतिम हवाई यात्रा', 'देश में रेल का योगदान', 'फ़ायदे फ़ोन के', 'अख़बार की दरकार' आदि व्यंग्य-अध्यायों के माध्यम से पाठकों के हृदय में सामाजिक विसंगतियों के प्रति संवेदना जागृत करने का कार्य किया गया है। 'दाँत में फँसी कुर्सी' व्यंग्य संग्रह में अभिव्यक्त सामाजिक संवेदना का परिचय निम्न शब्दों में मिलता है -

"भारत में परिवार साथ लेकर चलने की परम्परा है। कुछ लोग साइकल पर इसका निर्वाह करते हैं, कुछ स्कूटर पर। रेल परिवारों को साथ रहने का पूरा अवसर देती है। झोले, बक्से, बिस्तर, बच्चे, साले-साली, पत्नी-पति आदि जो साइकल या स्कूटर पर मुश्किल से अटें, ट्रेन में सुविधा से समा जाते हैं। बस, एक कंडक्टर को साधा और एक-दो टिकट में आठ-दस का इंतज़ाम हो गया।"[23]

'दंगे में मुर्ग़ा' व्यंग्य संग्रह में विभिन्न पहलुओं पर कटाक्ष करते हुए विभिन्न सामाजिक समस्याओं पर संवेदना व्यक्त की गयी है। उदाहरणस्वरूप 'सर्दी के दिन', 'सती प्रथा के पक्ष में', 'कर्फ़्यू में रामगोपाल', 'रेलवे में फादर', 'और वे देसी खाते' आदि व्यंग्य अध्यायों के माध्यम से इन्होंने समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों के प्रति बड़े ही मार्मिक ढंग से व्यंग्य करते हुए संवेदना प्रकट की है। 'फाइल पढि-पढि' (गोपाल चतुर्वेदी) व्यंग्य संग्रह के 'कुर्सी, कूलर और कबूतर', 'अपनी दिल्ली,

---

[23] गोपाल चतुर्वेदी; दाँत में फँसी कुर्सी; प्रभात प्रकाशन; दिल्ली; १९९६; पृष्ठ ३८-३९

अपनी शान', 'दहेज की दरकार', 'बिल का सदाचार', 'कूड़े का समाजवाद', 'जनसेवक का कुटीर उद्योग', 'एक और मौत' आदि अध्याय समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को उजागर करते हुए इन विसंगतियों के प्रति संवेदना जागृत करता है। 'फाइल पढ़ि-पढ़ि' व्यंग्य संग्रह की कुशल सामाजिक संवेदना निम्न रूप में देखी जा सकती है-

"हमारे पड़ोसियों से मधुर सम्बंध हैं। वक़्त-ज़रूरत राशन का आदान-प्रदान चलता है। ऊपर वालों के लिए नीचे के घर कारपोरेशन के कूड़ेदान हैं। नीचे वाले अर्थात् हम कभी दायें वाले पड़ोसी को कूड़े से कृतार्थ करते हैं, कभी बायें वाले को। हमारे आजू-बाजू के पड़ोसी भी यही करते हैं। अकसर हम लोग एक-दूसरे से कतराते हैं, पर सामने पड़ ही जाएँ तो गले लग जाते हैं। पत्नियाँ भी हमारे भाई-चारे की आदर्श आचार-संहिता का पालन कर अपना कर्तव्य निभाती हैं। जब भी दो मिलती हैं, तीसरे की बुराई करती हैं।"[24]

'खम्भों के खेल' (गोपाल चतुर्वेदी) व्यंग्य संग्रह के 'हुक्का, हम और राजनीति', 'फ़ोन टेप ना हो पाने का संत्रास', 'मारुति-महिमा', 'पान, पॉलिटिक्स और पटना', 'पान और पेड़ की दुकान', 'देश और दहेज', 'बारात बनाम राजनीति' जैसे व्यंग्य-अध्याय तात्कालिक सामाजिक परिस्थितियों का वर्णनात्मक विवरण प्रस्तुत करते हुए पाठकों के हृदय में

---

[24] गोपाल चतुर्वेदी; फाइल पढि-पढि; भारतीय ज्ञानपीठ; दिल्ली; १९९१; पृष्ठ १०६

सामाजिक संवेदना को जागृत करने का कार्य करता है। इस व्यंग्य संग्रह की कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं-

"बहरहाल नाश्ते के वक़्त मुझे ज्ञान-बोध हुआ कि बारात आपसी मतभेद के बावजूद लड़की वाले अर्थात् भेड़-पक्ष के सामने शासकीय दल के विरोध में विपक्षी दलों के राष्ट्रीय मोर्चे सी एक है। "क्या आपने ब्रेक-फ़ास्ट के लिए सिर्फ़ जलेबी-पकौड़ी रखी है! हम दिल्ली के लोग टोस्ट-आमलेट के आदी हैं," कल्लू दूल्हे के बाबू भेड़िया बनकर दहाड़े। एक साहब ने दलिया-दूध का हुक्म दिया, दूसरे नें कॉर्न-फ़्लेक्स का। "भाई साब! हम तो सुबह-सुबह सिर्फ़ पपीता खाते हैं," कद्दू-सी सेहत वाले बोले। ऐसा लग रहा था कि किसी अकाल-पीड़ित क्षेत्र की भीड़, बिना बिल चुकाने के आश्वासन पर एक पाँच सितारा होटल में छुट्टी छोड़ दी गयी है।"[25]

'आओ बैठ लें कुछ देर' (श्री लाल शुक्ल) तथा 'गणतंत्र का गणित' (श्री लाल शुक्ल) व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय '१९९२ और भारत', 'शहर में कर्फ़्यू', 'दूरदर्शन: दूर दूर', 'भ्रष्टाचार और शिष्टाचार का घालमेल', 'अल्पसंख्यकों के लिए', 'रूखा-सूखा खाकर और पेप्सी कोला पीकर', 'झोलाछाप', 'भूकम्प के बाद', 'गिलास में आधुनिकता', 'भोलाराम का आँगन' आदि सामाजिक संवेदना को केंद्र में रखकर लिखे गए हैं। इन अध्यायों में समाज में व्याप्त विभिन्न समस्याओं की तरफ़ पाठकों का ध्यान

[25] गोपाल चतुर्वेदी; खम्भों के खेल; प्रभात प्रकाशन; १९९०; पृष्ठ १६६

आकर्षित किया गया है। इसी तरह 'यत्र तत्र सर्वत्र' (शरद जोशी) व्यंग्य संग्रह में अनेक व्यंग्य अध्यायों में रचनाकार की सामाजिक संवेदना परिलक्षित होती है। इनमे प्रमुख अध्याय हैं 'न्यायी जहाँगीर और मुसीबतज़दा लेक्चरर: तबादले के सोलह सिद्धांत', 'किसान रैली', 'रेल-यात्रा', 'मेघदूत', 'हीरो की नियति', 'मुर्ग़ाबीती' आदि अध्यायों के माध्यम से अनेक सामाजिक समस्याओं पर पाठकों का ध्यान आकर्षित किया है। प्रस्तुत है इसी व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय 'रेल-यात्रा' (यत्र तत्र सर्वत्र) की कुछ पंक्तियाँ-

"भारतीय रेलें कहीं-न-कहीं हमारे मन को छूती हैं। वह मनुष्य को मनुष्य के क़रीब लाती हैं। एक ऊँघता हुआ यात्री दूसरे ऊँघते हुए यात्री के कंधे पर टिकने लगता है। बताइए ऐसी निकटता भारतीय रेलों के अतिरिक्त कहाँ देखने को मिलेगी? आधी रात को, ऊपर की बर्थ पर लेटा यात्री नीचे की बर्थ पर लेटे इस यात्री से पूछता है- यह कौन सा स्टेशन है? तबीयत होती है कहूँ- अबे चुपचाप सो, क्यों डिस्टर्ब करता है? मगर नहीं, वह भारतीय रेल का यात्री है और भारतभूमि पर यात्रा कर रहा है। वह जानना चाहता है कि इस समय एक भारतीय रेल ने कहाँ तक प्रगति कर ली है?"[26]

समाज का एक अभिन्न अंग होने के कारण एक मनुष्य का दूसरे मनुष्य से लगाव होना स्वाभाविक है। ऐसे में मनुष्य जब समाज का अभिन्न अंग

---

[26] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ठ ४०

रहते हुए किसी अन्य मनुष्य के दुःख, दर्द, एवं पीड़ा से प्रभावित होता हुआ स्वयं की पीड़ा को प्रस्तुत करता है तो उसे व्यक्तिगत संवेदना कहते हैं। एक साहित्यकार जब इस तरह की वेदना के आधार पर साहित्य रचना करता है तो इस प्रकार की रचना में व्यक्तिगत संवेदना परिलक्षित होती है। व्यक्तिगत संवेदना की अगर बात करें 'विषकन्या' (रवीन्द्रनाथ त्यागी), 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' (रवीन्द्रनाथ त्यागी),'चम्पाकली' (रवींद्रनाथ त्यागी), 'देश विदेश की कथा'(चंपाकली), 'पूरब खिले पलाश ' (रवींद्रनाथ त्यागी), 'आओ बैठ लें कुछ देर '(श्रीलाल शुक्ल), 'किसे जगाऊँ' (नरेंद्र कोहली) एवं 'यत्र तत्र सर्वत्र' (शरद जोशी) आदि व्यंग्य संग्रहों में मुख्य रूप से देखने को मिलती है।

'किसे जगाऊँ' व्यंग्य संग्रह में दर्शन एवं अध्यात्म के साथ व्यक्तिगत संवेदना का जो अनूठा संगम देखने को मिलता है वह अन्यत्र कहीं देखने को नहीं मिलता है। 'किसे जगाऊँ' व्यंग्य संग्रह में कोहली जी नें अपने व्यक्तिगत विचारों को धर्म, दर्शन और अध्यात्म की कसौटी पर रखते हुए उसे पाठकों के समक्ष पेश किया है। प्रस्तुत है इस व्यंग्य संग्रह की कुछ पंक्तियाँ -

"वस्तुतः दान का महत्व ही त्याग का भाव अर्जित करने में है। दान के पश्चात् मन में यदि त्याग के स्थान पर अहंकार जागे, तो उस दान का कोई लाभ नहीं है। हम अपने आध्यात्मिक विकास के लिए अपने धन का त्याग करना सीखते हैं। अपने अहंकार को स्फीत करने के लिए नहीं।...

व्यक्ति न भिन्न है, न पृथक्, न स्वतंत्र; श्रेष्ठ तो वह है ही नहीं। इसलिए संवेदना, प्रेम, सहायता अथवा दान यह सब सम्पूर्ण सृष्टि से एकात्मकता स्थापित करने की ही प्रक्रिया है।"[27]

इसी तरह 'विषकन्या' (रवीन्द्रनाथ त्यागी) व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय 'जिन मकानों में ख़ाकसार रहा' में भी व्यक्तिगत संवेदना को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जो उल्लेखनीय है-

"मेरी मकान मालकिन एक एंग्लो-इंडियन महिला थीं जो सब तरफ से विशाल थीं। उनके पति- जो एक जर्मन पत्रकार थे- अपनी पत्नी की कटि तक भी मुश्किल से ही पहुँचते थे। पता नहीं गृहस्थाश्रम कैसे काम करता होगा। उस महिला रत्न की आवाज़ इतनी बुलंद थी कि फ़तेहपुर सीकरी के बुलंद दरवाजे की याद दिलाती थी।"[28]

व्यक्तिगत संवेदना के केंद्रीय विषय में पर्याप्त विविधता देखने को मिलती है। 'गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा' (रवीन्द्रनाथ त्यागी) व्यंग्य संग्रह के 'आज़ादी के चालीस वर्ष बाद' अध्याय में भारत देश पर मोहित होते हुए लिखा गया है-

"मैं तो अपने इस पर्वती, समुद्री और मैदानी देश को देखता हूँ तो ठीक उसी प्रकार फिसल जाता हूँ जिस प्रकार दुष्यंत का विदूषक शकुंतला

---

[27] नरेन्द्र कोहली; किसे जगाऊँ; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६; पृष्ट ३५

[28] रवीन्द्रनाथ त्यागी; विषकन्या; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०; पृष्ट ४३

की देह के ऊँचे-नीचे भागों को देखकर कभी फिसला था। हाँ, अलबत्ता लेख समाप्त करने से पहले मै देश के कर्णधारों से-वे चाहे 'लाल बहादुर' हो या 'हरा बहादुर'- वह ज़रूर कहूँगा जो कि महान कवि रविंद्रनाथ ठाकुर नें कहा था। ... तुम यह नहीं सोचना कि जो तुम चाहोगे, वही होगा। दुनिया को तुम नहीं बचा सकोगे। एक दिन तुम आँख खोलकर देखोगे कि जो कभी न होना था, एक दिन वह भी हो गया।"[29]

एक स्थान पर इंसान और कुत्ते की तुलना करते हुए लिखा गया है- "मैं उन्हें कोई दस वर्षों से जानता था। इन वर्षों में उन्होंने पता नहीं, पति तो कई बदले पर कुत्ता वही रखा। वे प्रायः कहा करती थीं कि पति और कुत्ते का कोई मुक़ाबला नहीं किया जा सकता क्योंकि जितना वफ़ादार एक कुत्ता होता है, उतना वफ़ादार पति कभी नहीं पाया गया। पति अगर कहीं उलझ गया तो बस उलझ गया, मगर कुत्ता है कि दिन में चाहे कितनी भी लूसी, ज्यूसी, पिंकी, डिंकी, निम्मी, नरगिस और लैला से प्यार कर ले, शाम को वह मालकिन के पास ही लौटता है, और कहीं नहीं।"[30]

एक अन्य स्थान पर 'देश विदेश की कथा' में लाउड्स्पीकर द्वारा नींद में व्यवधान उत्पन्न होने के ऊपर लिखा गया है- "मैं दिन भर पढ़ता-लिखता हूँ और शाम को जल्दी ही सो जाता हूँ। आर्य होने के कारण मैं इस

---

[29] रवीन्द्रनाथ त्यागी; गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा; नेशनल पब्लिक हाउस; नयी दिल्ली; १९९१; पृष्ट १५५

[30] रवीन्द्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८; पृष्ट ६३

परम्परा का पालन करता हूँ हालाँकि मैं जानता हूँ कि यह परंपरा आर्यों ने उस समय निश्चित की थी जब बिजली का अविष्कार नहीं हुआ था। मगर आजकल शादियों का मौसम है और शाम से ही माइक्रोफ़ोन पर बिस्मिल्लाखान शहनाई बजाना शुरू कर देते हैं। मैं थका-माँदा होने पर भी सो नहीं पाता।"[31]

'आओ बैठ लें कुछ देर' (श्री लाल शुक्ल) व्यंग्य संग्रह भी व्यक्तिगत संवेदना को मुखरता से प्रस्तुत करती है। इस व्यंग्य संग्रह के अधिकतर अध्यायों में व्यक्तिगत संवेदना स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। इस व्यंग्य संग्रह में भी व्यक्तिगत संवेदना को प्रस्तुत करने के लिए जिन विषयों का सहारा लिया गया है उसमें बहुत अधिक विविधता है। त्योहार, अज्ञानता, भक्ति, पारिवारिक स्थिति, विभिन्न मुद्दों पर स्वयं के विचार आदि विषयों के आधार पर व्यक्तिगत संवेदना देखने को मिलती है। अनेक स्थानों पर अपने विचारों को प्रभावी ढंग से कहने के लिए मिथकों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। इस व्यंग्य संग्रह के विभिन्न विषयों में से एक उद्धरण निम्न है-

"मैंने भी तीन साल मेहनत करके, लगभग बाइस सौ पन्ने रँगकर लगभग तीन सौ पृष्ठ का एक उपन्यास तैयार किया। एक व्यवसाय-प्रबंधक मित्र के भड़काने पर पांडुलिपि प्रकाशक को देते समय मैंने, पचास हज़ार

---

[31] रवीन्द्रनाथ त्यागी; देश-विदेश की कथा; किताब घर प्रकाशन; दिल्ली; १९९४; पृष्ट ५९

की हिम्मत न होने के कारण, सिर्फ़ बीस हज़ार रूपये का अग्रिम माँगा। वह मुझे मिल भी गया। दो-तीन महीने बाद दूसरी पुस्तकों की रॉयल्टी का जो विवरण आया, उसमें यह रक़म काट ली गयी थी।"[32]

समाज में रहते हुए व्यक्ति के बीच के मतभेद, उनके विकास एवं उनके क्रियाकलाप को सकारात्मक दिशा में निर्देशित करने के लिए विभिन्न राजनीतिक संगठनों की आवश्यकता होती है। वर्तमान समय में इन राजनीतिक संगठनों में अनेक विसंगतिया व्याप्त हो गयी हैं। वोट-बैंक की राजनीति ने समाज में अलगाववाद जैसी विकराल समस्या को जन्म दिया है और साथ ही साथ भ्रष्टाचार को भी बढ़ावा दिया है। इन्हीं राजनीतिक विसंगतियों को आधार बनाते हुए जब साहित्यकार साहित्य रचना करता है तो ऐसे में उसकी रचनाओं में राजनैतिक संवेदना परिलक्षित होती है। सन् १९९० ई० - २००० ई० का युग राजनीतिक अस्थिरता का युग रहा है। जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है एक व्यंग्यकार अपने आस-पास घटित होने वाली घटनाओं को देखता है, समझता है और फिर उस पर अपनी पैनी दृष्टि रखते हुए सीधे तौर पर नहीं वरन् घुमा कर और अतिशयता का सहारा लेते हुए उसे पाठक के समक्ष प्रस्तुत करता है। ऐसे में व्यंग्यकारों को व्यंग्य लिखने के लिए पर्याप्त मसाला प्राप्त हुआ। यही वजह रही है कि इस युग के व्यंग्य साहित्य में राजनीति में फैले भ्रष्टाचार के प्रति

---

[32] श्री लाल शुक्ल; आओ बैठ लें कुछ देर; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९५; पृष्ट ३७

समाज को सजग करते हुए आम जनमानस के प्रति संवेदना भी कूट-कूट के भरी हुई दिखायी देती है। इस युग में व्यंग्यों के द्वारा राजनैतिक संवेदना को ना सिर्फ़ पाठकों के हृदय में जागृत करने का प्रयास किया गया वरन् पाठकों को राजनीतिक भ्रष्टाचार को दूर करने के फ़ायदे और भ्रष्टाचार से होने वाले नुक़सान भी बताए गए। एक अच्छे लोकतंत्र की अच्छाइयों के साथ-साथ लोकतंत्र की विकृतियों को भी उजागर किया गया है। इसी संदर्भ में चुनाव के दौरान उन नेताओं का वर्णन करते हुए, जो सिर्फ़ चुनाव के दौरान देखे जाते हैं, को निशाना बनाते हुए एक उद्धरण प्रस्तुत है- "वे राजमार्गों पर चलने वाले आज गलियों में धँसे। जिस लगन से कोलम्बस अमरीका खोजने निकला था उसी लगन से वे आज अपना चुनाव-क्षेत्र खोजने निकले। वे हर गली और हर घर में जाना चाहते हैं। वे देखना चाहते हैं कि सब कहाँ हैं? वे सब कहाँ हैं जो यहाँ थे? क्या ये सब वही हैं? क्या ये सब वैसे और वहीं हैं जो यहाँ थे? वे जाँच रहे हैं। हज़ारों आँखों के आइने में वे अपने को जाँच रहे हैं।"[33] कुछ इसी तरह का वर्णन 'फाइल पढ़ि-पढ़ि' में भी देखने को मिलता है। 'फाइल पढ़ि पढ़ि' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय 'झंडा, डण्डा और प्रजातंत्र' में निम्न उद्धरण प्रस्तुत है-

"जैसे-जैसे चुनाव नज़दीक आते हैं, मंत्रियों पर जन-सम्पर्क का दौरा जल्दी-जल्दी पड़ने लगता है। इसी चक्कर में हमारे मोहल्ले के मंत्री अपनी

[33] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ट ११

त्याग और सेवा की हरी-भरी कोठी छोड़कर अपने पुश्तैनी घर पर पधारे। हम लोगों को कई साल बाद दर्शन-लाभ का अवसर मिला।"[34]

इस युग के व्यंग्यकारों नें नेताओं के चुनाव लड़ने ही नहीं वरन् सरकार द्वारा विभिन्न संस्थाओं की कार्यप्रणाली को प्रभावित करके उनसे अपने हित में कार्य कराने की प्रवृत्ति पर भी प्रहार देखने को मिलता है। इसी संदर्भ में 'कुछ जमीन पर, कुछ हवा में' (श्री लाल शुक्ल) व्यंग्य संग्रह में उल्लेख है कि-

"अधिकारों के विकेंद्रीकरण के इस खेल में पंचायतों के चुनाव, उनका वित्तीय नियंत्रण और संवैधानिक स्थिति अब 'राज्य-सूची' से हटकर 'संयुक्त सूची' में आने जा रही है। पंचायतें केंद्र के हाथ में कब और कैसे पहुँचेंगी, यह देखने की बात है। हम देख रहे हैं, हम देखेंगे। नारा विकेंद्रीकरण का है, ख़तरा केंद्रीकरण का।"[35]

अर्थव्यवस्था किसी समाज के लिए रीढ़ की हड्डी की तरह होती है। उत्पादन के साधन, संसाधनों का वितरण, आर्थिक क्रियाकलापों के भागीदारी, व्यापारोन्मुखी परिस्थितियाँ, भौगोलिक अवस्था एवं उत्पादन हेतु उपयुक्त परिस्थितियाँ आदि समाज के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। किसी भी समाज की अर्थव्यवस्था उपयुक्त न होने पर समाज

---

[34] गोपाल चतुर्वेदी; फाइल पढ़ि पढ़ि; सार्थक प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९१; पृष्ठ १२९

[35] श्री लाल शुक्ल; कुछ जमीन पर कुछ हवा में; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०; पृष्ठ ११६

के बड़े हिस्से को कष्ट झेलना पड़ता है। आर्थिक संकट का प्रभाव व्यक्ति के सामाजिक, पारिवारिक, सांस्कृतिक एवं नैतिक मूल्यों पर भी देखने को मिलता है। इन मूल्यों के पतन से एवं आर्थिक परिस्थितियों को केंद्र में रखते हुए जब साहित्यकार साहित्य रचना करता है तो ऐसे में साहित्यकार के रचनाओं में आर्थिक संवेदना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। इस युग में सिर्फ़ राजनैतिक उपापोह ही नहीं वरन् देश आर्थिक समस्याओं से भी जूझ रहा था। इसका प्रभाव इस युग के व्यंग्यों की संवेदना में भी देखा जा सकता है। देश में अनाज़ की कमी और विदेशों से अनाज दान लेने के तरीक़े के ऊपर प्रहार करते हुए 'यत्र तत्र सर्वत्र' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय 'भीख की भारतीय शैली' में शरद जी लिखते हैं "हमें अनाज की सख़्त ज़रूरत है। पर इसका आप यह अर्थ न लें कि हम भूखे है। आप हमें अनाज देंगे तो हम लेंगे, यद्यपि हम कह नहीं रहे। पर हम अपेक्षा करते हैं कि आप स्वयं अनाज देने की बात उठाएँगे और देंगे। हम आपको बता देना चाहते हैं कि हम आत्मनिर्भर हैं। और रहना पसंद करते हैं, परंतु यदि आप हमें अनाज देंगे तो हमें स्वीकार होगा।... आपको हम सुपात्र मानते हैं जो हमें भीख दे सकता है।"[36]

समाज में रहते हुए व्यक्ति की वेशभूषा, रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, भाषा आदि का अपना महत्व होता है। ये सभी सामूहिक रूप

[36] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ट २१२-२१३

से समाज की संस्कृति को निर्धारित करते हैं। संस्कृति किसी समाज के मानवीय मूल्यों का दर्पण भी होता है। समाज में रहते हुए समय-परिवर्तन के साथ इन संस्कृतियों में भी परिवर्तन होता रहता है। इन परिवर्तनों के परिणामस्वरूप सांस्कृतिक मूल्यों का पतन भी होता है। एक व्यंग्यकार इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों को आधार बनाते हुए व्यक्ति एवं समाज को इन मूल्यों के पतन के प्रति आइना दिखाने का कार्य करता है एवं समाज को आगाह करने हेतु प्रतिबद्ध रहता है। इस युग में आधुनिकता अपने चरण जमा रही थी, लोगों का पलायन शहरों की तरफ तीव्र गति से हो रहा था। शहर में रहने वाला व्यक्ति अपने रोज़मर्रा की ज़रूरतों में ही उलझा हुआ है। इसका प्रभाव भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों पर भी पड़ता दिखाई दिया। वर्तमान समय में 'संस्कृति' शब्द का प्रयोग बहुत ही संकुचित अर्थ में किया जाता है। इस पर खेद प्रकट करते हुए एवं इसके बृहत्तर अर्थ की वकालत करते हुए व्यंग्य संग्रह 'कुछ जमीन पर कुछ हवा में' में श्रीलाल शुक्ल जी लिखते हैं "कि 'संस्कृति' का अर्थ यहाँ उस सीमित धारणा में न लिया जाय जिसके अंतर्गत 'सांस्कृतिक कार्यक्रम' को सिर्फ़ नाच-गाने का पर्याय बना दिया गया है, बल्कि उसके बृहत्तर अर्थ"[37] के रूप में उसे समझा जाए। सांस्कृतिक ह्रास के इसी युग को केंद्र में रखते हुए 'ऐसा भी सोंचा जाता है' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय 'क्या अतिथि देवता नहीं रहा' की रचना परसाई जी नें की। पूर्व भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों नें जहां अतिथि को देवता

[37] श्री लाल शुक्ल; कुछ जमीन पर कुछ हवा में; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०; पृष्ठ ९३

की उपाधि दी थी वहीं अब अतिथि को बिन बुलाए बाराती की तरह देखा जाने लगा था। उन्हीं के शब्दों में "गावों में साधारण सम्पन्न किसान परिवारों में अभी भी अतिथि खप जाता है। मगर शहर में दो कमरों का छोटा-सा घोंसला मध्यमवर्गी का होता है। आमदनी सीमित है। गरीबी में ज़िंदगी चलाते हैं। एक बार का भोजन पाँच रूपये का होता है। ऐसे में अतिथि पधार जाएँ तो देवता नहीं लगते।"[38] अतिथियों के आगमन पर 'फाइल पढ़ि-पढ़ि' (गोपाल चतुर्वेदी) व्यंग्य संग्रह में भी लिखा गया है। "इसी बीच गरीबी में आटा गीला करने एक दिन सहाय साहब भी सपरिवार आ धमके। 'अरे अनुराग तुमने कभी मैंशन ही नहीं किया कि तुम्हारे पैरेंट्स आए हुए हैं', सहाय जी नें शिकायत की।"[39] ये पंक्तियाँ रिश्तों की टूटती डोर और परिवार पर बूढ़े माँ-बाप के बोझ बन जाने के साथ रिश्तों में भी किस तरह भावनात्मक परिवर्तन होता जा रहा है, के मर्म को अभिव्यक्त करती हैं।

आज़ादी के बाद भारत नें संविधान में धर्मनिरपेक्षता के सिद्धांत को अपनाते हुए खुद को एक धर्म-निरपेक्ष राज्य घोषित किया। भारत देश में जहां एक ओर विभिन्न धर्म एवं विभिन्न संस्कृतियाँ विद्यमान हैं वहीं दूसरी तरफ़ उदारता एवं आपसी सामंजस्य के लिए विश्व भर में विख्यात है। बीते कुछ वर्षों में धर्म के नाम पर, जाति के नाम पर एवं क्षेत्र के नाम पर

[38] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ४८

[39] गोपाल चतुर्वेदी; फाइल पढ़ि पढ़ि; सार्थक प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९१; पृष्ठ २०२

अलगाववाद प्रभावी हुआ है। ऐसा सामान्यतः वोट बैंक की राजनीति की वजह से देखने को मिलता है। मानव प्रेम एवं सहयोग की भावनायें धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। इस विघटन और धार्मिक मूल्यों के पतन को ध्यान में रखते हुए साहित्यकार अपनी रचनाओं में इन मूल्यों के प्रति संवेदना व्यक्त करता है। इस युग में अनेक धार्मिक कुरीतियों को भी निशाना बनाते हुए व्यंग्य रचना की गयी। धार्मिक कुरीतियों पर प्रहार करने का में 'ऐसा भी सोचा जाता है' व्यंग्य संग्रह का नाम विशेष रूप से लिया जा सकता है। "धर्मों की मूल चिंता मनुष्यों का दुःख मिटाना उन्हें बेहतर मनुष्य बनाना होती है। फ़िलिस्तीन समाज में दासों और दलितों के दुःख से द्रवित हुए थे ईसा। उनका धर्म ग़रीबों, दलितों, दासों की मुक्ति के लिए और उनके सुख के लिए है। आरम्भिक दौर में इस धर्म नें यह कार्य किया। पर आगे चलकर ईसाई धर्म पर रोमन साम्राज्यवादियों नें क़ब्ज़ा किया और धर्म यूरोप में सामंतों के हाथों में चला गया। तब यह मुक्ति का धर्म नहीं दासता और दमन का धर्म हो गया। इसी के अनुरूप उच्चस्तरीय पुरोहित वर्ग बन गया।"[40] वहीं धर्म के आधे ज्ञान और लोगों का उस आधे ज्ञान के सहारे बयानबाज़ी करने के रवैए से दुखी होते हुए 'आओ बैठ लें कुछ देर में' (श्रीलाल शुक्ल) में लिखा गया है- "अभी मैंने हाल ही में एक वक्तव्य पढ़ा कि जय श्रीराम का नारा विश्व हिंदू परिषद नें नहीं, रामानन्द सागर नें दूरदर्शन पर अपने सीरियल 'रामायण' में निकाला था। दूसरे शब्दों में इसके

[40] हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३; पृष्ठ ७९

स्रष्टा ऋषि-पहलवान-अभिनेता दारासिंह हैं। मुझे भी ऐसा ही लगता है। जो भी हो, पंडितों को इस विषय पर शोध करना चाहिए।"[41] वहीं वेदों की भाषा का आम जनमानस को समझ न आने और हिंदू धर्म प्रचलित कुछ अजीबो-गरीब मान्यताओं के ऊपर व्यंग्य संग्रह 'देश विदेश की कथा' (रवीन्द्रनाथ त्यागी) में लिखा गया है- "हमारे पूर्वज शायद सोंचते थे कि यदि हमारे धर्म-ग्रंथ सरल हो गए तो वे पवित्र नहीं रहेंगे। पुराणों में यह भी लिखा है कि विश्व में सर्वप्रथम ब्राह्मण, गाय, अग्नि और वेदों की उत्पत्ति की गयी। इसी तरह 'देश विदेश की कथा' व्यंग्य संग्रह के व्यंग्य अध्याय 'धर्म-चर्चा' में भी विभिन्न धर्मों में विद्यमान विभिन्न कुरीतियों एवं मान्यताओं पर संवेदना प्रस्तुत की गयी है।

व्यंग्यकार समाज में फैले विभिन्न प्रकार की विसंगतियों को कटघरे में खड़ा करके उसका मूल्यांकन करता है। जिसमें उसकी बौद्धिकता का होना अति आवश्यक हो जाता है। अपने विचारों को स्वयं की अनुभूति के आधार पर जाँचता-परखता है। अपनी विचारशीलता के कारण वह अपने भावनाओं एवं अनुभवों को व्यक्त करता रहता है। अपने इन्हीं विचारों को अभिव्यक्त करने के माध्यम के रूप में वह साहित्य निर्माण की प्रक्रिया में भाग लेता है। किंतु विचारों की भी कई कोटियाँ होती है, जिसका परिणाम यह होता है कि साहित्य में भी विभिन्नता पायी जाती है। वर्तमान समय में

---

[41] श्री लाल शुक्ल; आओ बैठ लें कुछ देर; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९५; पृष्ट ५०

साहित्य में भी अनेक विसंगतियाँ देखने को मिलती है। इसका परिणाम यह होता है एक योग्य साहित्य एवं साहित्यकार कई बार अपनी योग्यतानुसार उचित स्थान नहीं प्राप्त कर पाता। इसी तरह साहित्य में भी अनेक विसंगतियाँ गत वर्षों में विद्यमान हो गयी हैं। इन्हीं में एक विसंगति है चाटुकारों का प्रभाव'। चाटुकारिता को ध्यान में रखते हुए और इस पर प्रहार करते हुए 'यत्र तत्र सर्वत्र' के व्यंग्य अध्याय 'समीक्षा की छेड़खानी शैली के समर्थन में' लिखा गया है कि-"हिंदी में आचार्यत्व अपेक्षाकृत शीघ्र प्राप्त होता है। कठिन तो है उसे बनाए रखना। एक बार पहलवानी छोड़ दो तो तोंद बढ़ते और हँफनी आते देर नहीं लगती। ऐसे समय पुरानी लोकप्रियता और चेले-चपाटी काम आते हैं। नामी पहलवान को चुनौती दो तो बोलता है पहले मेरे चेले से लड़ लो। साहित्य में भी यही होता है। तर्कवालों से निपटने श्रद्धावाले आगे आ जाते हैं।"[42] साहित्य के गिरते हुए स्तर और साहित्यकारों द्वारा कूड़े के रूप में पाठकों के समक्ष कुछ भी परोस देने की वजह से साहित्य के क्षेत्र में हो रही गिरावट को भी समकालीन व्यंग्यकारों नें निशाना बनाया। साहित्यिक संवेदन को केंद्र में रखते हुए व्यंग्य संग्रह 'कुछ जमीन पर कुछ हवा में' में श्रीलाल शुक्ल जी लिखते हैं कि "घटिया साहित्य दो क़िस्म का होता है। एक तो घटिया क़िस्म का घटिया साहित्य होता है। उसके बारे में लगभग सभी लोग जानते हैं। दूसरा होता है बढ़िया क़िस्म का घटिया साहित्य। उसके बारे में पाठक को बराबर

---

[42] शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००; पृष्ट १८२

चौकन्ना रहना चाहिए।"[43] साहित्य के इसी गिरते हुए स्तर पर खेद प्रकट करते हुए 'देश विदेश की कथा' (रवींद्रनाथ त्यागी) व्यंग्य संग्रह में भी 'विज्ञापन कविता' अध्याय की रचना की गयी है। इस अध्याय में कविताओं के गिरते स्तर और विज्ञापन के लिए कविता के नाम पर कूड़े के ढेर और घटिया तुकबंदी करने की परम्परा पर प्रहार किया गया है।

एक साहित्यकार सिर्फ़ शरीर ही नहीं वरन् साहित्य की आत्मा को भी केंद्र में रखते हुए साहित्य रचना करता है। समकालीन व्यंग्य-साहित्य के साहित्यकारों नें इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है। निष्कर्षतः इस युग के व्यंग्यों में व्यक्त संवेदना का समकालीन व्यंग्य-साहित्य और उसके विकास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। समकालीन व्यंग्यकारों नें सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक एवं साहित्यिक संवेदना के अतिरिक्त व्यक्ति की पारिवारिक एवं व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हुई संवेदना को भी केंद्र में रखते हुए व्यंग्य लेखनी चलायी है। इन सभी क्षेत्रों में व्याप्त विसंगतियों के प्रति संवेदना व्यक्त करते हुए इन विसंगतियों को न सिर्फ़ उजागर करने का कार्य किया है वरन् अनेक स्थानों पर इस युग के व्यंग्यकार इनके सुधार के लिए भी प्रयास करते हुए दिखायी देते हैं।

[43] श्री लाल शुक्ल; कुछ जमीन पर कुछ हवा में; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०; पृष्ठ २०३

उपसंहार

हिंदी साहित्य के भारतेंदु युग के मध्य में समुचित रूप से आरम्भ होने और हिंदी साहित्य की नवीन विधाओं में गिने जाने के बावजूद, व्यंग्य विधा वर्तमान समय में समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को मुखर रूप से प्रदर्शित करती है। हिंदी व्यंग्य साहित्य ने उस समय जन्म लिया जब भारतीय स्वतंत्रता के लिए संयुक्त रूप से आवाज़ उठना शुरू हो रही थी। ऐसे में हिंदी व्यंग्य साहित्य के भीतर भारतीय स्वतंत्रता-संघर्ष से लेकर वर्तमान भारत के बनने तक के सफ़र का अनुभव समाया हुआ है। ऐसे में कहा जा सकता है कि अगर “साहित्य समाज का दर्पण है” तो "व्यंग्य साहित्य वर्तमान भारत के बनने की कहानी।” व्यंग्य समाज के उन अंगों की तस्वीर प्रस्तुत करता है जो किसी न किसी यथार्थ से जुड़े होते हैं। व्यंग्य आरंभ से ही समाज की कुरीतियों, रूढ़ियों एवं भ्रष्ट मान्यताओं पर प्रहार करते रहे हैं। व्यंग्य समाज में फैले पाखंड का पर्दाफ़ाश करते हुए समाज के असहाय वर्ग की आवाज़ को आगे बढ़ाने का कार्य भी करता है। व्यंग्य एक भाव साधन है जिसके माध्यम से व्यंग्यकार समाज-सुधार में अपना योगदान देता है। व्यंग्य एक ऐसा अस्त्र है जो जीवन में व्याप्त पीड़ा और आक्रोश में सामंजस्य स्थापित करके सत्य से साक्षात्कार कराता है। व्यंग्य आंतरिक रूप से चुभाने वाला होता है जबकि बाह्य रूप से मनोरंजन-परक

तथा हास्य-परक होता है। व्यंग्य नकारात्मक तत्वों, दुर्गुणों एवं मूर्खताओं की निंदा करता है। व्यंग्य का केंद्रीय विषय मनुष्य के जीवन के हर पहलू को अपने अंदर समाहित किए रहता है, अर्थात् व्यंग्य मानव जीवन में किसी भी स्तर पर व्याप्त अनेक विसंगतियों को उजागर करता है और समाज को बेहतर बनाने में अपना योगदान देता है। व्यंग्य लिखने के लिए कई मानसिक अवस्थाएँ हैं जिसके वशीभूत होकर व्यंग्यकार व्यंग्य की रचना करता है; उदाहरणार्थ घृणा, दुःख, क्षोभ, क्रोध, ईर्ष्या, तीव्र आक्रोश इत्यादि। व्यंग्यकार की भूमिका मात्र पाठक के होंठों पर मुस्कान लाने तक ही सीमित नहीं है वरन् व्यंग्यकार को समाज के ताने-बाने पर विचार करते हुए व्यंग्य रचना करता है। व्यंग्यकार शब्द को ही अपने आक्रोश का माध्यम बनाता है। एक सामाजिक व्यक्ति को मानसिक रूप से स्वस्थ रहने के लिए ऐसा करना आवश्यक भी होता है। आत्म-हीनता की ग्रंथि से पीड़ित व्यक्ति समाज के लिए अति-हानिकारक होता है। ऐसे में व्यंग्यकार समाज के वैचारिक स्तर में भी सुधार के लिए निरंतर प्रयासरत रहता है।

सामाजिक सुधारों के संदर्भ में व्यंग्य दो प्रकार के होते हैं। कुछ व्यंग्यकार ऐसे हैं जो मानव-जाति के अंदर सद्‌गुण देखते है, उन्हें स्वभाव से सीधा, सच्चा और समाज के लिए हितकर मानते है। वही कुछ व्यंग्यकार ऐसे भी हैं जो मानव-जाति के अंदर महज़ घृणा, दुर्गुण और पाप देखते हैं। प्रथम प्रकार के व्यंग्यकारों को आशावादी व्यंग्यकार एवं दूसरे प्रकार के

व्यंग्यकार को निराशावादी व्यंग्यकार कहा जाता है। व्यंग्यकार के दृष्टिकोण का उसके रचनाओं पर स्पष्ट प्रभाव देखने को मिलता है। व्यंग्यकार यदि आशावादी दृष्टिकोण अपनाता है तो वह समाज में व्याप्त बुराइयों के संदर्भ में सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाता है। वह व्याप्त बुराइयों को परिस्थितिजन्य मानते हुए उसमें परिवर्तन की बात करता है। वहीं निराशावादी दृष्टिकोण रखने वाला व्यंग्यकार मूल रूप से ध्वंसात्मक बातें करता है। वह समाज में व्याप्त सभी समस्याओं के लिए क्रांतिकारी रुख़ अपनाता है। निराशावादी व्यंग्यकार सुधारात्मक दृष्टिकोण में यक़ीन नहीं रखता है अपितु वह इस संदर्भ में आमूल परिवर्तनवादी हो जाता है।

व्यंग्य की परम्परा प्राचीन काल से चली आ रही है। किंतु अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक साहित्यिक रचनाओं में व्यंग्य की छीटें ही देखने को मिलती रही हैं। अभी तक व्यंग्य किसी रचना के केंद्रीय स्वरूप के रूप में परिणत नहीं हुआ था। अठारहवीं सदी के उत्तरार्द्ध से व्यंग्य की रचनाओं में गुणात्मक वृद्धि देखने को मिलती है। समाज में व्याप्त विसंगतियों पर प्रहार करने के लिए जिस व्यंग्य आलम्बन को कबीर की रचनाओं में देखा जा सकता है उसकी अभिव्यक्ति भारतेंदु युग में आते-आते अंग्रेजों की दमनकारी नीतियों, पुलिस व्यवस्था पर कटाक्ष के रूप में देखी जा सकती है। भारतेंदु युग में व्यंग्य-रचनाएँ मुख्यतः हास्य एवं प्रहसन के रूप में सामने आयी। किंतु धीरे-धीरे इनकी प्रवृत्ति में परिवर्तन देखने को भी मिलता है। भारतेंदु जी नें अपने व्यंग्यों में भाषा के स्तर पर अनेक प्रयोग भी किए, उन्होंने

शब्दों को तोड़-मरोड़कर प्रयोग करने के साथ-साथ वक्रोक्ति, वाग्वैदग्ध्य, कटूक्ति आदि का प्रयोग अपने अभीष्ट उद्देश्य की प्राप्ति हेतु किया। 'वैदिक हिंसा हिंसा न भवति' की रचना से भारतेंदु जी नें जिस परम्परा की शुरुआत की उस परम्परा को आगे बढ़ाने का कार्य राधाचरण गोस्वामी, बालकृष्ण भट्ट एवं प्रताप नारायण मिश्र आदि व्यंग्यकारों ने व्यंग्य साहित्य में अपना बहुमूल्य योगदान देकर किया। इसी युग में व्यंग्य साहित्य की अनेक विधाएँ भी व्यंग्य-साहित्य के अनमोल भंडार में वृद्धि करती गयीं। इन नवीन व्यंग्य-विधाओं के रूप में प्रहसनों, व्यंग्य-स्तम्भों एवं व्यंग्य-पत्रों को लिया जा सकता है। स्वतंत्रता पूर्व तक व्यंग्य-साहित्य में धीरे-धीरे अनेक प्रकार के विकास देखने को मिले। व्यंग्य की प्रहारात्मकता में वृद्धि, विसंगतियों पर सूक्ष्म दृष्टि आदि के रूप में अनेक परिवर्तन देखने को मिले। कृष्णदेव प्रसाद गौड़ उर्फ़ बेढब बनारसी, पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र' जैसे व्यंग्यकारों नें इस युग में व्यंग्य रचनाएँ करते हुए हिंदी व्यंग्य साहित्य के भंडार में वृद्धि की। इस युग का सर्वश्रेष्ठ व्यंग्य 'लफ़्टंट पिगसन की डायरी 'है जिसमें बेढब बनारसी जी नें 'लफ़्टंट पिगसन 'नामक काल्पनिक पात्र के माध्यम से तत्कालीन विसंगतियों पर प्रहार किया है। इस रचना में भाषाई एवं शैलीगत प्रौढ़ता की जो प्रवृत्ति मिलती है वह इस युग में किसी अन्य रचना में नहीं देखने को मिलती। उपकरणों का प्रयोग, प्रसंग वक्रता और तीव्र प्रहारता जैसी खूबियों से सुसज्जित इस युग में व्यंग्य रचना की गयी। बेढब बनारसी के अतिरिक्त पाण्डेय बेचन शर्मा 'उग्र 'भी इसी श्रेणी के व्यंग्यकार

हैं। इस युग में हास्य-मिश्रित व्यंग्यों की प्रधानता देखने को मिलती है। इसका कारण यह है कि इस युग में प्रहारात्मक व्यंग्यों की कमी देखने को मिलती है। इस समय तक व्यंग्य साहित्य की अनेक विधाओं के रूप में लिखा जाने लगा था। आज़ादी के बाद देश में अनेक सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक परिवर्तन देखने को मिलते हैं। साहित्यकारों पर जो सेन्सर विदेशी-शासन में लगा था अब खत्म हो चुका था। साथ ही साथ समाज में व्याप्त विसंगतियो में भी परिवर्तन देखने को मिलता है। स्वतंत्रता पूर्व और स्वतंत्रता के बाद देखे गए विभिन्न प्रकार के सपनों का पूरा न होना, गरीबी, बेरोजगारी, भ्रष्ट नेताओं द्वारा लूट, योजनाओं का लाभ लाभार्थियों तक न पहुँच पाना, समाज के कुछ ही वर्गों द्वारा योग्यता की जगह चुनने के स्थान पर सिफ़ारिशों का चलन होना तथा काले धन की बढ़ोत्तरी से आर्थिक रूप से देश को कमजोर करना, अनेकों ऐसे उदाहरण हमें रोज़-मर्रा के जीवन में देखने को मिले।इन्हीं बदली हुई परिस्थितियों में हरिशंकर परसाई जी नें व्यंग्य के माध्यम से समाज में बदलाव लाने का प्रयास किया। परसाई जी के आने के बाद व्यंग्य साहित्य की दिशा ही बदल गयी और व्यंग्य एक नयी ऊँचाई तक पहुँचने में सफल रहा। हरिशंकर परसाई के अतिरिक्त इस युग में शरद जोशी, श्रीलाल शुक्ला एवं रविंद्रनाथ त्यागी जी नें व्यंग्य को नयी ऊँचाइयों तक पहुँचाने का कार्य किया। यही वजह है कि इन चारों व्यंग्यकारों को संयुक्त रूप से 'व्यंग्य चौकड़ी' के नाम से भी जाना जाता है। सन् १९९० ई० के बाद से देश में आधुनिकता की रफ़्तार बहुत तेज हो

जाती है। और व्यंग्य नये अस्त्रों के साथ साहित्य में जगह बनाती है। इस समय 'व्यंग्य चौकड़ी' का चरम देखने को मिलता है। इस युग के व्यंग्यकारों नें विषय-चयन, भाषाई प्रौढ़ता एवं शैलियों पर विशेष ध्यान दिया। हालाँकि इस युग के नवोदित व्यंग्यकारों के व्यंग्यों में हास्य की प्रधानता देखने को मिलती है किंतु सामान्य तौर पर प्रमुख व्यंग्यकारों नें व्यंग्यात्मक शैली पर विशेष ध्यान दिया।

व्यंग्यकार का मात्र एक लक्ष्य नहीं होता। उसके अनेक लक्ष्य होते हैं। शिल्प की सहायता से व्यंग्यकार व्यंग्य के प्रेरक तत्वों जैसे- ज्ञानमूलक मनोवृत्ति एवं सूक्ष्मदृष्टि, तिक्त-परिहास, अदम्य-साहस, आलोचना एवं ताड़ना, बुद्धि-वैचित्र्य एवं कल्पना-वैचित्र्य, चरित्र-चित्रांकन, अवनति तथा विशिष्ट-सौंदयार्नुभूति एवं सत्यान्वेषक-दृष्टि को अलंकृत एवं पठनीय ढंग से प्रस्तुत करने का कार्य करता है। इन प्रेरक तत्वों के प्रयोग से वह समाज में व्याप्त विभिन्न विसंगतियों को उजागर करते हुए उनपर प्रहार करता है। ऐसा करने में व्यंग्यकार की बौद्धिकता महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। व्यंग्यकार इन तत्वों में वृद्धि के लिए भाषायी एवं शैलीगत विशेषता का सहारा लेता है। अगर भाषा कौशल की बात करें तो भाषा कौशल को शब्द-योजना, युग्म-शब्द प्रयोग, स्थायी भाषा के शब्दों का प्रयोग, मुहावरों का प्रयोग, कहावतें एवं सूक्तियाँ, उपमान, रूपक, बिम्ब, शब्द-शक्ति आदि के प्रयोग के आधार पर समझा जा सकता है। वहीं अगर शैली कौशल की बात करे तो शैली कौशल को वर्णनात्मक शैली, विवरणात्मक शैली, समास

शैली, व्यास शैली, प्रश्न शैली, पत्र शैली, प्रतीक शैली, संवाद शैली एवं नाटकीय शैली एवं काव्यगत शैली आदि के आधार पर समझा जा सकता है। व्यंग्य-साहित्य में प्रयुक्त शिल्प, साहित्य की अन्य विधाओं के शिल्प से अलग होता है। व्यंग्य साहित्य में कटुता का प्रयोग फूहड़ता का परिचायक न होकर बल्कि व्यंग्य साहित्य के लिए गहना होता है। 'अतिरंजना 'एवं 'अतिशयता 'व्यंग्य साहित्य में जिस तरह सुशोभित होता है वहीं अन्य विधा में इसका प्रयोग करने पर वह विधा दोषपूर्ण लगने लगती है। व्यंग्य साहित्य में प्रायः लक्षणात्मक और व्यंजनात्मक शब्द शक्ति का ही प्रयोग होता है। समकालीन व्यंग्य साहित्य में इन सभी शिल्पगत विशेषताओं को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जहाँ 'ऐसा भी सोचा जाता है' में साधारण एवं आम-जनमानस में प्रयुक्त भाषा का प्रयोग देखने को मिलता है वहीं 'किसे जगाऊँ' में अभिजात्यवर्ग की भाषा एवं संस्कृतनिष्ठ शब्दों की प्रधानता देखने को मिलती है। जहाँ 'खम्भों के खेल', 'दाँत में फँसी कुर्सी' एवं 'गंगा से गटर तक' में पत्र शैली के व्यंग्य देखने को मिलते हैं वहीं 'पूरब खिले पलाश' जैसी रचनाओं में काव्यगत शैली की प्रधानता देखने को मिलती है। इस प्रकार अगर देखें तो समकालीन व्यंग्य साहित्य के शिल्प में विविधता दृष्टव्य है।

विवेच्य व्यंग्य-साहित्य में पर्याप्त विविधता दिखाई पड़ती है। 'ऐसा भी सोंचा जाता है' व्यंग्य संग्रह जहाँ सामाजिक जीवन के इर्द-गिर्द के मुद्दों को अपना केंद्रीय विषय बनाते हुए उनपर प्रहार करता है वहीं 'किसे जगाऊँ' में व्यक्ति की आध्यात्मिक संवेदना को केंद्र में रखते हुए रचना की

गयी है। 'दंगे में मुर्ग़ा' व्यंग्य संग्रह में जहाँ प्रशासनिक असंवेदना को उजागर करते हुए प्रशासनिक व्यंग्य की रचना की गयी है वहीं 'पूरब खिले पलाश' व्यंग्य संग्रह में साहित्य के क्षेत्र में विद्यमान विभिन्न विसंगतियों को उजागर करने का कार्य किया गया है। जहाँ 'यत्र तत्र सर्वत्र' में दिन-प्रतिदिन के समाचार पत्रों में छपे मुद्दों के आधार पर व्यंग्य अध्यायों की रचना की गयी है वहीं 'गणतंत्र का गणित' व्यंग्य संग्रह में गणतांत्रिक देश में रहने वाले आम आदमियों के जीवन की सामान्य समस्याओं का वर्णन देखने को मिलता है और 'खंभों के खेल' व्यंग्य संग्रह में प्रशासनिक एवं दफ़्तरी विषयों को आधार बनाते हुए व्यंग्य रचना की गयी है। इस प्रकार समकालीन समय में लिखे गए व्यंग्य संग्रहों में पर्याप्त विषय विविधता देखने को मिलती है। इस विषय-विविधता का कारण समकालीन परिस्थितियाँ हैं। उदारीकरण के आरम्भ से और सन् १९९० ई० के बाद की राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं नें देश की सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को झकझोर कर रख दिया। इन बदली हुई परिस्थितियों में देश की जनता को ऐसे नवीन समस्याओं से जूझना पड़ा। उदारीकरण के दौर में इन्हीं विसंगतियों, समस्याओं और गिरते हुए सामाजिक मूल्यों अभिव्यक्ति समकालीन व्यंग्यों में देखने को मिलती है।

आधार-ग्रंथ

- गोपाल चतुर्वेदी; खंभों के खेल; प्रभात प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०
- गोपाल चतुर्वेदी; गंगा से गटर तक; प्रभात प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७
- गोपाल चतुर्वेदी; दांत में फंसी कुर्सी; प्रभात प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६
- गोपाल चतुर्वेदी; फाइल पढ़ि पढ़ि; सार्थक प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९१
- ज्ञान चतुर्वेदी; दंगे में मुर्गा; किताबघर प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८
- नरेंद्र कोहली; आत्मा की पवित्रता; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; १९९६
- नरेंद्र कोहली; गणतंत्र का गणित; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९७
- नरेन्द्र कोहली; किसे जगाऊँ; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; इतिहास का शव; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३

- रवीन्द्रनाथ त्यागी; गणतंत्र दिवस की शोभायात्रा; नेशनल पब्लिक हाउस; नयी दिल्ली; १९९१
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; चंपाकली; किताबघर प्रकाशन; दिल्ली; १९९२
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; दुम की वापसी; प्रभात प्रकाशन; दिल्ली; १९९२
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; देश-विदेश की कथा; किताब घर प्रकाशन; दिल्ली; १९९४
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; पूरब खिले पलाश; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९८
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; बादलों का गांव; अभिरुचि प्रकाशन; दिल्ली; १९९९
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; भाद्रपद की साँझ; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; लाल पीले फूल; किताब घर प्रकाशन; दिल्ली; १९९६
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; विषकन्या; भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०
- रवीन्द्रनाथ त्यागी; शुक्ल पक्ष; कल्पतरु प्रकाशन; दिल्ली; १९९४

- शरद जोशी; यत्र तत्र सर्वत्र; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; २०००
- श्री लाल शुक्ल; अगली शताब्दी का शहर; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६
- श्री लाल शुक्ल; आओ बैठ लें कुछ देर; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९५
- श्री लाल शुक्ल; कुछ जमीन पर कुछ हवा में; राजकमल प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९०
- हरिशंकर परसाई; ऐसा भी सोचा जाता है; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९३

सहायक ग्रंथ

- आचार्य रामचंद्र शुक्ल; हिंदी साहित्य का इतिहास; नागरी प्रचारिणी सभा; काशी; १९२९

- आनंद प्रकाश दीक्षित, हिंदी साहित्य कोश (भाग-1); राजकमल प्रकाशन; दिल्ली; १९६६

- कमलकिशोर गोयनका (सं०); रवींद्रनाथ त्यागी: प्रतिनिधि रचनाएँ; पराग प्रकाशन; दिल्ली; १९८७

- काका हाथरसी एवं गिरिराजशरण अग्रवाल; श्रेष्ठ हास्य व्यंग्य निबंध; प्रभात प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९७९

- केशवचंद्र वर्मा; आधुनिक हास्य-व्यंग्य; भारतीय ज्ञानपीठ; नयी दिल्ली; १९६१

- गजानन माधव 'मुक्तिबोध'; एक साहित्यिक की डायरी; भारतीय ज्ञानपीठ; वाराणसी; १९६४

- डॉ० उषा शर्मा; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य में व्यंग्य; आत्माराम एण्ड संस; दिल्ली; १९८४

- डॉ० नागेंद्र; मानविकी पारिभाषिक कोश; साहित्य-खंड; राजकमल प्रकाशन; दिल्ली; १९६७

- डॉ० परमानंद श्रीवास्तव (सं०) (भारतेंदु हरिश्चन्द); अँधेर नगरी; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद; २०१०

- डॉ० मलय; व्यंग्य का सौंदर्य शास्त्र; साहित्यवाणी; इलाहाबाद; १९८३

- डॉ० वीरेंद्र मेहदिरत्ता; आधुनिक हिंदी साहित्य में व्यंग्य; रिसर्च पब्लिकेशन; नयी दिल्ली; १९७६

- डॉ० शलभ; संवेदना और सौंदर्य बोध; राजकमल प्रकाशन; दिल्ली

- डॉ० सुधाकर उपाध्याय; समकालीन हिंदी व्यंग्य निबंधों का अनुशीलन; शब्द संसार प्रकाशन; नयी दिल्ली; २००९

- डॉ० सुभाष नाहर (सं०); बात तो चुभेगी; आजकल; नवम्बर-दिसम्बर; १९८१

- डॉ० हरिशंकर दूबे; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी गद्य में व्यंग्य; विकास प्रकाशन; कानपुर; १९९७

- नरेंद्र कोहली; मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (अपनी ओर से); ज्ञान भारती; दिल्ली; १९७७
- प्रेम नारायण टण्डन; हिंदी साहित्य में हास्य-व्यंग्य; हिंदी साहित्य भंडार; लखनऊ; १९६१
- बच्चन सिंह; हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास; राधाकृष्ण प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९९६
- बालेंदुशेखर शेखर तिवारी; व्यंग्य ही व्यंग्य; सत्साहित्य प्रकाशन; मेहजाना; १९८८
- बालेंदुशेखर शेखर तिवारी; हिंदी व्यंग्य के प्रतिमान; गिरनार प्रकाशन; मेहजाना; १९८८
- महावीर प्रसाद द्विवेदी; हिंदी साहित्य में हास्य और व्यंग्य; हिंदी साहित्य भंडार; लखनऊ; १९६७
- रघुवीर सहाय; सीढ़ियों पर धूप में; भारतीय ज्ञानपीठ; काशी; वाराणसी; १९६०
- राजमल बोरा; संवेदना के स्तर; नमिता प्रकाशन; औरंगाबाद; १९७५

- राधेमोहन शर्मा; हरिशंकर परसाई की वैचारिक पृष्ठभूमि; राधाकृष्ण प्रकाशन; २००२

- राम कुमार वर्मा; रिमझिम; किताब महल; इलाहाबाद; १९५५

- राम कुमार वर्मा; हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद; २०१०

- रामचंद्र तिवारी; हिंदी का गद्य साहित्य; विश्वविद्यालय प्रकाशन; वाराणसी; २००४

- रामचंद्र वर्मा (सं०); मानक हिंदी कोश- खंड १-५; हिंदी साहित्य सम्मेलन; प्रयाग; १९६६

- रामस्वरूप चतुर्वेदी; समकालीन हिंदी साहित्य: विविध परिदृश्य; राधाकृष्ण प्रकाशन; दिल्ली; २००८

- रामस्वरूप चतुर्वेदी; हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद; २०१०

- लतीफ़ घोंघी; बीमार न होने का दुःख; सौरभ प्रकाशन; दिल्ली; १९७०

- विश्वनाथ प्रसाद मिश्र; हिंदी साहित्य का अतीत; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; २००८
- शशि मिश्र; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य निबंध; संकल्प प्रकाशन; बम्बई; १९९२
- शिव कुमार मिश्रा; मार्क्सवाद और साहित्य; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; २००१
- शेरजंग गर्ग; व्यंग्य के मूलभूत प्रश्न; सामाजिक प्रकाशन; नयी दिल्ली; १९७९
- शैलेश मटियानी; लेखक और संवेदना; विभा प्रकाशन; इलाहाबाद; १९८७
- श्यामसुंदर घोष; व्यंग्य क्या; व्यंग्य क्यों; सत्साहित्य प्रकाशन; दिल्ली; १९८३
- श्रीलाल शुक्ल; मेरी श्रेष्ठ व्यंग्य रचनाएँ (परिचय); ज्ञान भारती; दिल्ली; १९७७
- संसार चंद्र; हिंदी हास्य-व्यंग्य निबंध-रूपयात्रा; किताब महल; इलाहाबाद; १९८१

- सच्चिदानन्द वत्सायन; हिंदी साहित्य: एक आधुनिक परिदृश्य; राधाकृष्ण प्रकाशन; दिल्ली; १९६७
- सुभाष चंदर; हिंदी व्यंग्य का इतिहास; भावना प्रकाशन; दिल्ली; २०१७
- सुरेश कांत; हिंदी गद्य लेखन में व्यंग्य और विचार; राधाकृष्ण प्रकाशन; नयी दिल्ली; २००४
- सुरेश माहेश्वरी; स्वातंत्र्योत्तर हिंदी व्यंग्य का मूल्यांकन; विकास प्रकाशन; कानपुर; १९९४
- सुरेशकांत; नरेंद्र कोहली-विचार और व्यंग्य; वाणी प्रकाशन; नयी दिल्ली; २००२
- सूर्यकांत त्रिपाठी निराला; कुकुरमुत्ता; लोकभारती प्रकाशन; इलाहाबाद; १९६९
- स्मिता चिपणुलकर; हिंदी के प्रमुख व्यंग्यकार; अलका प्रकाशन; कानपुर; २००१
- हंसराज भाटिया; सामान्य मनोविज्ञान; ऑक्सफ़ोर्ड एवं आई० बी० एच० प्रकाशन

- हजारी प्रसाद द्विवेदी; कबीर; हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर कार्यालय; बम्बई; १९४२
- हरिशंकर परसाई; सदाचार की ताबीज़ (कैफ़ियत); भारतीय ज्ञानपीठ; वाराणसी; १९७६

पत्र-पत्रिकाएँ

आजकल

इंद्रप्रस्थ भारती

सारिका

हिंदी इंडिया टुडे

Online Sources

https://shodhganga.inflibnet.ac.in/

https://hindisamay.com/

http://www.sahchar.com/